आचार्य माणिक्यनन्दि विरचित

परीक्षामुखम्

(संस्कृत, हिन्दी विवेचना, सरल प्रश्नोत्तरी)

श्रुतधाम बीना के आदिप्रभु

प्रकाशक

अनेकान्त ज्ञान मंदिर शोध संस्थान

बीना-470113, जिला-सागर (म. प्र.)

अनेकान्त ज्ञान मंदिर शोध संस्थान बीना एक परिचय

स्थापना : 20 फरवरी 1992 को संत शिरोमणि आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज के शिष्य परम पूज्य मुनि श्री 108 सरलसागर जी महाराज ससंघ के पुनीत आशीर्वाद एवं सान्निध्य में

श्रुत संवर्द्धन की दिशा में संस्थान की संचालित गतिविधियाँ इस प्रकार हैं-

1. **पाण्डुलिपि संग्रहालय :** इस संग्रहालय में शास्त्रोद्धार शास्त्र सुरक्षा अभियान के अन्तर्गत संकलित पाण्डुलिपियों का संग्रहण किया जाता है। अभी तक लगभग 25000 हस्तलिखित ग्रन्थ, 50 ताड़पत्रीय ग्रन्थ, संग्रहालय में हैं। इन ग्रन्थों में अनेक बहुमूल्य अप्रकाशित, दुर्लभ पाण्डुलिपियां भी हैं। सचित्र एवं सुवर्णलिखित पाण्डुलिपियां भी संस्थान की एक बहुमूल्य धरोहर हैं।
2. **शोध ग्रन्थालय :** जैन दर्शन से संबंधित मुद्रित प्राचीन - अर्वाचीन ग्रन्थों का संग्रह है। अनेक शोध पत्र-पत्रिकाएँ नियमित रूप से आती हैं। शोधार्थी, त्यागीवृन्द एवं स्वाध्याय प्रेमियों की ज्ञानाराधना में इस ग्रन्थालय का उपयोग किया जाता है। ग्रन्थालय में लगभग 15000 ग्रन्थों का संग्रह है।
3. **अनेकान्त पाण्डुलिपि संरक्षण केन्द्र :** इस केन्द्र के माध्यम से जीर्ण शीर्ण पाण्डुलिपियों को संरक्षित किया जाता है एवं जो दुर्लभ पाण्डुलिपियां हैं, उनको भी रासायनिक पदार्थों के द्वारा एक दीर्घ जीवन प्रदान किया जाता है।
4. **अनेकान्त दर्पण पत्रिका का प्रकाशन :** संस्थान की गतिविधियों को जन-जन पहुँचाने के लिये एवं शोध परक आलेखों को प्रचारित करने की दृष्टि से त्रिमासिक अनेकान्त दर्पण का प्रकाशन किया जाता है।
5. **अनेकान्त ग्रन्थमाला :** इसके अंतर्गत अनेक बहुमूल्य ग्रन्थों का प्रकाशन कर जन-जन पहुँचाया जाता है। अभी तक 35 ग्रन्थों का प्रकाशन किया जा चुका है।
6. **पाण्डुलिपि प्रदर्शनी :** इस प्रदर्शनी के माध्यम से देश के कोने में जाकर हस्तलिखित ग्रन्थ सम्पदा के दर्शन कराते हैं।

आचार्य माणिक्यनन्दि विरचित

परीक्षामुखम्

(संस्कृत , हिन्दी विवेचना , सरल प्रश्नोत्तरी)

अनुवादक

क्षु. 105 विवेकानंदसागर

सम्पादक

ब्र . संदीप 'सरल'

प्रकाशक

अनेकान्त ज्ञान मंदिर शोध संस्थान

बीना, 470113 जिला-सागर (म. प्र.)

07580-206025, 222279

अनेकान्त ग्रन्थमाला का नवम् पुष्पम्

ग्रन्थ	:	परीक्षामुखम्
प्रणेता	:	परम पूज्य आचार्य माणिक्यनंदि जी
आशीर्वाद	:	परम पूज्य मुनिश्री प्रमाणसागर जी महाराज
अनुवादक	:	क्षुल्लक 105 विवेकानंदसागरजी
सम्पादक	:	ब्र. संदीप 'सरल' बीना
संशो. संस्करण	:	तृतीय , प्रतियाँ 2200
प्रकाशन वर्ष	:	दिसम्बर, 2011, वीर निर्वाण संवत् 2538
द्रव्य पुण्यार्जक	:	इंजी. श्री नरेन्द्रकुमार जैन, फरीदाबाद इंजी. श्री हीरजशाह, कोलम्बस (यू. एस. ए.)
प्राप्ति स्थल	:	अनेकान्त ज्ञान मंदिर शोध संस्थान बीना, 470113 जिला-सागर (म. प्र.) 07580-206025, 222279 उदासीन ब्रह्मचर्य आश्रम गली नं. 3, ललवानी प्रेस मार्ग, भोपाल (म. प्र.)
मुद्रण	:	विकास आफसेट, भोपाल

विषयानुक्रमणिका

1.	प्रकाशकीय	ब्र. संदीप 'सरल'	4
2.	आशीर्वाद	मुनि प्रमाणसागरजी	6
3.	अपनी बात	क्षु. विवेकानन्द जी	7
4.	प्रस्तावना	ब्र. संदीप 'सरल'	9
5.	प्राक्कथन	डॉ. सूरजमुखीजी	12
6.	प्रथम परिच्छेद	ग्रन्थकार	15
7.	द्वितीय परिच्छेद	,,	35
8.	तृतीय परिच्छेद	,,	51
9.	चतुर्थ परिच्छेद	,,	125
10.	पंचम परिच्छेद	,,	132
11.	षष्ठ परिच्छेद	,,	135
12.	परिशिष्ट – 1 परीक्षामुख सूत्रावली		179
13.	परिशिष्ट – 2 परीक्षामुख में आगत पारिभाषिक शब्द		188
14.	परिशिष्ट –3 कुछ विशेष निबन्ध		195

प्रकाशकीय

अनेकान्त ग्रन्थमाला के नवम् पुष्प के रूप में न्याय ग्रन्थ परीक्षामुख के तृतीय संस्करण का प्रकाशन करते हुए अत्यन्त हर्ष का अनुभव कर रहे हैं। इसका प्रथम संस्करण वर्ष 2003 में प्रकाशित किया गया था। ग्रन्थ प्रकाशन के बाद अनेक मुनि संघों में एवं स्वाध्याय गोष्ठियों में परीक्षामुख ग्रन्थ का अत्यन्त लगन पूर्वक स्वाध्याय किया गया। पिछले वर्ष से ही ग्रन्थ की प्रतियाँ अलभ्य हो चुकी थीं और अध्येताओं की माँग निरन्तर बनी हुई थी। अतः इसका संशोधित तृतीय संस्करण न्याय विद्या के जिज्ञासुओं की सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है।

'परीक्षामुख' जैन न्याय के अभ्यासियों के लिए उपयोगी रचना है। इस लघुकृति में आचार्य माणिक्यनंदी जी ने जैन न्याय के समस्त विषयों को गर्भित कर लिया है। परीक्षामुख के सूत्रों की तथा संस्कृत टीका की सरल व्याख्या के साथ सरल प्रश्नोत्तरी तैयार करके श्रद्धेय क्षु. 105 विवेकानंदसागर जी महाराज ने इसको और भी सरल बना दिया है। इस कारण यह रचना जन सामान्य के लिए उपयोगी बन गई है। पूज्य मुनि श्री 108 ब्रह्मानंदसागरजी महाराज की भावनानुसार ग्रन्थों का विक्रय नहीं होना चाहिए। ग्रन्थ तो ज्ञान के साधन हैं, अतः ज़िनवाणी की प्रभावना हेतु प्रचार-प्रसार ही होना चाहिए। अभी तक के समस्त प्रकाशनों में हम इसी नीति का अनुसरण करते आए हैं और भविष्य के लिए पुरुषार्थरत हैं। ग्रन्थ प्रकाशन का यह पुनीत कार्य अर्थ साध्य भी है, दान दातारों की उदारता के बिना यह सम्भव नहीं है। अतः इस क्षेत्र (ज्ञानदान) में समाज का हर वर्ग अपनी उदारता का परिचय उसी प्रकार दिखाये, जिस प्रकार की पंचकल्याणक, पूजन-विधान आदि के अवसर पर दिखाता है। धर्म प्रभावना के नाम पर आगम ग्रन्थों का प्रकाशन, पठन-पाठन आदि का कार्य भी बृहद् स्तर पर होना चाहिए।

संस्थान की ओर से सर्वप्रथम श्रद्धेय क्षुल्लकजी को सादर इच्छामि

प्रस्तुत करता हूँ कि प्रकाशन हेतु यह कृति संस्थान को प्रदान की। प्रस्तुत संस्करण के प्रकाशन में आध्यात्मिक रसिक, श्रुतज्ञ ब्र. हेमचन्द्रजी 'हेम' भोपाल की पुनीत प्रेरणा से इंजी. श्री नरेन्द्रकुमार जैन, फरीदाबाद ने 1000 प्रतियां एवं इंजी. श्री हीरज शाह, कोलम्बस (यू. एस. ए.) ने भी 1000 प्रतियों के प्रकाशन हेतु पुण्यार्जक बनकर चंचला लक्ष्मी का सदुपयोग किया है। एतदर्थ धन्यवाद के पात्र हैं। मुझे इस बात की अत्यधिक प्रसन्नता है कि श्रद्धेय ब्र. हेमचन्द्रजी 'हेम' अनेक स्थलों पर न्याय ग्रन्थों की कक्षाओं के माध्यम से न्याय ग्रन्थों के प्रचार-प्रसार में प्रशंसनीय-अनुकरणीय कार्य कर रहे हैं। ग्रन्थ के अक्षर संयोजन में सुश्री वर्षा जैन, शिवपुरी ने पूर्ण समर्पण भाव से कार्य कर श्रुताराधना में सहभागिता प्रदान की है। अतः इस कार्य में सहयोग करने वाले सभी धन्यवाद-साधुवाद के पात्र हैं। जैन न्याय के अध्येताओं के लिए यह कृति उनकी ज्ञानाराधना में सहयोगी बने तो मुझे अत्यधिक प्रसन्नता की अनुभूति होगी। सुधीजनों से यह विनम्र निवेदन है कि पुस्तक में कुछ त्रुटियाँ भी सम्भव हैं, अतः वे हमें सूचित करेंगे ताकि अगले संस्करण में परिमार्जित किया जा सके।

इत्यलं!

महावीर जयंती

16 अप्रैल, 2011

ब्र. संदीप 'सरल'

आशीर्वाद

जैन दर्शन में न्याय शास्त्र का अपना विशिष्ट स्थान है। प्रमाण, नय निक्षेप आदि की विवेचना पूर्वक धर्म और दर्शन के गूढ़ प्रमेयों का गूढ़तम विवेचन न्याय शास्त्रों का प्रमुख प्रतिपाद्य है।

परीक्षामुख न्यायशास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। प्रमेयरत्नमाला और प्रमेयकमलमार्तण्ड जैसे महाग्रन्थ इसी के सूत्रों की टीका के रूप में रचे गये हैं। सिद्धान्त ग्रन्थों में जो स्थान तत्त्वार्थसूत्र का है, वही स्थान न्यायशास्त्र में परीक्षामुख का है। इसके सीमित सूत्रों में ही न्यायशास्त्र के समस्त प्रमेयों का परिचय प्राप्त हो जाता है। इस एक ग्रन्थ के अध्ययन मात्र से न्यायशास्त्र में प्रवेश हो जाता है।

क्षुल्लक विवेकानंदसागरजी दृढ़ अध्यवसायी, लगनशील स्वाध्यायी साधक हैं। वे निरन्तर ज्ञान-ध्यान में लीन रहते हुए तत्त्व-जिज्ञासुओं को अध्यापन भी कराते रहते हैं। न्याय और व्याकरण जैसे गूढ़ विषयों में आपकी विशेष गति है। प्रस्तुत कृति क्षुल्लकजी की अध्ययनशीलता का उत्कृष्ट निर्दर्शन है।

प्रस्तुत कृति के माध्यम से क्षुल्लकजी ने परीक्षामुख के प्रत्येक सूत्रों को संस्कृत टीका के अर्थ के साथ अन्वय और प्रश्नोत्तरी के माध्यम से बड़ी बोधगम्य शैली में एक-एक सूत्र के अर्थ को खोल दिया है। इससे यह कृति न्यायशास्त्र के प्राथमिक अध्येताओं के लिए भी बड़ी सुगम बन पड़ी है। निश्चित ही इस कृति के अध्ययन और अनुशीलन से उपेक्षित होती जा रही न्यायशास्त्र के अध्ययन की वृत्ति को प्रोत्साहन मिलेगा तथा न्यायशास्त्र के प्राथमिक अध्येताओं के लिए यह कृति एक मार्गदर्शिका का कार्य करेगी।

क्षुल्लकजी के इस श्रमसाध्य/उपयोगी प्रस्तुति के लिए मेरी ओर से हार्दिक आशीर्वाद।

मुनि प्रमाणसागर

अपनी बात

वीतराग अर्हन्त , सर्वज्ञ प्रणीत जिनागम अनेकान्तमय है और स्याद्वाद शैली में निबद्ध है। जहाँ कहीं भी तत्त्वों का विवेचन होता है, उसका मुख्य आधार अनेकान्त, स्याद्वादमय जिनागम ही होता है।

अनेकान्त और स्याद्वाद को हम प्रमाण मात्र से समझ सकते हैं, जो प्रमाण है, वह केवल ज्ञानमय है प्रमाण ही सम्यग्ज्ञान है, शेष ज्ञान मिथ्या हैं। प्रमाण ज्ञान के स्वरूप एवं भेदों का वर्णन करने वाले शताधिक ग्रन्थ हैं, पर वे सभी दुरुह एवं दुर्लभ हैं, कई ग्रन्थ तो अप्राप्य हैं, जो प्राप्य हैं, उन्हें समझना सभी के क्षयोपशम के वश में नहीं है, परन्तु हम अल्पज्ञों के सातिशय पुण्योदय से परम पूज्य आचार्य माणिक्यनंदीजी ने अपनी प्रज्ञा से परीक्षामुख नामक ग्रन्थ की रचना करके मात्र 208 सूत्रों में गागर में सागर भर दिया है। सर्वप्रथम उन्हीं को त्रियोग से नमोस्तु करते हैं। इसके बाद इस सूत्र ग्रन्थ का अनुवाद पं. मोहन लालजी शास्त्री जबलपुर ने किया है। परन्तु सुव्यवस्थित न होने से पढ़ने में सरलता नहीं थी, फिर भी हम बहुत आभारी हैं, जिन्होंने यह श्रमसाध्य कार्य किया।

मेरा जीवन वैराग्य पथ पर बढ़ा और पूज्य गुरुवर श्री 108 सरलसागरजी का चरण सान्निध्य मिला, उन्हीं के चरणों में रहकर न्याय-व्याकरण का अध्ययन किया। उन्हीं की आशीष छाया में मेरी बुद्धि कुछ समझने लायक बनी एतदर्थ उनकें पावन चरण कमलों में शत-शत बार नमोस्तु। कर्मोदयवशात् पृथक् विहार का अवसर आया और चंचल मन को स्थिर करने के लिए स्वाध्याय ही अमोघ साधन था, उसी स्वाध्याय और पठन-पाठन की रुचि के परिणाम स्वरूप परीक्षामुख ग्रन्थ के अनुवाद की अन्तस् प्रेरणा मिली और कलम चल पड़ी। क्षयोपशम ज्ञान से जो कुछ किया वह सब लगन और पुरुषार्थ का ही फल है। प्रस्तुत अनुवाद को सर्वप्रथम अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी, आध्यात्मिक श्रमण परम पूज्य मुनि श्री 108 प्रमाणसागरजी ने अवलोकन किया और मुझे आशीर्वाद और प्रेरणा दी कि इसे शीघ्र प्रकाशित होना चाहिए।

पूज्य मुनिश्री की प्रेरणा को मैं नहीं टाल सका और सहज में मन प्रकाशित कराने का बन गया। पूज्य मुनि श्री को मैं त्रियोग से भक्तिपूर्वक नमोस्तु करता हूँ। ग्रन्थ के प्रकाशन एवं सम्पादन में श्री ब्र. संदीप 'सरल' अनेकान्त ज्ञान मंदिर शोध संस्थान, बीना ने कर एवं आवश्यक परामर्श देकर मुझे कृतार्थ किया और अपनी संस्था से प्रकाशन के योग्य समझा। कृति के प्रकाशन में सभी सहयोगियों को हार्दिक शुभाशीष। ग्रन्थ के अनुवाद करते समय त्रुटियाँ रह जाना सम्भव है। अतः त्रुटि हेतु क्षमा चाहता हूँ, सुधीजन त्रुटियों से मुझे अवश्य अवगत करावें ताकि आगे सुधार कर सकूँ। आशा है कि पाठकगण समादर करेंगे।

क्षुल्लक विवेकानंदसागर

प्रस्तावना

जैन न्याय के संस्थापक, महान् तार्किक, आचार्य समन्तभद्रस्वामी, जैनशासन की कीर्तिध्वजा को शास्त्रार्थों के माध्यम से संरक्षित रखने वाले आचार्य भट्टाकलंकदेव, जैन न्याय के महान् ग्रन्थों पर विस्तृत एवं विशद टीका ग्रन्थों का सृजन करने वाले आचार्य विद्यानंदि, आचार्य प्रभाचन्द्र आदि तार्किकों ने जैनन्याय के महान् ग्रन्थों का सृजन कर माँ भारती के भण्डार को समृद्ध किया है। इन महान् आचार्यों ने अपनी तीक्ष्ण प्रज्ञा छैनी से परपक्ष द्वारा प्रतिपादित अनेकान्त, स्याद्वाद, सिद्धान्तों पर किए गए कुठाराघातों का निराकरण करते हुए जैन दर्शन में मान्य वस्तुतत्त्व की व्यवस्था को गौरवशाली प्रतिष्ठा दिलाई है। पहले जैन न्यायग्रन्थों की परम्परा का युग था। जैनाचार्यों ने अनेकानेक जैन न्याय ग्रन्थों का मूल सृजन किया। उत्तरवर्ती आचार्यों ने उन ग्रन्थों पर विशालकाय टीकात्मक ग्रन्थों का सृजन कर इस परम्परा को जीवित रखा है।

विशालकायात्मक न्यायग्रन्थों का अवलोकन करके जैनन्याय का आद्य सूत्र ग्रन्थ परीक्षामुख आचार्य माणिक्यनंदीजी का अगाध वैदुष्य एवं सूक्ष्मप्रज्ञता का परिचायक है। जो अल्पमेधावी जन जैन न्याय के उन विशाल ग्रन्थों में प्रवेश नहीं कर सकते हैं, उनके लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है। यह लघुकाय ग्रन्थ होते हुए भी गागर में सागर की उक्ति को चरितार्थ करता है। जैन दर्शन में जो गौरवपूर्ण स्थान तत्त्वार्थसूत्र को प्राप्त हुआ है वही स्थान जैन न्याय ग्रन्थों में परीक्षामुख को प्राप्त हुआ है। परीक्षामुख ग्रन्थ के बिना जैन न्याय के अन्य ग्रन्थों को पढ़ना सम्भव नहीं है।

ग्रन्थ का परिमाण एवं प्रतिपाद्य विषय :

परीक्षामुख में छह परिच्छेद हैं और 208 सूत्र हैं। परीक्षामुख का प्रतिपाद्य विषय प्रमाण एवं प्रमाणाभास का वर्णन करना है। प्रथम परिच्छेद में 13 सूत्र हैं। इस परिच्छेद में प्रमाण सामान्य की विवेचना की है। दूसरे परिच्छेद में 12 सूत्रों के माध्यम से प्रत्यक्ष प्रमाण का वर्णन किया है। तीसरे परिच्छेद में 97 सूत्र हैं। इस परिच्छेद में परोक्ष प्रमाण का वर्णन किया है। चतुर्थ परिच्छेद में

9 सूत्रों के माध्यम से प्रमाण के विषय का वर्णन किया गया है। पंचम परिच्छेद में 3 सूत्रों के द्वारा प्रमाण के फल का वर्णन करते हुए अंतिम षष्ठ परिच्छेद में 74 सूत्रों के द्वारा प्रमाणाभास, प्रत्यक्षाभास, परोक्षाभास, अनुमानाभास, संख्याभास, विषयाभास तथा फलाभास आदि का वर्णन किया है।

परीक्षामुख पर टीका ग्रन्थ :

इस ग्रन्थ पर अनेक संस्कृत टीकाओं का सृजन आचार्यों ने किया है। जिनका उल्लेख निम्न प्रकार है-

1. प्रमेयकमलमार्तण्ड - आचार्य प्रभाचन्द्र द्वारा रचित बृहत् काय व्याख्या। इस ग्रन्थ का प्रकाशन हिन्दी टीका के साथ 3 खण्डों में किया जा चुका है। सम्प्रति अनुपलब्ध है।

2. प्रमेयरत्नमाला - आचार्य लघुअनंतवीर्य द्वारा रचित मध्यम परिमाण की सरल एवं विशद व्याख्या है। इसका प्रकाशन भी हिन्दी टीका के साथ अनेक स्थानों से हुआ है।

3. प्रमेयरत्नालंकार - तार्किक विद्वान् श्री चारुकीर्ति भट्टारक (अठारहवीं सदी) द्वारा रचित व्याख्या है। इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद होना चाहिए। मूल टीका मैसूर विश्वविद्यालय से बहुत पहले प्रकाशित हुई है।

4. न्यायमणिदीपिका -श्री अजितसेन विद्वान् द्वारा रचित व्याख्या। इसका सम्पादन-अनुवाद एवं प्रकाशन होना चाहिए।

5. अर्थप्रकाशिका - श्री विजयचन्द्र नामक विद्वान् द्वारा रचित व्याख्या, अद्यतन अप्रकाशित।

6. प्रमेयकंठिका - श्री शांतिवर्णी द्वारा परीक्षामुख के प्रथम सूत्र पर लिखी व्याख्या।

उपरोक्त संस्कृत टीकाओं के अलावा श्री पं. जयचन्द्रजी छाबड़ा की भाषा वचनिका भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। परीक्षामुख के सूत्रों को माध्यम बनाकर प्रमेयकमलमार्तण्ड ग्रन्थ की विषय वस्तु को भी सरल हिन्दी भाषा में प्रतिपादित किया है, प्रो. उदयचन्द्र जैन सर्वदर्शनाचार्य, वाराणसी ने। जो प्रमेयकमलमार्तण्ड परिशीलन के नाम से प्रकाशित हुआ है।

सूत्रकार आचार्य माणिक्यनन्दि - आचार्य माणिक्यनन्दि नन्दी परम्परा के प्रतिष्ठित आचार्य हुए हैं। आपके गुरु का नाम रामनन्दि था। आपका समय डॉ. दरबारीलाल कोठिया न्यायाचार्य ने 1028 ईस्वी सिद्ध किया है। आप जैनदर्शन के साथ इतर दर्शनों के भी पारंगत तार्किक शिरोमणि थे। आप एक मात्र कृति परीक्षामुख की रचना कर जैन न्याय जगत् में अमर हो गये। उत्तरवर्ती अनेक आचार्यों ने अत्यन्त श्रद्धा के साथ आपके लिए उच्च सम्बोधन देते हुए स्मरण किया है।

इस प्रकार परीक्षामुख ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार विषयक जानकारी प्राप्त करके पाठकगण ज्ञान रश्मियों से अपने तिमिर को हटाकर ज्ञानकोश को समृद्ध करेंगे।

न्याय ग्रन्थों की परम्परा को पुनर्जीवित किया जावे -आज के समय में न्याय जैसे शुष्क, जटिल विषय को कोई पढ़ना नहीं चाहता है। त्यागी वर्ग द्वारा भी इन ग्रन्थों का विशेष स्वाध्याय नहीं किया जा रहा है और ये ग्रन्थ अलमारियों में रखे हुए चूहों और दीमकों के शिकार बनते जा रहे हैं। इस बात को सदैव स्मरण रखना चाहिए कि न्याय ग्रन्थों के अध्ययन किये बिना आध्यात्मिक ग्रन्थों के रहस्यों को समझ नहीं सकते हैं। अतः अध्यात्म के रहस्य को समझने के लिए प्रमाण, नय स्वरूप न्याय ग्रन्थों की ओर हमें रुचि बनाना चाहिए। इसके लिए आवश्यक हैं कि परीक्षामुख, न्यायदीपिका जैसे लघु ग्रन्थों के शिविर आयोजित किये जाना चाहिए।

प्रस्तुत प्रकाशन की उपयोगिता - परीक्षामुख सटीक का प्रकाशन पं. मोहनलाल शास्त्री, जबलपुर के सम्पादकत्व में पूर्व में हुआ था। उक्त प्रकाशन में सूत्रों के साथ संस्कृत टीका भी दी हुई थी किन्तु उसमें उल्लेख नहीं किया गया है कि उसके टीकाकार कौन हैं? पुस्तक अनुपलब्ध थी। समय की आवश्यकता थी कि इसका प्रकाशन होना चाहिए। अतः इस दिशा में ज्ञानाराधना में सतत् अध्यवसायी, श्रद्धेय क्षुल्लक 105 विवेकानंदजी ने कदम बढ़ाया और सूत्रों का शास्त्रार्थ, संस्कृत टीका का सरलार्थ एवं अंत में सूत्र सम्बन्धित प्रश्नोत्तरी से इस कृति को जन सामान्य के लिए पठनीय बना दिया है। आशा है पाठकगण इस कृति से भरपूर लाभान्वित होंगे।

ब्र. संदीप 'सरल'

प्राक्कथन

जैन न्याय शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् आचार्य माणिक्यनन्दि का एकमात्र ग्रन्थ 'परीक्षामुख' ही मिलता है। परीक्षामुख ग्रन्थ सूत्र शैली में लिखा गया है। यह जैन न्याय का प्रथम सूत्र ग्रन्थ है। इसमें प्रमाण और प्रमाणाभासों का विस्तृत विवेचन किया गया है। जिस प्रकार दर्पण में हमें अपना प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार परीक्षामुख रूपी दर्पण में प्रमाण और प्रमाणाभासों का स्पष्ट ज्ञान होता है। इस ग्रन्थ में प्रमाण के स्वरूप, संख्या तथा प्रमाणाभास की परीक्षा की गयी है। प्रमाण और प्रमाणाभास को जानने की आवश्यकता का प्रतिपादन करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं –

प्रमाणादर्थसंसिद्धिस्तदाभासाद्विपर्ययः ।
इति वक्ष्ये तयोर्लक्ष्म सिद्धमल्पं लघीयसः ॥

प्रमाण के द्वारा सम्पूर्ण ज्ञेय पदार्थों की समीचीन परीक्षा की जाती है। और प्रमाणाभास से विपरीत निर्णय होता है। अतः न्यायशास्त्र में अव्युत्पन्नजनों को प्रमाण और प्रमाणाभास का ज्ञान कराने के लिए उनके स्वरूप का विवेचन किया जाता है। इस ग्रन्थ में 208 सूत्र और छह समुद्देश हैं।

प्रथम समुद्देश में 13 सूत्रों के द्वारा प्रमाण के स्वरूप का विस्तृत विवेचन किया गया है। आचार्य श्री ने 'स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम्' सूत्र के द्वारा प्रमाण का स्वरूप बताते हुए कहा है कि वह निश्चयात्मक ज्ञान जो स्वयं को भी जानता है और पहले किसी प्रमाण से नहीं जाने हुए पदार्थों को भी जानता है, प्रमाण है। अग्रिम सूत्रों में प्रत्येक विशेषण की सार्थकता सिद्ध करते हुए नैयायिकों के द्वारा मान्य सन्निकर्ष बौद्धों के द्वारा मान्य निर्विकल्पक प्रत्यक्ष, ग्रहीतग्राही धारावाही ज्ञान तथा अस्वसंवेदी ज्ञान की प्रमाणता का निराकरण करते हुए हितग्राही और अहित के परिहार में समर्थ दीपक के समान स्वपरावभासी ज्ञान को ही प्रमाण सिद्ध किया है तथा प्रमाण की प्रमाणता की सिद्धि कथंचित् स्वतः और कथंचित् परतः बतायी है।

द्वितीय समुद्देश में 12 सूत्र हैं। इस समुद्देश में '**तद्द्वेधा**' तथा '**प्रत्यक्षेतरभेदात्**' सूत्र के द्वारा प्रमाण के प्रत्यक्ष और परोक्ष दो भेद बताकर चार्वाक, बौद्ध, सांख्य, नैयायिक, प्रभाकर तथा मीमांसकों द्वारा मान्य एक, दो,

तीन आदि प्रमाणों की संख्या का निराकरण किया है। 'विशदं प्रत्यक्षं' सूत्र के द्वारा विशद (निर्मल) ज्ञान को प्रत्यक्ष बताया है और प्रत्यक्ष के मुख्य और सांव्यवहारिक दो भेद किये हैं। वीर्यान्तराय तथा ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम तथा इन्द्रिय और मन की सहायता से होने वाले ज्ञान को सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष तथा ज्ञानावरण कर्म के क्षय एवं इन्द्रिय आलोक आदि की अपेक्षा न रखने वाले अतीन्द्रिय ज्ञान का कारण मानने में दोष दिखाने के साथ-साथ ज्ञान के कारण को ज्ञान का विषय मानने पर व्यभिचार का प्रतिपादन किया गया है।

तृतीय समुद्देश में 97 सूत्र हैं। इसमें अविशद ज्ञान को परोक्ष का लक्षण बताकर परोक्ष प्रमाण के स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम पाँच भेदों का उदाहरण सहित प्रतिपादन किया गया है। अनुमान के दो अंगों का विवेचन, उदाहरण, उपनय, निगमन कथा में उदाहरणादि की स्वीकृति, हेतु और अविनाभाव का स्वरूप, साध्य का लक्षण, साध्य के इष्ट, अबाधित और असिद्धि के प्रकार, पक्ष प्रयोग की आवश्यकता, अनुमान के स्वार्थानुमान परार्थानुमान भेदों का वर्णन, हेतु के उपलब्धि, अनुपलब्धि तथा उनके विरुद्धोपलब्धि, अविरुद्धोपलब्धि, विरुद्धानुपलब्धि, अविरुद्धानुपलब्धि एवं अविरुद्धोपलब्धि के व्याप्य, कार्य कारण, पूर्वचर, उत्तरचर, सहचर, विरुद्धोपलब्धि के भी विरुद्धव्याप्य, विरुद्धकार्य, विरुद्धकारण, विरुद्धपूर्वचर, विरुद्धउत्तरचर और विरुद्धसहचर, अविरुद्धानुपलब्धि के अविरुद्धस्वभावानुप -लब्धि, व्यापकानुपलब्धि, कार्यानुपलब्धि, कारणानुपलब्धि, पूर्वचरानुपलब्धि, उत्तरचरानुपलब्धि, सहचरानुपलब्धि, विरुद्धानुपलब्धि के विरुद्ध कार्यानुपलब्धि विरुद्धकारणानुपलब्धि और विरुद्धस्वभावानुपलब्धि आदि सभी भेद प्रभेदों का विशद विवेचन किया गया है। बौद्धों के प्रति कारण हेतु की सिद्धि, आगमप्रमाण का लक्षण तथा शब्द में वस्तु प्रतिपादन की शक्ति का भी इस समुद्देश में वर्णन मिलता है।

चतुर्थ समुद्देश में 9 सूत्र हैं। **'सामान्यविशेषात्मा तदर्थो विषयः'** सूत्र के द्वारा सामान्य विशेष उभय रूप प्रमाण के विषय को सिद्ध कर सांख्यों के केवल विशेष तथा नैयायिक वैशेषिकों के स्वतन्त्र रूप से सामान्य विशेष का निराकरण किया गया है। इस समुद्देश में सामान्य के तिर्यक् सामान्य तथा

ऊर्ध्वता सामान्य एवं विशेष के पर्याय और व्यतिरेक भेदों का भी उदाहरण सहित विवेचन किया गया है।

पंचम समुद्देश में 3 सूत्र हैं। इसमें प्रमाण के फल का विवेचन किया गया है। अज्ञाननिवृत्ति को प्रमाण का साक्षात् फल तथा हान, उपादान और उपेक्षा को परम्परा फल बताकर उसे प्रमाण से कथंचित् भिन्न और कथंचित् अभिन्न सिद्ध किया है।

षष्ठ समुद्देश में 74 सूत्र हैं। इसमें प्रमाणाभासों का विशद विवेचन हुआ है। इसमें स्वरूपाभास, प्रत्यक्षाभास, परोक्षाभास , स्मरणाभास , प्रत्यभि ज्ञानाभास, तर्काभास, अनुमानाभास, पक्षाभास, हेत्वाभास, हेत्वाभास के असिद्ध, विरुद्ध, अनैकान्तिक, अकिंचित्कर भेद उनके उदाहरण, दृष्टान्ताभास, दृष्टान्ताभास के भेद , बालप्रयोगाभास, आगमाभास, संख्याभास, विषयाभास, फलाभास, को दिग्दर्शित करते हुए वादी-प्रतिवादी का जय-पराजय व्यवस्था का भी प्रतिपादन किया गया है।

इस ग्रन्थ पर लघु अनंतवीर्य द्वारा प्रमेयरत्नमाला, प्रभाचन्द्राचार्य द्वारा प्रमेयकमलमार्तण्ड, भट्टारक चारुकीर्ति द्वारा प्रमेयरत्नालंकार, शान्तिवर्णी द्वारा प्रमेयकण्ठिका आदि अनेक टीकाएँ लिखी गयी हैं, जो सामान्य पाठक के लिये दुर्बोध हैं। श्रद्धेय क्षु. 105 विवेकानन्दसागरजी महाराज ने सम्पूर्ण ग्रन्थ के प्रत्येक सूत्र के शब्दार्थ, संस्कृतार्थ तथा हिन्दी अर्थ के साथ-साथ सूत्रगत प्रत्येक शब्द की सार्थकता सिद्ध करते हुए विशिष्ट भावों को सरल और सुबोध भाषा में प्रश्नोत्तर द्वारा भी पाठकों को हृदयंगम कराने का स्तुत्य प्रयास किया है। आप द्वारा अनुदित और व्याख्यायित प्रस्तुत कृति न्यायशास्त्र से अनभिज्ञ सामान्य पाठक को न्याय का सामान्य ज्ञान कराने के लिए अंधकार में पथभ्रष्ट मानव के लिए आलोक स्तम्भ के समान सिद्ध होगी। समग्रतः कृति लेखक के गहनज्ञान अद्वितीय सूझ-बूझ और अथक श्रम की परिचायिका है। यह श्रमसाध्य कृति शीघ्र ही अनेकान्त ज्ञानमंदिर शोध संस्थान, बीना (सागर) मध्यप्रदेश द्वारा प्रकाशित होकर न्यायशास्त्र के जिज्ञासुओं की जटिल गुत्थियों को सुलझाने में सहायक होगी, इस भावना के साथ...

मुजफ्फरनगर (उ.प्र.) **डॉ. सूरजमुखी जैन**

परीक्षामुखम्

प्रथमः परिच्छेदः

ग्रन्थकार की प्रतिज्ञा और उद्देश्य

प्रमाणादर्थसंसिद्धि - स्तदाभासाद्विपर्ययः।
इति वक्ष्ये तयो-र्लक्ष्म, सिद्धमल्पं लघीयसः॥

सूत्रान्वय : अहं वक्ष्ये। किं तत् ? लक्ष्म। किं विशिष्टं लक्ष्म ? सिद्धम्। पुनरपिकथंभूतं ? अल्पं। कान् ? लघीयसः। कयोस्तल्लक्ष्म ? तयोः प्रमाण तदाभासयोः। कुतः ? यतः अर्थस्य संसिद्धि भवति। कस्मात् ? प्रमाणात्। विपर्ययः भवति। कस्मात् ? तदाभासात् इति शब्दः हेत्वर्थे इति हेतोः

श्लोकार्थ : प्रमाणत् = प्रमाण से (सम्यग्ज्ञान से), अर्थ = पदार्थ की (प्रयोजन), संसिद्धिः = सम्यक् सिद्धि, तदाभासात् = उस प्रमाणाभास से, विपर्ययः = विपरीत (सम्यक् सिद्धि नहीं होती), इति = इस प्रकार, वक्ष्ये = कहूँगा, तयोः = उन दोनों के (प्रमाण और प्रमाणाभास के) लक्ष्म = लक्षण को, सिद्धम् = पूर्वाचार्यों से प्रसिद्ध, अल्पं = संक्षिप्त (पूर्वापर विरोध से रहित), लघीयसः = अल्पबुद्धियों के हितार्थ।

अन्वयार्थ : मैं ग्रन्थकार (माणिक्यनन्दि आचार्य) कहूँगा। वह क्या है ? लक्षण। वह लक्षण कैसा है ? अल्प है – संक्षिप्त पूर्वापर विरोध से रहित है, शब्द की अपेक्षा अल्प है पर अर्थ की दृष्टि से महान् है। वह लक्षण किसके उद्देश्य से कहा जा रहा है ? मंदबुद्धि वाले शिष्यों के उद्देश्य से कहा जा रहा है। यहाँ किन दो के लक्षण को कहा जा रहा है ? अर्थात् प्रमाण और प्रमाणाभास के। क्योंकि प्रमाण से जानने योग्य पदार्थ की सिद्धि होती है और प्रमाणाभास से पदार्थ की सम्यक् सिद्धि नहीं होती। श्लोक में इति शब्द हेतु अर्थ में है।

श्लोकार्थ : प्रमाण से (सम्यग्ज्ञान से) अभीष्ट अर्थ की सम्यक्

प्रकार से सिद्धि होती है और प्रमाणाभास से (मिथ्याज्ञान से) इष्ट अर्थ की सिद्धि नहीं होती। इसलिए मैं प्रमाण और प्रमाणाभास का पूर्वाचार्य प्रसिद्ध एवं पूर्वापर दोष से रहित संक्षिप्त लक्षण को लघुजनों (मंद बुद्धिवालों) के हितार्थ कहूँगा।

1. **परीक्षामुख ग्रन्थ के लेखक कौन हैं** ?

   परीक्षामुख ग्रन्थ के लेखक आचार्य माणिक्यनन्दि जी हैं।

2. **इस ग्रन्थ में किसका कथन है** ?

   इस ग्रन्थ में प्रमाण और प्रमाणाभास के लक्षणों का कथन है।

3. **परीक्षामुख किस अनुयोग का ग्रन्थ है** ?

   परीक्षामुख द्रव्यानुयोग का ग्रन्थ है।

4. **इस ग्रन्थ का नाम परीक्षामुख क्यों है** ?

   परीक्षानाम वस्तु स्वरूप के विचार करने का है। विवक्षित वस्तु का स्वरूप इस प्रकार है या नहीं अथवा अन्य प्रकार है। इस प्रकार है। इस प्रकार से निर्णय करने को परीक्षा कहते है। इस ग्रन्थ में प्रमाण के स्वरूप की परीक्षा की गई है और इसके द्वारा ही समस्त वस्तुओं की परीक्षा की जाती है, इसलिए इस ग्रन्थ का नाम परीक्षामुख रखा गया है।

5. **यह ग्रन्थ किस उद्देश्य से लिखा गया है** ?

   अव्युत्पन्न लोग न्यायरूप समुद्र में सरलता पूर्वक अवगाहन कर सकें इसी उद्देश्य से यह ग्रन्थ लिखा गया है।

6. **मंगलाचरण में इष्टदेव को नमस्कार क्यों नहीं किया** ?

   ऐसी शंका नहीं करना चाहिए क्योंकि इष्टदेवता को नमस्कार मन और काया से भी किया जाना संभव है। संभव है वचन निबद्ध न करके मन से कर लिया हो। अथवा काय से साष्टांग नमस्कार कर लिया हो। अथवा प्रमाण शब्द का अर्थ अरहंत परमेष्ठी भी होता है। मा - अन्तरंग और बहिरंगलक्ष्मी, आण शब्द - दिव्यध्वनि, प्र = उत्कृष्ट। मा च आण च

माणौ, प्रकृष्टौ माणौ यस्य सः प्रमाणः। उत्कृष्ट लक्ष्मी और उत्कृष्ट वाणी सहित व्यक्ति अरहंत भगवान् ही हैं। इस प्रकार यहाँ प्रमाण शब्द का अर्थ अरिहंत हुआ।

7. **आचार्य भगवन ने किसे कहने की प्रतिज्ञा की है ?**

प्रमाण और प्रमाणाभास को कहने की प्रतिज्ञा की है।

8. **प्रमाण और प्रमाणाभास से क्या होता है ?**

प्रमाण से अभीष्ट अर्थ की सम्यक् प्रकार सिद्धि होती है और प्रमाणाभास से इष्ट अर्थ की संसिद्धि नहीं होती है।

9. **प्रमाण और प्रमाणाभास किसे कहते हैं ?**

सम्यग्ज्ञान को प्रमाण और मिथ्याज्ञान को प्रमाणाभास कहते हैं।

10. **पदार्थ किसे कहते हैं ?**

पद के अर्थ को पदार्थ कहते हैं अथवा क्षायोपशमिक एवं क्षायिकज्ञान से जो भी विश्व में देखने और जानने में आता है, वह सब पदार्थ है।

11. **'लघीयस' से क्या प्रयोजन है ?**

लघीयस शिष्यों के प्रयोजन से कहा जा रहा है। लाघव तीन प्रकार का होता है बुद्धिकृत, शरीरकृत, कालकृत।

12. **'अल्प' से क्या प्रयोजन है ?**

यद्यपि यह लक्षण ग्रन्थ की अपेक्षा अल्प है तथापि वह अर्थ की दृष्टि से महान् है।

13. **लक्षण किसे कहते हैं ?**

1. मिले हुए बहुत से पदार्थों में से किसी एक पदार्थ को जुदा करने वाले हेतु को लक्षण कहते हैं।
2. जिसके अभाव में द्रव्य का ही अभाव हो जाए वही उसका लक्षण है।
3. जिसके द्वारा पदार्थ लक्षित किया जाता है वह भी लक्षण है।

14. **ग्रन्थ में (परीक्षामुख में) कितने सूत्र एवं परिच्छेद हैं** ?

ग्रन्थ में 208 सूत्र एवं 6 परिच्छेद (समुद्देश) हैं।

15. **ग्रन्थ कैसे होते हैं** ?

ग्रन्थ सम्बन्ध, अभिधेय, शक्यानुष्ठान एवं इष्ट प्रयोजन वाले होते हैं।

16. **प्रयोजन कितने प्रकार का होता है** ?

साक्षात् प्रयोजन और परम्परा प्रयोजन के भेद से प्रयोजन दो प्रकार का होता है। प्रस्तुत मंगलाचरण में 'वक्ष्ये' इस शब्द के द्वारा साक्षात् प्रयोजन और अर्थ संसिद्धि से परम्परा प्रयोजन कहा गया है।

17. **कथा कितने प्रकार की होती है** ?

कथा दो प्रकार की होती है-

1. वीतराग कथा
2. विजिगीषु कथा

18. **वीतराग कथा किसे कहते हैं** ?

गुरु तथा शिष्यों में अथवा रागद्वेष रहित विशेष विद्वानों में तत्त्व के निर्णय होने तक जो आपस में चर्चा की जाती है वह वीतराग कथा है।

19. **विजिगीषु कथा किसे कहते हैं** ?

वादी और प्रतिवादी में अपने पक्ष को स्थापित करने के लिए जय पराजय होने तक जो परस्पर में वचन प्रवृत्ति (चर्चा) होती है वह विजीगीषुकथा कहलाती है।

20. **प्रमाण के विषय में विवाद कितने प्रकार का है** ?

चार प्रकार का है - 1. प्रमाणस्वरूप, 2. प्रमाणसंख्या, 3. प्रमाण का विषय 4. प्रमाण का फल।

21. **प्रस्तुत ग्रन्थ के 6 परिच्छेदों में किसका निरूपण है** ?

प्रथम परिच्छेद में प्रमाण का लक्षण, द्वितीय परिच्छेद में प्रमाण के भेद, तृतीय परिच्छेद में परोक्षप्रमाण का लक्षण, चतुर्थ परिच्छेद में प्रमाण का

विषय, पंचम परिच्छेद में प्रमाण का फल, षष्ठ परिच्छेद में प्रमाणाभास के स्वरूप का निरूपण है।

22. **सूत्र किसे कहते हैं ?**

अल्पाक्षरमसंदिग्धं, सारवद् गूढनिर्णयम्।
निर्दोषं हेतुमत्तथ्यं सूत्रमित्युच्यते बुधैः॥

अर्थ –जिसमें अक्षर थोड़े हों, जो संशय रहित हो, गूढ़ अर्थ लिए हुए, दोष रहित, हेतु सहित और तथ्यपरक हो, उसे विद्वानों ने सूत्र कहा है।

प्रमाणस्य लक्षणम्

प्रमाण का लक्षण

स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम्॥1॥

सूत्रान्वय : स्व = अपने आपके, अपूर्वार्थ = जिसे किसी अन्य प्रमाण से जाना नहीं है। व्यवसायात्मकं = निश्चय करने वाले, ज्ञानं = ज्ञान को, प्रमाणं = प्रमाण कहते हैं।

सूत्रार्थ : अपने आपके और जिसे किसी अन्य प्रमाण से जाना नहीं है, ऐसे पदार्थ के निश्चय करने वाले ज्ञान को प्रमाण कहते हैं।

संस्कृतार्थ : यत्स्वमन्यपदार्थान्वा विजानाति तत् अथवा यत् स्वस्वरूपस्य पदार्थान्तर स्वरूपस्य वा निर्णयं विदधाति तदेव प्रमाणं (सम्यग्ज्ञानं) प्रोच्यते। तथा चानुमानम् प्रमाणं स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकज्ञानमेव प्रमाणत्वात्, यत्तु स्वापूर्वार्थ व्यवसायात्मक ज्ञानं न भवति तन्न प्रमाणं यथा संशयादिः घटादिश्च, प्रमाणं च विवादापन्नं, तस्मात्स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकज्ञानं प्रमाणम्।

टीकार्थ : जो अपने आपको अथवा अन्य पदार्थों को जानता है वह प्रमाण कहलाता है अथवा जो अपने स्वरूप के और अन्य पदार्थों के स्वरूप के निर्णय को विशेष रूप से धारण करता है, वह ही प्रमाण कहा जाता है।

इस सूत्र वाक्य में अनुमान प्रयोग के द्वारा प्रमाण की प्रमाणता का निरूपण किया गया है जैसे – स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मक ज्ञान ही प्रमाण हैं, प्रमाणता होने से। परन्तु जो स्वापूर्वार्थ व्यवसायात्मक ज्ञान नहीं है वह प्रमाण

नहीं होता है। जैसे-संशयादि और घटादि। विवाद को प्राप्त प्रमाण है, इसलिए स्वापूर्वार्थ व्यवसायात्मक ज्ञानप्रमाण है।

विशेष्य : पक्ष (धर्मी) = प्रमाण पद, साध्य = स्वापूर्वार्थ व्यवसायात्मक ज्ञान, हेतु = प्रमाणत्व, दृष्टान्त = संशयादि, निगमन = प्रमाण सामान्य मानने में किसी को भी विवाद नहीं है।

स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकज्ञान प्रमाण है, क्योंकि प्रमाणता उसमें पाई जाती है, जो स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मक ज्ञान नहीं हैं वह प्रमाण भी नहीं हैं। जैसे – संशयादि ज्ञान स्वापूर्वार्थ व्यवसायात्मक नहीं है, अतः प्रमाण नहीं है। जैसे – घट-पटादि। क्योंकि प्रमाण स्वापूर्वार्थ व्यवसायात्मक होता है, अतः वह ज्ञान ही हो सकता है। यहाँ प्रमाणस्वरूप है। तु का कथन असिद्ध भी नहीं है। उपरोक्त सूत्र में प्रमाण विशेष्य है शेष विशेषण है जो अन्य मतों के प्रमाण स्वरूप का निराकरण करते हैं।

23. सूत्र में ज्ञान विशेषण क्यों दिया है ?

नैयायिक मतावलम्बियों के द्वारा मान्य अज्ञानरूप सन्निकर्ष की प्रमाणता का निराकरण करने के लिए सूत्र में ज्ञान विशेषण दिया है जो सार्थक है।

24. सूत्र में व्यवसायात्मक विशेषण क्यों दिया है ?

बौद्धों के द्वारा मान्य निर्विकल्प प्रत्यक्ष की प्रमाणता का निराकरण करने के लिए अर्थात् जिस ज्ञान में विकल्प ही नहीं फिर भी वह संशय का निराकरण कैसे करेगा। इसलिए जैनाचार्य ने व्यवसायात्मक (निश्चायक) विशेषण दिया है।

25. सूत्र में 'अर्थ' विशेषण क्यों दिया है ?

विज्ञानाद्वैतवादी, पुरुषाद्वैतवादी, शून्यैकांतवादियों के द्वारा मान्य प्रमाण के स्वरूप को निराकरण करने के लिए 'अर्थ' पद को ग्रहण किया है।

26. अर्थपद के साथ अपूर्व विशेषण क्यों दिया है ?

ग्रहीतग्राही धारावाहिक ज्ञान की प्रमाणता के परिहार के लिए सूत्र में

अपूर्व विशेषण दिया है।

27. 'स्वपद' का सूत्र में ग्रहण क्यों किया है ?

परोक्षज्ञानवादी मीमांसकों, अस्वसंवेदनज्ञानवादी सांख्यों और ज्ञानान्तर प्रत्यक्षवादी योगों के मतों के निराकरणार्थ स्वपद का सूत्र में ग्रहण किया गया है।

28. प्रमाण किसे कहते हैं ?

जिसके द्वारा प्रकर्ष से अर्थात् संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय के व्यवच्छेद (निराकरण) से वस्तु तत्त्व जाना जाए वह प्रमाण कहलाता है।

29. अन्यथानुपपत्ति किसे कहते हैं ?

साध्य के बिना साधन के नहीं होने को अन्यथानुपपत्ति कहते हैं।

30. विचारवान कार्य करने वाले बुद्धिमान प्रमाण का अन्वेषण किसलिए करते हैं ?

हित की प्राप्ति और अहित के परिहार के लिए करते हैं।

अब आगे अपने कहे गये प्रमाण के लक्षण में जो ज्ञान यह विशेषण दिया है, उसका समर्थन करते हुए आचार्य भगवन् सूत्र कहते हैं-

हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत्॥ 2॥

सूत्रान्वय : हित = सुख, अहित = दुःख, प्राप्ति = प्राप्त कराने वाला, परिहार = निराकरण करने में। समर्थं = समर्थ, हि = जिससे, प्रमाणं = प्रमाण, ततः = उससे, ज्ञानम् = ज्ञान, एव = हि, तत् = वह।

सूत्रार्थ : सुख की प्राप्ति और दुःख का परिहार करने में समर्थ प्रमाण है वह प्रमाण ज्ञान ही हो सकता है। 'सन्निकर्ष' आदि नहीं।

संस्कृतार्थ : इंद्रियार्थयोः सम्बन्धः सन्निकर्षः। स च सन्निकर्षोऽचेतनो विद्यते। अचेतनाच्च सुखावाप्तिः दुःखविनाशो वा न जायते, अतः सन्निकर्षः प्रमाणं नो भवेत्। परंतु ज्ञानात्सुखावाप्तिः दुःखविनाशो वा जायते, अतो ज्ञानमेव प्रमाणम्। यतः सुखावाप्तौ दुःखविनाशे वा यत् समर्थं तदेव प्रमाणं प्रोक्तम्।

अस्यानुमानप्रयोग चेत्थम् – प्रमाणं ज्ञानमेवेति प्रतिज्ञा, हिताहित प्राप्ति परिहारसमर्थत्वादिति हेतुः, हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थं हि ज्ञानं, नान्यत्, यथा घटादयः इत्युदाहरणम्। तथा चेदमित्युपनयः तस्मात्तथेति निगमनम्।

टीकार्थ : इन्द्रिय और पदार्थ का सम्बन्ध सन्निकर्ष है और वह सन्निकर्ष अचेतन होता है और अचेतन से सुख की प्राप्ति अथवा दुःख का विनाश नहीं होता है। इसलिए सन्निकर्ष प्रमाण नहीं हो सकता। परंतु ज्ञान से सुख की प्राप्ति और दुःख का विनाश होता है। इसलिए ज्ञान ही प्रमाण है, जो सुख की प्राप्ति होने में और दुःख के विनाश करने में समर्थ है। उस ज्ञान को ही प्रमाण कहते हैं। सूत्रोक्त कथन का अनुमान प्रयोग इस प्रकार है – प्रमाण ज्ञान ही है। (प्रतिज्ञा) क्योंकि वह हित की प्राप्ति और अहित के परिहार करने में समर्थ है। (तु) जो वस्तु ज्ञानरूप नहीं है, वह हित की प्राप्ति और अहित के परिहार में भी समर्थ नहीं है जैसे – घटादिक (उदाहरण) हित की प्राप्ति और अहित के परिहार में समर्थ विवादापन्न प्रमाण है। (उपनय) अतः वह ज्ञान ही प्रमाण हो सकता है। (निगमन)।

31. **हित किसे कहते हैं** ?

सुख और सुख के कारण को हित कहते हैं।

32. **अहित किसे कहते हैं** ?

दुःख और दुःख के कारण को अहित कहते हैं।

33. **सूत्र में हि किस अर्थ में है** ?

तु अर्थ में (यस्मात्)।

34. **सन्निकर्ष किसे कहते हैं** ?

इन्द्रिय और पदार्थ का सम्बन्ध सन्निकर्ष कहलाता है।

35. **सन्निकर्ष को प्रमाण कौन मानता है** ?

नैयायिक मत वाले सन्निकर्ष को प्रमाण मानते हैं –

प्रत्यक्ष तो निर्विकल्प है, अतः व्यवसायात्मक नहीं ऐसा कहने वाले बौद्धों को लक्ष्य में रखकर यह तृतीय सूत्र कहते हैं।

तन्निश्चयात्मकं समारोपविरुद्धत्वादनुमानवत्॥ 3 ॥

सूत्रान्वय : तत् = वह (ज्ञान) निश्चयात्मकं = व्यवसायात्मक, समारोप = संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय, विरुद्धत्वात् = विरोधी होने से, अनुमानवत् = अनुमान के समान।

सूत्रार्थ : वह ज्ञान निश्चयात्मक है क्योंकि समारोप का विरोधी होने से, जैसे अनुमान की तरह।

संस्कृतार्थ : यथा समारोपविरुद्धत्वाद् बौद्धांगीकृतमनुमानं तन्मते निश्चयात्मकं, तथार्हन्मते समारोपपविरुद्धत्वात्प्रमाणमपि निश्चयात्मकम्।

टीकार्थ : जैसे समारोप का विरोधी होने से बौद्धों के द्वारा स्वीकार अनुमान उनके मत में निश्चयात्मक है। उसी प्रकार अर्हन्त् (जिन) के मत में समारोप का विरोधी होने से प्रमाण भी (ज्ञान) निश्चयात्मक है।

विशेष - धर्मी = प्रमाण रूप से स्वीकृत ज्ञानरूप वस्तु। साध्य = व्यवसायात्मक, हेतु: = समारोप विरोधीपना, दृष्टान्त = अनुमान।

36. **समारोप किसे कहते हैं ?**

संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय को समारोप कहते हैं।

37. **सूत्र में अनुमान का दृष्टान्त क्यों दिया है ?**

बौद्ध लोग प्रत्यक्ष को निर्विकल्प मानते हैं और अनुमान को पदार्थों का निश्चय करने वाला मानते हैं। इसलिए जब आप अनुमान को निश्चयात्मक मानते हैं तो प्रत्यक्ष को भी निश्चयात्मक मानना चाहिए।

38. **अनुमान किसे कहते हैं ?**

साधन से साध्य के ज्ञान को अनुमान कहते हैं।

39. **जिन (अर्हन्त) किसे कहते हैं ?**

जो वीतरागी, सर्वज्ञ, हितोपदेशी होते हैं, उन्हें जिन कहते हैं।

40. **अर्हन्तमत की मुख्य विशेषता क्या है ?**

अहिंसा, रत्नत्रय, अनेकान्त, स्याद्वाद, अपरिग्रहता।

41. **संशय, विपर्यय किसे कहते हैं ?**

दो तरफ ढलता हुआ निर्णय रहित ज्ञान संशय कहलाता है एवं यथार्थ से विपरीत वस्तु का निश्चय कराने वाले ज्ञान को विपर्यय कहते हैं।

42. **अनध्यवसाय किसे कहते हैं ?**

नाम, जाति, संख्यादि के विशेष परिज्ञान न होने से अनिर्णीत विषय वाले ज्ञान को अनध्यवसाय कहते हैं।

अनिश्चितोऽपूर्वार्थः ॥ 4 ॥

सूत्रान्वय : अनिश्चितः = जिसका निश्चय न हो, अपूर्वार्थः = अपूर्वार्थ।

सूत्रार्थ : जिस पदार्थ का पहले किसी प्रमाण से निश्चय नहीं किया गया हो, उसे अपूर्वार्थ कहते हैं।

संस्कृतार्थ : कस्माच्चिदपि सम्यग्ज्ञानात् यस्य पदार्थस्य कदापि निर्णयो न जातः सः अपूर्वार्थो निगद्यते। प्रमाणं तमेव निश्चिनोति। अतो यज्ज्ञानं कस्माच्वित्प्रमाणाद् विज्ञातं पदार्थं विजानाति तन्न प्रमाणम्। यतस्तेन तस्य पदार्थस्य निश्चयो न विहितः, किन्तु निश्चितमेव विज्ञातम्।

टीकार्थ : किसी भी सम्यक् ज्ञान से जिस पदार्थ का कभी निर्णय नहीं हुआ है, वह अपूर्वार्थ कहा जाता है। प्रमाण उस पदार्थ का ही निश्चय करता है। इसमें जो ज्ञान किसी प्रमाण से जाने हुए पदार्थ को जानता है वह प्रमाण नहीं होता इसलिए उसके द्वारा उस पदार्थ का निश्चय नहीं होता किन्तु निश्चित को ही जानता है।

43. **अपूर्वार्थ किसे कहते हैं ?**

जिस वस्तु का संशयादि के परिच्छेद करने वाले किसी अन्य प्रमाण से पहले निश्चय नहीं हुआ है अर्थात् जो वस्तु किसी यथार्थग्राही प्रमाण से अभी तक जानी नहीं गई है, उसे अपूर्वार्थ कहते हैं।

44. **सूत्र में अपूर्व विशेषण क्यों दिया है ?**

जो वस्तु किसी प्रमाण के द्वारा पहले जानी जा चुकी है, उसको पुनः

किसी ज्ञान के द्वारा जानना व्यर्थ है।

45. अवग्रह, ईहा और अवायादि अपूर्वार्थ नहीं रहे ?

ऐसा कहना ठीक नहीं क्योंकि अवग्रह से जाने हुए विषय को विशेष रूप से ईहा आदि जानते हैं इसलिए अपूर्वार्थ हैं।

अपूर्वार्थ क्या उक्त प्रकार का ही है अथवा अन्य प्रकार का भी है ऐसी जिज्ञासा होने पर यह सूत्र कहते हैं-

दृष्टोऽपि समारोपातादृक् ॥ 5 ॥

सूत्रान्वय : दृष्टः = अन्य प्रमाण से ज्ञात, अपि = भी, समारोपात् = समारोप होने पर, तादृक् = उसके समान (अपूर्वार्थ)।

सूत्रार्थ : किसी अन्य प्रमाण से ज्ञात भी पदार्थ समारोप हो जाने से अपूर्वार्थ हो जाता है।

संस्कृतार्थ : केनापि प्रमाणेन विज्ञातेऽपि पदार्थे यदा संशयो, विपर्ययः अनध्यवसायो वा जायते तदा सोऽप्यपूर्वार्थो निगद्यते, तथा च तस्य वेदकं ज्ञानमपि प्रमाणस्वरूपं भवेत्।

टीकार्थ : किसी भी प्रमाण के द्वारा ज्ञात पदार्थ में भी जब संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय हो जाता है तब वह भी अपूर्वार्थ कहा जाता है और उसी प्रकार उसको जानने वाला ज्ञान भी प्रमाण स्वरूप हो।

46. सूत्र पठित अपि शब्द का क्या अर्थ है ?

केवल अनिश्चित ही पदार्थ अपूर्वार्थ नहीं है अपितु प्रमाणान्तर से निश्चित या गृहीत पदार्थ में यदि संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय आदि हो जाए तो वह भी अपूर्वार्थ है।

47. प्रमाणान्तर निर्णीत पदार्थ अपूर्वार्थ क्यों है ?

समारोप हो जाने से प्रमाणान्तर निर्णीत पदार्थ अपूर्वार्थ है।

48. सूत्र का अभिप्राय रूप अर्थ क्या है ?

किसी ज्ञान के द्वारा विषय रूप से ग्रहीत भी वस्तु यदि धूमिल आकार हो जाने से निर्णय न की जा सके तो वह भी अपूर्व नाम से ही कही जाएगी

क्योंकि उसके विषय में समारोप उत्पन्न हो गया है।

स्वोन्मुखतया प्रतिभासनं स्वस्य व्यवसायः॥ 6॥

सूत्रान्वय : स्व = अपने आपके, उन्मुखतया = जानने से अभिमुख। स्वस्य = अपने आपका, व्यवसायः = निश्चायक।

सूत्रार्थ : स्वोन्मुख रूप से अपने आपको जानना स्वव्यवसाय है।

संस्कृतार्थ : स्वस्योन्मुखतया प्रतिभासनं स्वव्यवसायो निगद्यते। अत्र अहमात्मानं जाने इति प्रतीतिः जायते।

टीकार्थ : अपने आपके अनुभव से होने वाली आत्म प्रतीति को स्वव्यवसाय कहते हैं। यहाँ 'मैं' अपने आपको जानता हूँ इस प्रकार की प्रतीति होती है।

49. **स्वोन्मुखता किसे कहते है** ?

अपने आपको जानने के अभिमुख होना स्वोन्मुखता है।

50. **प्रतिभास किसे कहते हैं** ?

आत्म प्रतीति को प्रतिभास कहते हैं।

51. **स्वव्यवसाय किसे कहते हैं** ?

स्वानुभवरूप से आत्मप्रतीति होती है वह स्वव्यवसाय कहलाता है अर्थात् अपने आपको जानना स्वव्यवसाय है।

52. **आत्मा किसे कहते हैं** ?

अक्षणोति व्याप्नोति जानातीत्यक्ष आत्मा जो व्याप्त होकर जानता है।

स्वव्यवसाय का दृष्टान्त सूत्र में कहते हैं –

अर्थस्येव तदुन्मुखतया॥ 7॥

सूत्रान्वय : अर्थस्य = अर्थ की, इव = तरह, तत् = पदार्थ, उन्मुखतया = जानने के अभिमुख।

सूत्रार्थ : जिस प्रकार अर्थ के उन्मुख होकर उसे जानना अर्थव्यवसाय है।

संस्कृतार्थ : यथा यदा घटपटादि शब्दानां प्रतीतिः जायते तदा

तज्ज्ञानविषयभूतानां तत्तत्पदार्थानां ज्ञानमपि अस्माकमवश्यं जायते। तथा यदात्मानं प्रति लक्ष्यं जायते तदाऽऽत्मा किम्वस्तु विद्यते एतस्यापि ज्ञानमवश्यं जायते।

टीकार्थ : जिस प्रकार जब घट (घड़ा) पट (कपड़ा) इत्यादि शब्दों का हमें ज्ञान होता है तब उस ज्ञान के विषयभूत उन-उन पदार्थों का ज्ञान भी हमें अवश्य होता है। उसी प्रकार जब आत्मा के प्रति (की ओर) लक्ष्य जाता है, तब आत्मा क्या वस्तु है इसका भी ज्ञान अवश्य हो जाता है।

53. सूत्र का स्पष्ट अर्थ क्या है ?

जिस प्रकार पदार्थ के अभिमुख होकर उसके जानने को अर्थव्यवसाय कहते हैं उसी प्रकार स्व अर्थात् अपने आपके अभिमुख होकर जो अपने आपका प्रतिभास होता है। अर्थात् आत्मप्रतीति या आत्मनिश्चय होता है वह स्वव्यवसाय कहलाता है।

54. आठवें सूत्र में किसका कथन है ?

पदार्थ को जानने के समय होने वाली प्रतीति का कथन। पूर्वोक्त कथन को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हैं।

घटमहमात्मना वेद्मि ॥ 8 ॥

सूत्रान्वय : घटम् = घड़े को, अहम् = मैं, आत्मना = अपने आपके द्वारा, वेद्मि = जानता हूँ।

सूत्रार्थ : मैं घड़े को अपने आपके द्वारा जानता हूँ।

संस्कृतार्थ : घटमहमात्मना वेद्मि! इति प्रतीतौ 'अहम्' 'आत्मना' वेति पदाभ्यां स्वव्यवसायं जायते तथा घटम्पदेन परपदार्थ बोधो जायते। तथैव प्रमाणेन सर्वत्र स्वस्य परस्य वा बोधो जायते। अतएव प्रमाणं स्वपरनिश्चायकं निगदितम् ॥ 8 ॥

टीकार्थ : घड़े को मैं अपने द्वारा जानता हूँ, इस प्रकार ज्ञान में अहम् (मैं) आत्मना (अपने आपके द्वारा) इन दो पदों से स्व का निश्चय होता है और घटम् पद से पर पदार्थ का ज्ञान होता है। इसी प्रकार प्रमाण के द्वारा सर्वत्र

स्व और पर का व्यवसाय (ज्ञान) होता है। इसलिए प्रमाण को स्व और पर का निश्चायक कहा है।

55. **प्रस्तुत सूत्र में कर्त्ता, कर्म, करण और क्रिया क्या है ?**

अहम् (मैं) कर्त्ता, आत्मना (अपने आपके द्वारा) करण घटम् (घड़ा) – कर्म वेद्मि (जानता हूँ)– क्रिया।

56. **सूत्र का स्पष्ट अर्थ क्या है ?**

जैसे – जानने वाला पुरुष अपने – आपके द्वारा घट को जानता है, वैसे ही अपने आपको भी जानता है।

57. **ज्ञान केवल पदार्थ को ही जानता है, अपने आपको नहीं जानता है। ऐसी मान्यता किनकी है ?**

नैयायिक मत वालों की।

58. **कर्त्ता और कर्म की ही प्रतीति होती है ऐसा कौन मानते हैं ?**

भाट्ट मतानुयायी।

59. **नवमाँ सूत्र किसलिए कहा गया है ?**

उक्त वादियों के मत प्रतीति बाधित हैं, यह दिखलाने के लिए अर्थात् पर व्यवसाय मात्र का खण्डन करने के लिए कहा गया है।

कर्मवत्कर्तृ करणक्रिया प्रतीतेः ॥ 9 ॥

सूत्रान्वय : कर्मवत् = कर्म के समान, कर्तृ = कर्त्ता। करण = करण, क्रिया = क्रिया, प्रतीतेः = ज्ञान होने से।

सूत्रार्थ : कर्म के समान कर्त्ता, करण और क्रिया की भी प्रतीति होती है।

संस्कृतार्थ : प्रमाणेन यथा घटपटादि रूपस्य कर्मणो बोधो जायते तथैव कर्तुः करणस्य क्रियाया वा बोधो जायते। अर्थात् प्रमाणेन यथा अहं घटपटादि (कर्म) जाने इति प्रतीति जायते तथा कर्त करणक्रियाः प्रत्यपि अहं कर्त्रादिकं जाने इति प्रतीति जायते, नात्र काचिद् बाधा, अनुभव सिद्धं विद्यते।

टीकार्थ : प्रमाण के द्वारा जैसे घट-पट आदि रूप कर्म का बोध होता है उस प्रकार ही कर्त्ता (मैं) करण का (अपने द्वारा) और क्रिया (जानता हूँ) का भी बोध होता है, अर्थात् प्रमाण के द्वारा जैसे-मैं घड़े-कपड़े आदि को जानता हूँ ऐसी प्रतीति होती है। उसी प्रकार कर्त्ता, करण और क्रिया के प्रति भी इन कर्मादिक को भी जानता हूँ ऐसी प्रतीति होती है, इसमें कोई बाधा नहीं है अनुभव सिद्ध है।

60. **कर्म किसे कहते हैं ?**

ज्ञान की विषयभूत वस्तु कर्म कहलाती है एवं ज्ञप्तिरूप क्रिया के द्वारा जो कुछ भी जाना जाता है उसे कर्म कहते हैं।

61. **कर्त्ता किसे कहते हैं ?**

किसी भी वस्तु को जानने वाली आत्मा कर्त्ता कहलाती है।

62. **ज्ञप्ति किसे कहते हैं ?**

जानने रूप क्रिया को ज्ञप्ति कहते हैं।

63. **करण किसे कहते हैं ?**

जिसके द्वारा जाना जाता है ऐसा प्रमाण रूप ज्ञान करण कहलाता है।

64. **प्रमिति किसे कहते हैं ?**

प्रमाण के फल को प्रमिति कहते हैं।

65. **सूत्र के अंत में 'प्रतीतेः' यहाँ पंचमी विभक्ति का प्रयोग क्यों किया गया है ?**

हेतु अर्थ में।

66. **सूत्र का स्पष्ट अर्थ क्या है ?**

जैसे ज्ञान अपने विषयभूत पदार्थ को जानता है उसी प्रकार वह कर्त्ता, करण और क्रिया को भी जानता है।

67. **एक ही ज्ञान में कर्त्ता, कर्म आदि अनेक कारकों की प्रतीति कैसे संभव है ?**

अनेकान्त होने से।

किसी शंकाकार का कहना है कि यह कर्त्ता, कर्मादि की प्रतीति तो शब्द का उच्चारण मात्र ही है, वस्तु के स्वरूप बल से उत्पन्न नहीं हुई है अर्थात् वास्तविक नहीं है उसका उत्तर इस दसवें सूत्र में कहते हैं –

शब्दानुच्चारणेऽपि स्वस्यानुभवनमर्थवत्॥ 10॥

सूत्रान्वय : शब्द = शब्द का, अनुच्चारणे = उच्चारण नहीं करने पर, अपि = भी, स्वस्य = अपने आपका, अनुभवम् = अनुभवन, अर्थवत् = पदार्थ के समान।

सूत्रार्थ : पदार्थ के समान शब्द का उच्चारण नहीं करने पर भी अपने आपका अनुभव होता है।

संस्कृतार्थ : यथा प्रत्यक्षाणां घटपटादीनां वस्तूनां, परोक्षाणां मोदकादीनाम्वा तद्वाचक शब्दानुच्चारणेऽपि विचारमात्रेणैवालोकनमात्रेणैव वा ज्ञाने तदाकार अनुभवो जायते, यदिदममुकवस्तुं विद्यते इदं चामुकवस्तु। तथा अहमिदं करिष्ये, इदं मया जातम् इत्यादि विचारे (ज्ञाने) 'अहं मया' इत्यादि रूपेण यः स्वबोधः जायते, सः शब्दोच्चारणं विनैव जायते।

टीकार्थ : जैसे प्रत्यक्ष घड़ा कपड़ा आदि वस्तुओं का और परोक्ष लड्डू आदि वस्तुओं का तद्वाचक शब्द के उच्चारण बिना भी विचार मात्र से ही या अवलोकन मात्र से ही ज्ञान में तदाकार अनुभव हो जाता है कि यह अमुक वस्तु है और यह अमुक वस्तु उसी प्रकार 'मैं यह करूँगा' मेरे द्वारा यह हुआ इत्यादि (विचारों) ज्ञान में और मेरे द्वारा इत्यादि रूप से जो आत्मा का बोध होता है वह शब्दोच्चारण बिना भी होता है।

68. **शब्द किसे कहते हैं** ?

जो कहता है, उसे शब्द कहते हैं।

69. **सूत्र का अभिप्राय रूप अर्थ क्या है** ?

जैसे घड़े वस्त्रादि को देखकर घड़ा – वस्त्र शब्द के बोले बिना भी उसका बोध होता है, उसी प्रकार अहं इत्यादि शब्द के बिना कहे ही अपने आपका भी बोध होता है। अतः कर्त्ता, कर्म की प्रतीति केवल शाब्दिक नहीं किन्तु वास्तविक मानना चाहिए।

70. सूत्र नं. 11 में किसका कथन किया जा रहा है ?

स्वप्रतीति की पुष्टि का।

शब्दोच्चारण बिना भी स्वप्रतीति की पुष्टि -

को वा तत्प्रतिभासिनमर्थमध्यक्षमिच्छँस्तदेव तथा नेच्छेत्॥ 11 ॥

सूत्रान्वय : कः = कौन, वा = लौकिक (परीक्षक), तत् = ज्ञान से, प्रतिभासिनम् =प्रतिभासित हुए, अर्थम् = पदार्थ को, अध्यक्षम् = प्रत्यक्ष, इच्छत् = मानता हुआ। तत् = स्वयं ज्ञान को। एव = ही, तथा = प्रत्यक्षपने से, न = नहीं, इच्छेत = स्वीकार करे।

सूत्रार्थ : कौन ऐसा पुरुष है जो ज्ञान से प्रतिभासित हुए पदार्थ को प्रत्यक्ष मानता हुआ भी स्वयं ज्ञान को ही प्रत्यक्ष न माने। अपितु मानेगा ही।

संस्कृतार्थ : यदा ज्ञानं परपदार्थं प्रत्यक्षं करोति तदा स्वस्य प्रत्यक्षमपि तस्यावश्यं स्यात्। यदि च स्वं न जानीयात्तर्हि परपदार्थान् ज्ञातुमपि न शक्नुयात्। यथा घटादयः स्वं न जानन्त्यतः परमपि न जानन्ति। इति स्थितौ को लौकिकः परीक्षको वा जनो विद्यते यो ज्ञानप्रतिभासिनमर्थं प्रत्यक्षं स्वीकुर्वन् स्वयं ज्ञानं प्रत्यक्षं नो स्वीकुर्यात् ?।

टीकार्थ : जब ज्ञान दूसरे का प्रत्यक्ष करता है तब अपना भी प्रत्यक्ष करता होगा। यदि वह अपने को नहीं जानता होता तो दूसरे पदार्थों को भी नहीं जान सकता। जैसे - घट (घड़ा) आदि अपने आपको नहीं जानते इसलिए दूसरों को भी नहीं जानते। ऐसा कौन लौकिक या परीक्षक पुरुष है जो ज्ञान से प्रतिभाषित हुए पदार्थ को तो प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय माने परन्तु स्वयं ज्ञान को प्रत्यक्ष न माने। अर्थात् सभी मानेंगे।

71. युक्ति किसे कहते हैं ?

प्रमाणनयात्मको युक्तिः - प्रमाण नयात्मक कथन को युक्ति कहते हैं।

72. ज्ञान का मुख्य धर्म क्या है ?

प्रत्यक्षपना।

73. ज्ञान का विषय क्या है ?

ज्ञान का विषय पदार्थ है।

74. पदार्थ में प्रत्यक्षपना क्यों कहा ?

व्यवहार के प्रयोजन से प्रत्यक्षपने का उपचार किया गया है।

75. सूत्र में प्रयोजन क्या है ?

यहाँ निमित्त ज्ञान और पदार्थ में विषय-विषयी भाव रूप सम्बन्ध प्रयोजन है।

76. उपचार की प्रवृत्ति कब होती है ?

मुख्य वस्तु के अभाव में प्रयोजन और निमित्त के होने पर उपचार की प्रवृत्ति होती है।

77. सूत्र का अभिप्राय रूप अर्थ क्या है ?

कौन ऐसा लौकिक या परीक्षक पुरुष है, जो उस ज्ञान से प्रतिभाषित पदार्थ को प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय मानते हुए भी उसी ज्ञान को प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार न करे, अपितु वह करेगा ही। यहाँ पर विषयी ज्ञान के प्रत्यक्षपने रूप धर्म का विषयभूतपदार्थ में उपचार करके उक्त प्रकार का निर्देश किया है। अन्यथा अप्रमाणिकपने का प्रसंग आवेगा।

स्व की प्रतीति की पुष्टि का उदाहरण -

प्रदीपवत्॥ 12॥

सूत्रान्वय : प्रदीप = दीपक के, वत् = समान।

सूत्रार्थ : दीपक के समान।

संस्कृतार्थ : यथा दीपको घटपटादिकं परपदार्थं प्रकाशयन् स्वम् (दीपकम्) अपि प्रकाशयति तथैव ज्ञानमपि घटपटादिपरपदार्थं जानत्सत् स्वमपि जानाति।

टीकार्थ : जैसे दीपक घट-पट आदि दूसरे पदार्थों को प्रकाशित करता हुआ स्वयं अपने आपको (दीपक को) भी जानता है।

78. स्वप्रतीति की पुष्टि है तो दीपक का उदाहरण क्यों दिया ?

स्वपर प्रकाशी होने से - जैसे दीपक स्वपर प्रकाशी है वैसे ज्ञान भी स्वपर प्रकाशी है।

79. ज्ञान अपने आपको जानने में अन्य ज्ञान की अपेक्षा क्यों नहीं करता ?

क्योंकि ज्ञान आत्मा का ही गुण है।

80. दीपक के मुख्य दो गुण कौन से हैं ?

प्रकाशता और प्रत्यक्षता।

81. सूत्र का अभिप्राय रूप अर्थ क्या है।

ज्ञान अपने आपके प्रतिभास करने अर्थात् जानने में अपने से अतिरिक्त सजातीय अन्य पदार्थों की अपेक्षा से रहित है, क्योंकि पदार्थ को प्रत्यक्ष करने के गुण से युक्त होकर अदृष्ट - अनुयायी करण वाला है जैसे दीपक का भासुराकार।

82. 13 वाँ सूत्र क्यों कहा जा रहा है ?

प्रमाण की प्रमाणता का निश्चय करने के लिए ही यह सूत्र कहा गया है। अतः विभिन्न मतावलंबियों की मान्यता का निराकरण करते हुए स्वमत की पुष्टि हेतु यह सूत्र कहा जाएगा। मीमांसक - प्रमाण की प्रमाणता स्वतः और अप्रमाणता परतः।

सांख्य - प्रमाण की प्रमाणता परतः और अप्रमाणता स्वतः।

नैयायिक - प्रमाण की प्रमाणता और अप्रमाणता दोनों परतः मानते हैं।

83. प्रमाणता से क्या अभिप्राय है ?

यथार्थ रूप सत्यता से है।

84. अप्रमाणता से क्या अभिप्राय है ?

अयथार्थतारूप असत्यता से है।

प्रमाण की प्रमाणता का निर्णय -

तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च ॥ 13 ॥

सूत्रान्वय : तत्=उस (प्रमाण) की, प्रामाण्यं =प्रमाणता (सच्चाई, वास्तविकता), स्वतः = अपने-आप से, परतः = पर से, च = और।

सूत्रार्थ : प्रमाण की वह प्रमाणता अभ्यासदशा में अपने - आप से और अनभ्यासदशा में पर से होती है।

नोट : सूत्र वाक्य उपस्कार सहित होते हैं, उनका ठीक अर्थ जानने के जिए तत्संबंद्ध और तत्सूचित अर्थ का ऊपर से अध्याहार करना चाहिए। यहाँ अभ्यास एवं अनभ्यास दशा का अध्याहार किया गया है।

संस्कृतार्थ : तस्य प्रमाणस्य प्रामाण्यस्य (सत्यतायाः वास्तविकतायाः यथावद्विज्ञताया वा) निर्णयः प्रकारद्वयेन जायते। अभ्यासदशायामन्यपदार्थ सहायतां बिना स्वतः अनभ्यासदशायांचान्यकारणानां सहायतया।

टीकार्थ : उस प्रमाण की प्रमाणता (सच्चाई वास्तविकता या पदार्थ का यथावत् जानने का निर्णय) दो प्रकार से होता है। अभ्यासदशा में अन्य पदार्थ की सहायता बिना अपने आप और अनभ्यासदशा में अन्य कारणों की सहायता से।

85. अभ्यासदशा और अनभ्यास दशा किसे कहते हैं ?

परिचित अवस्था को अभ्यासदशा एवं अपरिचित दशा को अनभ्यास दशा कहते हैं।

86. परतः प्रमाणता कहने का तात्पर्य क्या है ?

उत्पत्ति में अन्तरंग कारण ज्ञानावरण का क्षयोपशम होने पर भी बाह्य कारण इन्द्रियादिक के निर्दोष होने पर ही नवीन प्रमाणता रूप कार्य उत्पन्न होता है अन्यथा नहीं। अतः उत्पत्ति में परतः होती है।

87. स्वतः प्रमाणता कहने का तात्पर्य क्या है ?

विषय के जानने रूप और प्रवृत्ति रूप प्रमाण के कार्य में अभ्यास दशा की अपेक्षा तो प्रमाणता स्वतः बाह्य कारण के बिना अपने आप ही होती है।

88. उपस्कार किसे कहते हैं ?

शब्द के द्वारा दूसरे शब्द का मिलना उपस्कार कहलाता है।

89. प्रथम परिच्छेद में किसका कथन किया गया है ?

प्रथम परिच्छेद में प्रमाण की स्वरूप विप्रतिपत्ति का निराकरण करते हुए प्रमाण के स्वरूप को अति संक्षेप में कहा गया है।

इति प्रथमः परिच्छेदः समाप्तः

(इस प्रकार प्रथम परिच्छेद समाप्त हुआ)

अथ द्वितीयः परिच्छेदः

अब आचार्य भगवन् प्रमाण की स्वरूप विप्रतिपत्ति का निराकरण करके संख्या विप्रतिपत्ति का निराकरण करते हुए प्रमाण के समस्त भेदों के संदर्भ का संग्रह करने को और प्रमाण की संख्या का प्रतिपादन करने वाला सूत्र कहते हैं –

तद्द्वेधा ॥ 1 ॥

सूत्रान्वय : तत् = वह प्रमाण, द्वेधा = दो प्रकार का।

सूत्रार्थ : वह प्रमाण दो प्रकार का है।

संस्कृतार्थ : प्रमाणस्य द्वावेव भेदौ विद्येते। अन्येषाम्प्रभेदानामनयोर्द्वयोरेवान्तर्भावात्।

टीकार्थ : प्रमाण के दो ही भेद हैं। अन्य प्रभेदों का इन दोनों में ही अन्तर्भाव हो जाता है।

90. **सूत्र में तत् शब्द से क्या प्रयोजन है ?**

तत् शब्द से प्रमाण का परामर्श किया गया है।

91. **किस प्रमाण का परामर्श किया गया है ?**

जिसका स्वरूप प्रथम परिच्छेद से जान लिया गया है।

92. **प्रमाण दो ही प्रकार का क्यों है ?**

क्योंकि प्रमाण के समस्त भेदों का इन दो भेदों में अन्तर्भाव हो जाता है।

93. **द्वितीय सूत्र किसलिए कहा जा रहा है ?**

क्योंकि प्रमाण के 2 भेद प्रत्यक्ष और अनुमान प्रकार से भी संभव हैं, इस प्रकार बौद्धों की आशंका का निराकरण करने के लिए प्रमाण के समस्त भेदों का संग्रह करने वाली संख्या को आचार्य सूत्र में कहते हैं।

प्रमाण के दो भेदों का स्पष्टीकरण –

प्रत्यक्षेतर भेदात् ॥ 2 ॥

सूत्रान्वय : प्रत्यक्ष = प्रत्यक्ष प्रमाण, इतर = परोक्ष, भेदात् = भेद से।

सूत्रार्थ : प्रत्यक्ष और इतर अर्थात् परोक्ष के भेद से प्रमाण दो प्रकार

का है।

संस्कृतार्थ : प्रत्यक्षं परोक्षं चेति प्रमाणस्य दौ भेदौ स्तः। प्रमाण-स्यान्यमतावलम्बि परिकल्पितानामेकद्वित्रिचतुः प्रभृतिभेदानां निराकरणार्थवेदं सूत्रविहितम्।

टीकार्थ : प्रत्यक्ष और परोक्ष इस प्रकार प्रमाण के 2 भेद हैं, अन्य मतावलम्बियों द्वारा कल्पित प्रमाण की एक, दो, तीन और चार आदि संख्या के निराकरण के लिए इस सूत्र को कहा गया है।

94. मात्र प्रत्यक्ष को ही प्रमाण कौन मानता है ?

चार्वाक मात्र प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानते हैं।

95. बौद्ध लोग कितने प्रमाण मानते हैं ?

बौद्ध लोग 2 प्रमाण मानते हैं – 1. प्रत्यक्ष 2. अनुमान।

96. सांख्य मतावलम्बियों की संख्या के विषय में क्या मान्यता है ?

सांख्य मतावलम्बियों की संख्या विषय में 3 प्रकार से मान्यता है – 1. प्रत्यक्ष 2. अनुमान 3. शब्द (आगम)।

98. प्राभाकर की प्रमाण के विषय में क्या मान्यता है ?

प्राभाकर की प्रमाण के विषय में 5 प्रकार की मान्यता है 1. प्रत्यक्ष 2. अनुमान 3. शब्द (आगम) 4. उपमान 5. अर्थापत्ति।

99. भाट्ट लोग क्या कहते हैं ?

भाट्ट लोग 6 प्रमाण मानते हैं – 1. प्रत्यक्ष 2. अनुमान 3. आगम 4. उपमान 5. अर्थापत्ति 6. अभाव।

100. पौराणिक क्या मानते है ?

पौराणिक लोग उपरोक्त प्रमाण के अलावा ऐतिह्य आदि को भी प्रमाण मानते हैं।

101. जैन लोगों की प्रमाण की संख्या के विषय में क्या मान्यता है ?

जैन लोग प्रत्यक्ष और परोक्ष दो ही प्रमाण मानते हैं।

102. सूत्र नं. 3 में आचार्य भगवन् क्या कहना चाहते हैं ?

सूत्र नं. तीन में प्रथम प्रमाण प्रत्यक्ष का लक्ष्ण कहते हैं। प्रत्यक्ष के स्वरूप निरूपण के लिए कहते हैं -

विशदं प्रत्यक्षम्॥ 3॥

सूत्रान्वय : विशदं = निर्मल (स्पष्ट), प्रत्यक्षं = प्रत्यक्ष, ज्ञानं = ज्ञान को।

सूत्रार्थ : विशद अर्थात् निर्मल और स्पष्ट ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते हैं।

संस्कृतार्थ : यस्य ज्ञानस्य प्रतिभासो निर्मलो विद्यते तत्प्रत्यक्षं प्रोच्यते। तथा चोक्तं श्री विद्यानन्दिस्वामिना :- निर्मलप्रतिभासत्वमेव स्पष्टत्वमिति। प्रतिपादितं च श्री भट्टाकलंकदेवैः प्रत्यक्षलक्षणं प्राहुः स्पष्टं साकारमंजसा इति। तथा चानुमानं -प्रत्यक्षं विशदज्ञानात्मकमेव, प्रत्यक्षत्वात्, परोक्षवत्। प्रत्यक्षमिति धर्मिनिर्देशः विशदज्ञानात्मकं साध्यं, प्रत्यक्षत्वादिति हेतुः परोक्षवदिति दृष्टान्तः। तथाहि - यन्न विशदज्ञानात्मकं तन्न प्रत्यक्षं, यथा परोक्षं, प्रत्यक्षं च विवादापन्नं, तस्माद्विशदज्ञानात्मकमिति।

टीकार्थ : जिस ज्ञान का प्रतिभास निर्मल होता है उसे प्रत्यक्ष कहते हैं और उसी प्रकार श्री विद्यानन्दि स्वामी के द्वारा कहा गया है - निर्मल प्रतिभासपना ही स्पष्ट है, प्रत्यक्ष है और श्री भट्टाकलंक देव के द्वारा प्रत्यक्ष के लक्षण को कहा गया है, स्पष्ट साकार मञ्जसा (स्पष्ट, साकार, निर्मल) इस प्रकार और अनुमान इस प्रकार है। प्रत्यक्ष विशदज्ञान स्वरूप ही है, प्रत्यक्ष होने से, परोक्ष के समान। इस प्रकार प्रत्यक्षधर्मी का निर्देश है विशदज्ञानपना साध्य है, प्रत्यक्ष होने से हेतु, परोक्ष के समान दृष्टान्त है।

इसलिए जो विशदज्ञानात्मक नहीं है वह प्रत्यक्ष नहीं है जैसे परोक्ष, प्रत्यक्ष विवादापन्न है इसलिए वह विशदज्ञानात्मक है।

विशेष : पक्ष-प्रत्यक्ष, हेतु-प्रत्यक्षपना, साध्य-ज्ञान की विशदता,

दृष्टान्त-परोक्ष के समान, उपनय-विवादापन्न ज्ञान प्रत्यक्ष है, निगमन - इसलिए वह विशदज्ञानात्मक है।

103. उपरोक्त सूत्र का सही अर्थज्ञान करने के लिए क्या करना है ?

ज्ञानपद की अनुवृत्ति कर लेना चाहिए।

104. उपरोक्त सूत्र कैसा है ?

यह सूत्र अनुमान के 5 अवयव प्रयोग रूप है।

105. अनुमान के 5 अवयव कौन-कौन से हैं ?

1. पक्ष, 2. हेतु, 3. दृष्टान्त, 4. उपनय, 5. निगमन।

106. प्रस्तुत सूत्र में पक्ष क्या है ?

धर्मी का निर्देश अर्थात् पक्ष है।

107. प्रस्तुत सूत्र में साध्य एवं हेतु क्या है ?

ज्ञान की विशदता साध्य एवं प्रत्यक्षपना हेतु है।

108. परोक्ष ज्ञानवत् यह दृष्टान्त क्यों दिया ?

अन्य के समक्ष न होने से व्यतिरेक व्याप्ति पूर्वक परोक्ष ज्ञान को व्यतिरेक रूप से बतलाया गया है।

अब विशदता का लक्षण कहते हैं-

प्रतीत्यन्तराव्यवधानेन विशेषवत्तया वा प्रतिभासनं वैशद्यम्॥ 4॥

सूत्रान्वय : प्रतीति = ज्ञानं, अन्तरा = दूसरे अव्यवधानेन = अंतराल से रहित, विशेषवत्तया = विशेषपने से, वा = और, प्रतिभासनम् = प्रतिभास को, वैशद्यम् = विशदता कहते हैं।

सूत्रार्थ : दूसरे ज्ञान के अंतराल से रहित और विशेषता से होने वाले प्रतिभास को विशदता कहते हैं।

संस्कृतार्थ : एकस्याः प्रतीतेरन्या प्रतीतिः प्रतीत्यन्तरं, तेनाव्यवधानं तेन प्रतिभासित्वं वैशद्यं निगद्यते। तथा च ज्ञानान्तर व्यवधानरहितत्वे सति वर्णसंस्थानादिविशेषग्रहणत्वं वैशद्यम्। विशदत्वं, निर्मलत्वं, स्पष्टत्वमिति तु वैशद्यस्यैव नामान्तराणि।

टीकार्थ : एक प्रतीति से भिन्न दूसरी प्रतीति को प्रतीत्यन्तर कहते हैं,

अन्य ज्ञान के व्यवधान से रहित जो निर्मल प्रतिभासपना है, उसे वैशद्य कहते हैं और दूसरे की सहायता के बिना होने पर पदार्थ के आकार और वर्ण आदि की विशेषता से होने वाला प्रतिभास वैशद्य है। परन्तु विशदता, निर्मलता, स्पष्टता, विशदता के ही पर्यायवाची नाम हैं।

109. प्रतीत्यन्तर किसे कहते हैं ?

प्रतीति नाम ज्ञान का है, एक प्रतीति से भि न्न दूसरी प्रतीति को प्रतीत्यन्तर कहते हैं।

110. व्यवधान किसे कहते हैं ?

अंतराल को व्यवधान कहते हैं।

111. परोक्षपना कहाँ माना जाता है ?

जहाँ पर विषय और विषयी में भेद होने पर व्यवधान होता है, वहाँ परोक्षपना है।

112. सूत्र का अभिप्राय रूप अर्थ क्या है ?

केवल प्रतीत्यंतर के अव्यवधान से होने वाले ज्ञान-का-नाम ही वैशद्य नहीं है। अपितु वस्तु के वर्ण, गंधादि तथा संस्थान (आकार-प्रकार) आदि विशेषताओं के द्वारा होने वाले विशिष्ट प्रतिभास को वैशद्य कहते हैं। वह प्रत्यक्ष मुख्य और संव्यवहार के भेद से दो प्रकार का है, ऐसा अभिप्राय मन में रखकर आचार्य भगवन् पहले सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष की उत्पत्ति का कारण और लक्षण कहते हैं।

सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष का कारण और लक्षण -

इन्द्रियानिन्द्रय निमित्तं देशतः सांव्यवहारिकम्॥ 5॥

सूत्रान्वय : इन्द्रिय = इन्द्रिय, अनिन्द्रिय = मन के, निमित्तं = निमित्त से, देशतः = एक देश, सांव्यवहारिकम् = सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है।

सूत्रार्थ : इन्द्रिय और मन के निमित्त से होने वाले एक देश विशद ज्ञान को सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं।

संस्कृतार्थ : यज्ज्ञानं देशतो विशदम् (ईषन्निर्मलम्) भवति, तथेन्द्रियाणां

मनसश्च साहाय्येन समुत्पद्यते तत्सांव्यवहारिकप्रत्यक्षं प्रोच्यते। तद्यथा - समीचीनः प्रवृत्तिनिवृत्तिरूपो व्यवहारः संव्यवहारः तत्र भवं प्रत्यक्षं सांव्यवहारिक प्रत्यक्षमिति व्युत्पत्त्यर्थः।

टीकार्थ : जो ज्ञान एक देश निर्मल (थोड़ा निर्मल) होता है तथा इन्द्रिय और मन की सहायता से उत्पन्न होता है, वह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहा जाता है। समीचीन प्रवृत्ति निवृत्ति रूप व्यवहार को सांव्यवहार कहते हैं, उसमें होने वाला प्रत्यक्ष सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है - यह व्युत्पत्ति है।

113. वह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कैसा है ?

इन्द्रिय और अनिन्द्रिय निमित्तक है।

114. सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष के कारण कौन-कौन से हैं।

इन्द्रिय और मन ये दोनों भी जिसके निमित्त हैं और पृथक्-पृथक् भी कारण है वह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है।

115. इन्द्रिय प्रत्यक्ष किसे कहते हैं ?

इन्द्रियों की प्रधानता और मन की सहायता से उत्पन्न होने वाले ज्ञान को इन्द्रिय प्रत्यक्ष कहते हैं।

116. अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष किसे कहते हैं।

ज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्म के विशिष्ट क्षयोपशम रूप विशुद्धि की अपेक्षा से सहित केवल मन से उत्पन्न होने वाले ज्ञान को अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष कहते हैं।

117. सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष का दूसरा नाम क्या है ?

मतिज्ञान।

नैयायिक लोग प्रत्यक्ष के उत्पादक इन्द्रिय और अनिन्द्रिय के समान अर्थ (पदार्थ) और प्रकाश (आलोक) को कारण मानते हैं तो उनकी इस धारणा का निराकरण करने के लिए आचार्य कहते हैं। अर्थात् पदार्थ और प्रकाश को ज्ञान के कारणत्व का निषेध -

नार्थालोकौ कारणं परिच्छेद्यत्वात्तमोवत्॥ 6॥

सूत्रान्वय : न = नहीं, अर्थ = पदार्थ, आलोक = प्रकाश, कारणं = कारण, परिच्छेद्यत्वात् = ज्ञान के विषय होने से, तमोवत् = अंधकार के समान।

सूत्रार्थ : पदार्थ और प्रकाश ये दोनों सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष के कारण नहीं हैं क्योंकि ज्ञान के विषय होने से (ज्ञेय) अंधकार के समान।

संस्कृतार्थ : अर्थश्च आलोकश्चेति अर्थालोकौ पदार्थप्रकाशावित्यर्थः। कारणं न ज्ञानजनकौ न स्तः। परिच्छेत्तुं योग्यौ परिच्छेद्यौ तयोर्भावस्तत्त्वं, तस्मात् परिच्छेद्यत्वात् ज्ञेयत्वादित्यर्थः। अर्थालोकाविति धर्मिनिर्देशः। कारणं न भवतीति साध्यम्। परिच्छेद्यत्वादिति हेतुः। तमोवदिति दृष्टान्तः। तथा च व्याप्तिः यच्च परिच्छेद्यं तन्न ज्ञानं प्रतिकारणं, यथान्धकारम्। परिच्छेद्यौ चार्थालोकौ, तस्मात् ज्ञानं प्रति कारणं न भवतः।

टीकार्थ : अर्थश्च आलोकश्च इति अर्थालोकौ (पदार्थ-प्रकाशौ इति अर्थः) यहाँ द्वन्द्व समास हैं। पदार्थ और प्रकाश यह अर्थ है कारण नहीं हैं अर्थात् ज्ञान के जनक नहीं हैं। जानने के योग्य सो परिच्छेद्य और उनका भाव परिच्छेद्यत्व (जानना पना) उससे ज्ञान के विषय होने से या ज्ञेय होने से यह अर्थ है। धर्मी-अर्थ और प्रकाश, हेतु-ज्ञान के विषय होने से, साध्य- कारण नहीं होता है, दृष्टान्त-अंधकार के समान, व्याप्ति-जो ज्ञान का विषय होता है, वह ज्ञान का कारण नहीं होता, जैसे अंधकार। अर्थात् पदार्थ और प्रकाश ज्ञान के विषय होने से ज्ञान के प्रति कारण नहीं होते हैं।

118. पदार्थ और प्रकाश ज्ञान के कारण क्यों नहीं हैं ?

क्योंकि ज्ञान के विषय होने से। जो-जो ज्ञान का विषय होता है, वह ज्ञान का कारण भी नहीं होता।

119. पदार्थ को ज्ञान का कारण मानने में क्या दोष आयेगा ?

ऐसा मानने पर विद्यमान पदार्थ का ही ज्ञान होगा और जो उत्पन्न ही नहीं हुए तथा नष्ट हो गए हैं। उनका ज्ञान नहीं होगा, क्योंकि जो नष्ट और अनुत्पन्न पदार्थ इस समय विद्यमान ही नहीं हैं, वे जानने में कारण कैसे हो सकते हैं।

120. प्रकाश को ज्ञान का कारण मानने में क्या दोष आयेगा ?

ऐसा मानने पर रात्रि में कुछ भी ज्ञान नहीं होगा। यह भी नहीं कह सकेंगे कि यहाँ अंधकार है।

121. ज्ञेय किसे कहते हैं ?

जानने योग्य वस्तु को ज्ञेय अर्थात् ज्ञान का विषय कहते हैं।

122. अंधकार का दृष्टान्त क्यों दिया है ?

क्योंकि अंधकार ज्ञान का विषय है यह सभी जानते हैं और कहते भी हैं कि यहाँ अंधकार है परन्तु वह ज्ञान का कारण नहीं प्रत्युतज्ञान का प्रतिबंधक है क्योंकि अंधकार में रखे हुए पदार्थों का ज्ञान नहीं होता।

अब सूत्रोक्त इसी साध्य को दूसरी युक्तियों से सिद्ध करते हैं-

तदन्वयव्यतिरेकानुविधानाभावाच्चकेशोण्डुकज्ञानवन्नक्तंचर ज्ञानवच्च॥ 7॥

सूत्रान्वय : तत् = उन (पदार्थ और प्रकाश का), अन्वय = अन्वय, व्यतिरेक = व्यतिरेक, अनुविधान = के अनुसार कार्य, अभावात् = अभाव होने से, केश = केशों में उण्डुक = मच्छर, ज्ञानवत् = ज्ञान की तरह, नक्तंचर = रात्रि में चलने वाले (उल्लू, चमगादड़) के, च = और।

सूत्रार्थ : अर्थ और प्रकाश ज्ञान के कारण नहीं हैं, क्योंकि ज्ञान का अर्थ और प्रकाश के साथ अन्वयव्यतिरेक रूप सम्बन्ध का अभाव है जैसे केशों में होने वाले मच्छर ज्ञान के साथ तथा नक्तंचर उल्लू आदि को रात्रि में होने वाले ज्ञान के साथ।

संस्कृतार्थ : ज्ञानं अर्थकारणकं न भवति अर्थान्वयव्यतिरेकानु विधानाभावात्। यद्यस्यान्वयव्यतिरेकौ नानुविद्धाति, न तत् तत्कारणकं, यथा केशोण्डुकज्ञानम्। नानुविदधते च ज्ञानमर्थान्वयव्यतिरेकौ तस्मादर्थकारणकं न भवतीत्यर्थः। 2 किञ्च ज्ञानं न प्रकाशकारणकं, प्रकाशान्वयव्यतिरेकानुविधाना-भावात्। यद्यस्यान्वयव्यतिरेकौ नानुविद्धाति न तत् तत्कारणकं, यथा नक्तञ्चराणां मार्जारादीनां ज्ञानम्। तथा चेदं ज्ञानं, तस्मात्प्रकाशकारणकं न भवतीति भावः।

टीकार्थ : पदार्थ ज्ञान का कारण नहीं है। क्योंकि ज्ञान का पदार्थ के

साथ अन्वय-व्यतिरेक सम्बन्ध नहीं है जो जिसके साथ अन्वय व्यतिरेक को धारण नहीं करता है, वह तत्कारणक नहीं है। जैसे केशों में होने वाला मच्छर का ज्ञान अर्थ के साथ अन्वय व्यतिरेक को धारण नहीं करता। इसलिए पदार्थ ज्ञान का कारण नहीं होता, यह अर्थ है और आगे प्रकाश ज्ञान का कारण नहीं है, क्योंकि ज्ञान का प्रकाश के साथ अन्वय व्यतिरेक सम्बन्ध नहीं है। जो कारण जिस कार्य के साथ अन्वय व्यतिरेक को धारण नहीं करता वह तत्कारणक (कारण वाला) भी नहीं है जैसे-रात्रि में विचरण करने वाले बिल्ली, उल्लू आदि के ज्ञान में प्रकाश कारण नहीं है। उसी प्रकार यह ज्ञान है इसलिए प्रकाश कारण वाला नहीं होता।

123. अन्वय किसे कहते हैं ?

कारण के होने पर कार्य का होना अन्वय कहलाता है।

124. व्यतिरेक किसे कहते हैं ?

कारण के अभाव में कार्य के अभाव को व्यतिरेक कहते हैं।

125. पदार्थ और प्रकाश ज्ञान के कारण क्यों नहीं हैं ?

यदि पदार्थ को ही ज्ञान का कारण माना जाए तो हवा में सिर पर उड़ते हुए बालों में मच्छर का ज्ञान होता है, इस प्रकार का दोष आता है और यदि प्रकाश को ही ज्ञान का कारण माना जाए तो रात्रि में चलने वाले उल्लू, चमगादड़ आदि को भी प्रकाश में ज्ञान होना चाहिए पर नहीं होता। पदार्थ के अभाव में भी ज्ञान होता है और प्रकाश के सद्भाव में भी ज्ञान नहीं होता। इस प्रकार अन्वय व्यतिरेक नहीं बनता।

126. नक्तञ्चर किसे कहते हैं ?

रात्रि में विचरण करने वाले उल्लू, चमगादड़, मार्जार आदि को नक्तञ्चर कहते हैं।

बौद्धों की मान्यता है कि जो ज्ञान जिस पदार्थ से उत्पन्न होता है ज्ञान उसी पदार्थ के आकार का होता है उसी का ग्राहक होता है अर्थात् जानता है। जैन लोग तो ज्ञान की अर्थ से उत्पत्ति मानते नहीं हैं अतः उनके यहाँ ज्ञान और ज्ञेय में ग्राह्य ग्राहकपना कैसे बनेगा ? ऐसी बौद्धों की आशंका होने पर आचार्य

उत्तर देते हुए आठवाँ सूत्र कहते हैं –

अतज्जन्यमपि तत्प्रकाशकं प्रदीपवत्॥ 8॥

सूत्रान्वय : अतज्जन्यम् = अर्थ से नहीं उत्पन्न हुआ, अपि=भी, तत् = वह ज्ञान अर्थ का, प्रकाशकं = प्रकाशक है, प्रदीपवत् = दीपक के समान।

सूत्रार्थ : अर्थ से नहीं उत्पन्न हो के भी ज्ञान अर्थ का प्रकाशक होता है, दीपक के समान।

नोट : अतज्जन्यता उपलक्षण रूप है, अतः उससे अतदाकार का भी ग्रहण करना है।

संस्कृतार्थ : ननु विज्ञानम् अर्थजन्यं सत् अर्थस्य ग्राहकं भवति तदुत्पत्तिमन्तरेणविषयं प्रति नियमायोगात्। इति चेन्न–घटाद्यजन्यस्यापि प्रदीपादेः घटादेः प्रकाशकत्ववत् अर्थाजन्यस्यापि ज्ञानस्यार्थप्रकाशकत्वाभ्युपगमात्। एवमेव तदाकारत्वात् तत्प्रकाशकत्वमित्यप्ययुक्तम् अतदाकारस्यापि प्रदीपादेः घटादिप्रकाशकत्वावलोकनात्।

टीकार्थ : बौद्ध मानते हैं कि ज्ञान पदार्थ से पैदा होता हुआ पदार्थ का ग्राहक होता है, क्योंकि तदुत्पत्ति के बिना विषय के प्रति कोई नियम नहीं होने के कारण ऐसा कहते हो तो ठीक नहीं है। घटादि से उत्पन्न नहीं हुए दीपक आदि को घटादि का प्रकाशक होने के समान पदार्थ से उत्पन्न नहीं होने वाले ज्ञान को भी पदार्थ का प्रकाशक माना जाने से दीपक आदि घट के आकार को नहीं धारण करके भी घट को प्रकाशित करता है ऐसा देखा जाता है।

127. उपलक्षण किसे कहते हैं ?

स्वस्य स्वसदृशस्य च ग्राहकं इति उपलक्षणम् – अपने और अपने सदृश का ग्रहण करना उपलक्षण है।

128. अतज्जन्य से क्या तात्पर्य है ?

उससे नहीं उत्पन्न हुआ।

129. तत्प्रकाशक से क्या तात्पर्य है ?

पदार्थ का ज्ञायक होता है।

130. उपलक्षण से किसे ग्रहण किया गया है ?

अतज्जन्यता के समान अतदाकार को भी ग्रहण किया गया है।

131. सूत्र का अभिप्राय रूप अर्थ क्या है ?

अर्थ से नहीं उत्पन्न हुआ भी ज्ञान पदार्थ का ज्ञायक होता है। यहाँ पर अतज्जन्यता उपलक्षण रूप है, अतः उससे अतदाकार का भी ग्रहण कर लेन चाहिए। अतज्जन्यता और अतदाकारता इन दोनों के विषय में प्रदीप का दृष्टान्त समान है।

जैसे – दीपक घट–पटादि पदार्थों से उत्पन्न नहीं होकर और उनके आकार का नहीं होकर के भी उनका प्रकाशक है वैसे ही ज्ञान भी घटादि पदार्थों से उत्पन्न नहीं होकर और उनके आकार का नहीं होकर भी उन पदार्थों को जानता है।

132. आगे नवमाँ सूत्र किसलिए कहा जा रहा है ?

बौद्धों की शंका निवारण हेतु यह सूत्र कहा जा रहा है, शंका इस प्रकार है आप जैन लोग तदुत्पत्ति और तदाकार को मानते नहीं हो तो फिर अमुक ज्ञान अमुक पदार्थ को ही जाने, इसका कोई नियामक कारण नहीं रहता फिर तो प्रत्येक ज्ञान विश्व के त्रिकालवर्ती और त्रिजगदव्यापी पदार्थों को जानने वाला हो जायेगा। बौद्धों की ऐसी शंका होने पर आचार्य भगवन् उत्तर देते हुए कहते हैं।

अतज्जन्य और अतदाकार होने पर भी प्रतिनियतार्थ जानने का कारण–

स्वावरणक्षयोपशम लक्षणयोग्यतया हि प्रतिनियतमर्थं व्यवस्थापयति प्रत्यक्षमिति शेषः ॥ 9 ॥

सूत्रान्वय : स्वावरण = अपने आवरण, क्षयोपशम = क्षयोपशम लक्षण वाली, योग्यतया = योग्यता से, प्रत्यक्षम् = प्रत्यक्ष प्रमाण, प्रतिनियतमर्थम् = प्रतिनियत पदार्थों के जानने की, व्यवस्थापयति = व्यवस्था करता है।

सूत्रार्थ : अपने आवरण कर्म के क्षयोपशम लक्षण वाली योग्यता से प्रत्यक्ष प्रमाण प्रतिनियत पदार्थों के जानने की व्यवस्था करता है।

नोट : अतज्जन्यता उपलक्षण रूप है, अतः उससे अतदाकार का भी ग्रहण करना है।

संस्कृतार्थ : स्वानि च तानि आवरणानि स्वावरणानि, तेषां क्षयः उदयाभावः, तेषामेव सदवस्थारूपः उपशमः, तावेव लक्षणं यस्याः योग्यतायाः, तया हेतुभूतया प्रतिनियतमर्थं व्यवस्थापयति (विषयी करोति) प्रत्यक्षमिति शेषः। निष्कर्षश्चायम्-कल्पयित्वापि तदुत्पत्तिं, ताद्रूप्यं, तदध्यवसायं च प्रतिनियतार्थ-व्यवस्थापनार्थं योग्यतावश्यमभ्युपगन्तव्या।

टीकार्थ : अपने ज्ञान के रोकने वाले आवरणों को स्वावरण कहते हैं (उदय प्राप्त) उन आवरण कर्मों के (वर्तमान काल में) उदयाभाव को क्षय कहते हैं और (अनुदय प्राप्त) उन्हीं कर्मों सत्ता में अवस्थित रहने को उपशम कहते हैं ये दोनों ही जिसके लक्षण हैं ऐसी योग्यता के द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान प्रतिनियत अर्थ की व्यवस्था करता है यहाँ प्रत्यक्ष यह पद शेष है (सूत्र में नहीं कहा गया है, अतः ऊपर से अध्याहार कर लेना) इसका यह निष्कर्ष है कि उक्त प्रकार से तदुत्पत्ति (ज्ञान का पदार्थ से उत्पन्न होना) ताद्रूप्य (पदार्थ के आकार होना) और तदध्यवसाय (उसी पदार्थ को जानना) यद्यपि प्रतिनियत अर्थ के जानने में कारण रूप से नियामक नहीं है, तथापि दुराग्रह वश कल्पना करके भी अर्थात् उन तीनों को मान करके भी आप लोगों को योग्यता अवश्य ही स्वीकार करना चाहिए।

133. सूत्र में 'हि' शब्द किस अर्थ में है ?

'हि'शब्द 'यस्मात्' के अर्थ में है। अतः योग्यता वस्तु ज्ञान की व्यवस्थापक है।

134. प्रतिनियत व्यवस्था किसे कहते हैं ?

इस ज्ञान का यह पदार्थ ही विषय है, अन्य नहीं ऐसी व्यवस्था को प्रतिनियत व्यवस्था कहते हैं।

135. क्षयोपशम किसे कहते हैं ?

सर्वघाति स्पर्धक अनन्त गुणहीन होकर और देशघाती स्पर्धकों में परिणत होकर उदय में आते हैं, उन सर्वघाती स्पर्धकों का अनन्त गुण हीनत्व ही

क्षय कहलाता है और उनका देशघाती स्पर्धकों के रूप से अवस्थान होना **उपशम** है। उन्हीं क्षय और उपशम से संयुक्त उदय **क्षयोपशम** कहलाता है। कर्मों के क्षय और उपशम से उत्पन्न गुण **क्षायोपशमिक** कहलाता है।

बौद्ध लोग पदार्थ को ज्ञान का कारण होने से परिच्छेद्य अर्थात् जानने योग्य ज्ञेय कहते हैं, आचार्य उनके मत का निराकरण करते हैं –

कारणस्य च परिच्छेद्यत्वे करणादिना व्यभिचारः ॥ 10 ॥

सूत्रान्वय : कारणस्य = कारण को, च = और, परिच्छेद्यत्वे = ज्ञान का विषय मानने पर, करणादिना = इन्द्रियादि से, व्यभिचारः = असंगत दोष।

सूत्रार्थ : कारण को ज्ञान का विषय मानने पर इन्द्रियादि से व्यभिचार (असंगत) दोष आता है, क्योंकि इन्द्रिय ज्ञान की कारण तो हैं परन्तु विषय नहीं हैं अर्थात् इन्द्रियाँ अपने आपको नहीं जानती हैं।

संस्कृतार्थ : यद्यत्कारणं तत्तत्प्रमेयम् इति व्याप्ति स्वीकारे तु इन्द्रियादिना व्यभिचारः संजायेत। चक्षुरादीनां ज्ञानम्प्रति कारणत्वेऽपि परिच्छेद्यत्वाभावात्।

टीकार्थ : जो–जो ज्ञान का कारण है वह–वह ज्ञान का विषय है। इस प्रकार व्याप्ति स्वीकार करने पर इन्द्रियादि के द्वारा (साथ) व्यभिचार (असंगत) नाम का दोष आएगा। चक्षु आदि इन्द्रियों का ज्ञान के प्रति कारणपना होने पर भी ज्ञान के विषय का अभाव होने से अर्थात् अपने आपको नही जानने से।

136. सूत्र का अभिप्राय रूप अर्थ क्या है ?

करणादि (इन्द्रियादि) ज्ञान के कारण हैं अतः परिच्छेद (ज्ञेय) हैं, इसलिए इन्द्रियों से व्यभिचार सिद्ध है।

137. उक्त सूत्र में बौद्धों के अनुसार साध्य और हेतु क्या है ?

कारण होना – हेतु। विषय होना – साध्य। अतः – बौद्ध लोग मानते हैं कि जो–जो ज्ञान का कारण है, वह–वह ज्ञान का विषय है। इस प्रकार के अनुमान में इन्द्रियों में हेतु तो रह गया। परन्तु साध्यत्व विषय होना

नहीं रहा, क्योंकि ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है जो अपनी इन्द्रियों से अपनी ही इन्द्रियों को जान लेवे। इस प्रकार इन्द्रियों के साथ व्यभिचार दोष आता है।

138. व्यभिचार किसे कहते हैं ?

हेतु के रहने पर साध्य के न रहने को व्यभिचार दोष कहते हैं।

अब सूत्रकार अतीन्द्रिय जो मुख्य प्रत्यक्ष है, उसका स्वरूप कहते हैं-

सामग्री विशेषविश्लेषिताखिलावरणमतीन्द्रियमशेषतो मुख्यम्॥ 11॥

सूत्रान्वय : सामग्री = द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप, विशेष = विशेषता से, विश्लेषित =दूर हो गये हैं, अखिल = सम्पूर्ण, आवरणम् = आवरण, अतीन्द्रियम् = इन्द्रियातीत, अशेषतः = पूर्णतया, मुख्यम् = मुख्य।

नोट : सूत्र में विशद और ज्ञान इन दो पदों की अनुवृत्ति कर लेनी चाहिए।

सूत्रार्थ : सामग्री की विशेषता से दूर हो गये हैं, समस्त आवरण जिसके ऐसे अतीन्द्रिय और पूर्णतया विशद ज्ञान को मुख्य प्रत्यक्ष कहते हैं।

संस्कृतार्थ : सामग्री द्रव्यक्षेत्रकालभावलक्षणा, तस्याः विशेषः समग्रता लक्षणः तेन विश्लेषितान्यखिलान्यावरणानि येन तत्तथोक्तम्, इन्द्रियाण्यतिक्रान्तम् अतीन्द्रियम्। तथा च यज्ज्ञानं सामग्रीविशेषनिराकृतसमस्त ज्ञानावरणादिकर्मत्वात्, इन्द्रियागोचरत्वाच्च साकल्येन निर्मलं जायते। तन्मुख्यप्रत्यक्षं पारमार्थिकप्रत्यक्षं वा प्रोच्यते इति भावः।

टीकार्थ : योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूप लक्षण वाली सामग्री उसका विशेष सर्वकारण-कलापों की परिपूर्णता है। उस सामग्री विशेष से विघटित कर दिये हैं, अखिल (समस्त) आवरण जिसमें ऐसा वह ज्ञान है। इन्द्रियों को अतिक्रमण (उल्लंघन) करके (अर्थात् इन्द्रियों की सहायता के बिना जानने में समर्थ समस्त ज्ञेय पदार्थों को अतः अतीन्द्रिय है।) जो ज्ञान सामग्री विशेष एवं समस्त ज्ञानावरणादि कर्मों को निराकृत करने से वह मुख्य प्रत्यक्ष या पारमार्थिक प्रत्यक्ष कहा जाता है - यह भाव है सूत्र का।

139. सामग्री किसे कहते हैं ?

योग्य, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, की प्राप्ति को सामग्री कहते हैं।

140. उक्त सूत्र में लक्ष्य एवं लक्षण क्या है ?

मुख्य प्रत्यक्ष लक्ष्य है, सामग्री विशेष से दूर हो गये हैं, समस्त आवरण जिसके यह अतीन्द्रिय ज्ञान का लक्षण है।

141. इन्द्रियों की सहायता के बिना समस्त ज्ञेयों को जानने में समर्थ कौन है ?

मुख्य प्रत्यक्ष।

पारमार्थिक पूर्णतया विशद क्यों है, उसका समाधान –

सावरणत्वे करणजन्यत्वे च प्रतिबंधसम्भवात्॥ 12॥

सूत्रान्वय : सावरणत्वे = आवरण सहित में, करणजन्यत्वे = इन्द्रिय जनित में, च = और, प्रतिबंध = रुकावट, संभवात् = संभव होने से।

सूत्रार्थ : क्योंकि आवरण सहित और इन्द्रिय जनित मानने पर ज्ञान का प्रतिबंध संभव है।

संस्कृतार्थ : सावरणत्वे करणजन्यत्वे च सत्येव ज्ञाने प्रतिबंधः सम्भवति। अतो यज्ज्ञानं निरावरणमतीन्द्रियं वा जायते तदेव मुख्यप्रत्यक्षमवगन्तव्यम्।

टीकार्थ : आवरण सहितपना और इन्द्रियजन्यपना होने पर ही ज्ञान में प्रतिबंध संभव होता है इसलिए जो ज्ञान निरावरण और अतीन्द्रिय होता है उसे ही मुख्य प्रत्यक्ष जानना चाहिए।

142. मुख्य प्रत्यक्ष किसे कहते हैं ?

मुख्य प्रत्यक्ष इन्द्रिय आलोक आदि समस्त पर वस्तुओं की सहायता से रहित केवल आत्मा के सन्निधि मात्र की अपेक्षा से उत्पन्न होता है अतः उसे अतीन्द्रिय कहते हैं।

143. मुख्य प्रत्यक्ष कितने प्रकार का है ?

तीन प्रकार का है – 1. अवधिज्ञान 2. मनःपर्यय ज्ञान, 3. केवलज्ञान।

144. अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान तो निरावरण नहीं है, फिर मुख्य प्रत्यक्ष क्यों है ?

अतीन्द्रिय होने से इन दोनों ज्ञानों में भी विशदता पाई जाती है।

145. केवलज्ञान मुख्य प्रत्यक्ष क्यों है ?

केवलज्ञान अतीन्द्रिय और निरावरण है।

146. ज्ञान की विशदता के लिए आवश्यक क्या है ?

निरावरण और अतीन्द्रियपना अत्यावश्यक है।

॥ इति द्वितीयः परिच्छेदः समाप्तः ॥

(इस प्रकार द्वितीय परिच्छेद पूर्ण हुआ)

अथ तृतीयः परिच्छेदः

परोक्षस्य लक्षणं निर्णयो वा

परोक्ष का लक्षण या निर्णय

परोक्षमितरत्॥ 1॥

सूत्रान्वय : परोक्षम् = परोक्ष, इतरत् = भिन्न (प्रत्यक्ष से भिन्न)

सूत्रार्थ : जो प्रत्यक्ष से इतर अर्थात् भिन्न है, वह परोक्ष है।

संस्कृतार्थ : अविशदं परोक्षम्। अथवा यस्य ज्ञानस्य प्रतिभासो निर्मलो न भवति तत्परोक्षं कथ्यते।

टीकार्थ : अविशद ज्ञान परोक्ष है अथवा जिस ज्ञान का प्रतिभास निर्मल नहीं होता वह परोक्ष कहा जाता है।

147. इतर शब्द से क्या अर्थ लेना है ?

इतर शब्द पूर्व में कहे गये प्रमाण के प्रतिपक्ष को कहता है।

148. परोक्ष किसे कहते हैं ?

प्रत्यक्ष से भिन्न अविशद स्वरूप वाला जो ज्ञान है, वह परोक्ष है। परोक्ष = परः + अक्ष = आत्मा से भिन्न इन्द्रियादि जो पर उनकी सहायता की अपेक्षा रखने वाला ज्ञान परोक्ष ज्ञान है। पराणीन्द्रियाणि आलोकादिश्च परेषां ज्ञानं परोक्षम्, पर का अर्थ इन्द्रियाँ और आलोकादि है, और पर अर्थात् इन इन्द्रियादि के अधीन जो ज्ञान होता है, वह परोक्षज्ञान है।

परोक्ष के भेद और कारण को इस सूत्र में कहते हैं –

प्रत्यक्षादि निमित्तं स्मृति प्रत्यभिज्ञानतर्कानुमानागम भेदम्॥ 2॥

सूत्रान्वय : प्रत्यक्षादि = प्रत्यक्षादि, निमित्तं = कारण, स्मृति = स्मरण, प्रत्यभिज्ञान = प्रत्यभिज्ञान, तर्क = तर्क, अनुमानं = अनुमान, आगम = आगम, भेदम् = भेद।

सूत्रार्थ : प्रत्यक्षादि जिसके निमित्त हैं, ऐसा परोक्ष प्रमाण स्मृति प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम के भेद से 5 प्रकार का है।

नोट : सूत्र में आदि शब्द से परोक्ष का ग्रहण करना है 'प्रत्यक्षादि निमित्तं यस्य' प्रत्यक्षादि है निमित्त जिसके ऐसा विग्रह है ते भेदाः यस्य वे स्मृति आदिक जिसके भेद हैं। ऐसा विग्रह है और स्मृति आदि में द्वन्द्व समास है।

संस्कृतार्थ : संस्कारस्य उद्‍बोधः (प्राकट्यं) सः निबन्धनं यस्याः सा तथोक्ता। या धारणाख्यसंस्कारप्राकट्यकारणिका तदित्युल्लेखिनी च जायते सा स्मृतिः निगद्यते।

टीकार्थ : प्रत्यक्षादि 6 परोक्षज्ञान के कारण हैं तथा परोक्ष के स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान, आगम ये 5 भेद हैं।

149. परोक्ष ज्ञान का कारण क्या है ?

प्रत्यक्षादि (आदि से परोक्ष का भी ग्रहण है।)

150. सूत्र का स्पष्ट अर्थ क्या है ?

स्मृति प्रत्यक्ष पूर्वक होती है, प्रत्यभिज्ञान प्रत्यक्ष और स्मरण–पूर्वक होता है, प्रत्यक्ष-स्मरण और प्रत्यभिज्ञान पूर्वक तर्क होता है, प्रत्यक्ष, स्मरण, प्रत्यभिज्ञान और तर्क पूर्वक अनुमान होता है, श्रावण प्रत्यक्ष, स्मृति और संकेत पूर्वक आगम ज्ञान होता है।

151. स्मृति आदि को परोक्ष क्यों कहा है ?

स्मृति आदि पाँच प्रमाणों में दूसरे पूर्व प्रमाणों की आवश्यकता होती है, इसलिए इन्हें, परोक्ष कहते हैं।

अब क्रम प्राप्त स्मृति प्रमाण के लक्षण का कारण दिखलाते हैं –

संस्कारोद्‍बोध निबन्धना तदित्याकारा स्मृतिः ॥ 3 ॥

सूत्रान्वय : संस्कार = (धारण, ज्ञानरूप) संस्कार की, उद्‍बोध = प्रकटता, निबंधना = कारण से, तत् = वह, इति = इस प्रकार, आकार = आकार, स्मृति = स्मरण।

सूत्रार्थ : (धारणा रूप) संस्कार की प्रकटता जिसमें कारण है ऐसे (तत्) वह इस प्रकार के आकार वाले ज्ञान को स्मृति कहते हैं।

संस्कृतार्थ : संस्कारस्य उद्‍बोधः (प्राकटयं) सः निबन्धनं यस्याः सा

तथोक्ता। या धारणाख्यसंस्कार प्राकट्यकारणिका तदित्युल्लेखिनी च जायते सा स्मृतिः निगद्यते।

टीकार्थ : संस्कार का उद्बोध अर्थात् प्रकटपना वह है कारण जिसका वह स्मृति कही जाती है जो धारणा ज्ञानरूप संस्कार की प्रकटता से वह (तत्)इस आकार अर्थात् उल्लेख वाली है वह स्मृति कही जाती है।

नोट : भवति क्रिया पद शेष है जिसका अध्याहार ऊपर से कर लेना चाहिए।

152. स्मृति किसे कहते हैं।

वह इस प्रकार के आकार वाली स्मृति होती है।

152. स्मृति का कारण क्या है ?

धारणा रूप ज्ञान की प्रगटता (वर्तमान में किसी का प्रत्यक्ष)।

स्मृति का दृष्टांत कहते हैं -

स देवदत्तो यथा॥ 4॥

सूत्रान्वय : सः = वह, देवदत्तः = देवदत्त, यथा = जैसे।

सूत्रार्थ : जैसे कि वह देवदत्त।

153. सूत्र का अभिप्राय रूप अर्थ क्या है ?

किसी व्यक्ति ने पहले कभी देवदत्त नामक पुरुष को देखा और उसकी धारणा कर ली। पीछे वह धारणारूप संस्कार प्रकट हुआ और उसे याद आया कि वह देवदत्त। इस प्रकार उसके स्मरणरूप ज्ञान को स्मृति कहते हैं।

अब क्रमप्राप्त प्रत्यभिज्ञान का स्वरूप कहते हैं-

दर्शनस्मरणकारणकं सङ्कलनं प्रत्यभिज्ञानं, तदेवेदं तत्सदृशं तद्विलक्षणं तत्प्रतियोगीत्यादि॥ 5॥

सूत्रान्वय : दर्शन = दर्शन, स्मरण = स्मरण, कारणकं = कारण, सङ्कलनम् = जोड़रूप, प्रत्यभिज्ञानं = प्रत्यभिज्ञानं, तत् = वह, सदृशं = समान,

विलक्षणं = विलक्षण (भिन्न), प्रतियोगी = किसी वस्तु का प्रतिरूप बताने वाला, इत्यादि = इस प्रकार और भी,

सूत्रार्थ : दर्शन और स्मरण जिसमें कारण हैं ऐसे जोड़रूप ज्ञान को प्रत्यभिज्ञान कहते हैं।

जैसे – यह वही है, यह उसके समान है यह उससे विलक्षण है, यह उसका प्रतियोगी है इत्यादि।

संस्कृतार्थ : दर्शनं च स्मरणं च दर्शनस्मरणे ते कारणे यस्य तत्तथोक्ता तथा च दर्शनस्मरणहेतुकत्वे सति संकलनात्मक ज्ञानत्वं प्रत्यभिज्ञानत्वम्। तच्चैकत्वं, सादृश्यं, वैलक्षण्यं, प्रातियौगिकञ्चेति चतुर्विधम्। तदेवेदमित्येकत्व-प्रत्यभिज्ञानम्। तत्सदृशमिति सादृश्यप्रत्यभिज्ञानम्। तद्विलक्षणमिति वैलक्षण्य-प्रत्यभिज्ञानम्। तत्प्रतियोगीति प्रातियौगिक प्रत्यभिज्ञानम्।

टीकार्थ : दर्शनं च स्मरणं च दर्शन स्मरणे = यहाँ द्वन्द्व समास है, ते कारणे यस्य यहाँ बहुब्रीहि समास है। दर्शन और स्मरण में द्वन्द्व समास है और ये दोनों हैं कारण-जिसमें यह बहुब्रीहि समास है। दर्शन और स्मरण है कारण जिसके ऐसे जोड़रूप ज्ञान को प्रत्यभिज्ञान कहते हैं और वह (प्रत्यभिज्ञान) एकत्व, सादृश्य, विलक्षण और प्रतियोगी के भेद से चार प्रकार का है।

1. यह वही है इस प्रकार एकत्वप्रत्यभिज्ञान है।
2. यह उसके समान है इस प्रकार सदृशप्रत्यभिज्ञान है।
3. यह उससे विलक्षण है यह वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञान है।
4. यह उसका प्रतियोगी है, इस प्रकार प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान है।

154. एकत्वादि को विषय करने वाले ज्ञान को प्रत्यभिज्ञानपना कैसे है ?

वर्तमान का प्रत्यक्ष (दर्शन) और पूर्व का स्मरण कारण होने से एकत्व सादृश्यादि के विषय करने वाले ज्ञान को प्रत्यभिज्ञानपना है।

इन प्रत्यभिज्ञान के भेदों का क्रम से उदाहरण दिखलाते हुए कहते हैं –

यथा स एवायं देवदत्तः, गोसदृशो गवयः गोविलक्षणो महिषः, इदमस्माद्दूरम्, वृक्षोऽयमित्यादि॥ 6॥

सूत्रान्वय : यथा = जैसे, सः = वह, एव = ही, अयम् = यह, देवदत्तः = देवदत्त, गो = गाय, सदृशः = समान, गवयः = गवय, विलक्षणः = भिन्न, महिषः = भैंस, इदम् = यह, अस्मात् = इससे, दूरं = दूर, वृक्षः = वृक्ष, अयम् = यह, इत्यादि = इस प्रकार और।

सूत्रार्थ : जैसे - यह वही देवदत्त है (एकत्व प्रत्यभिज्ञान), गाय के समान नील गाय होती है (सादृश्य प्रत्यभिज्ञान) गाय से भिन्न भैंसा होता है (विलक्षण प्रत्यभिज्ञान) यह इससे दूर है (प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान), यह वृक्ष है, (सामान्य प्रत्यभिज्ञान) इत्यादि।

संस्कृतार्थ : एकत्वप्रत्यभिज्ञानस्य स एवायं देवदत्तः, सादृश्य प्रत्यभिज्ञानस्य गोसदृशो गवयः। वैलक्षण्यप्रत्यभिज्ञानस्य गोविलक्षणो महिषः प्रातियौगिक प्रत्यभिज्ञानस्य इदमस्माद्दूरमिति क्रमशः दृष्टान्ता विज्ञेयाः (प्रत्येतव्याः)।

टीकार्थ : एकत्व प्रत्यभिज्ञान का यह वही देवदत्त है, सादृश्य प्रत्यभिज्ञान का गाय के समान नीलगाय है। वैलक्षण प्रत्यभिज्ञान का गाय से भिन्न भैंसा, प्रातियौगिक प्रत्यभिज्ञान का यह इससे दूर है इस प्रकार क्रमशः दृष्टान्त जानना चाहिए।

155. सूत्र में आदि शब्द से क्या लेना है ?

दूध और जल का भेद करने वाला हंस होता है, छह पैर का भ्रमर माना गया है। तत्त्वज्ञों को सात पत्तों वाला विषमच्छद नामक वृक्ष जानना चाहिए। 5 वर्णों वाला मेचक नामक रत्न होता है, विशाल स्तन वाली युवती होती है, एक सींग वाला गैंड़ा कहा जाता है, आठ पैर वाला अष्टापद होता है और सुंदर सय (गर्दन के बाल) से युक्त सिंह होता है।

156. इस सूत्र का कहने का अभिप्राय क्या है ?

इसी प्रकार के हंस आदि को देखकर उसी रूप में जब सत्यापित करता है तब यह संकलन ज्ञान प्रत्यभिज्ञान कहलाता है क्योंकि दर्शन और स्मरणरूप कारण सब जगह समान हैं अन्य मतावलम्बियों में तो इन्हें भिन्न-भिन्न प्रमाण मानना पड़ेगा उपमानादि में इनका अन्तर्भाव नहीं होता।

अब क्रम प्राप्त ऊह (तर्क) प्रमाण के विषय में कहते हैं –

उपलम्भानुपलम्भनिमित्तंव्याप्तिज्ञानमूहः ॥ 7 ॥

सूत्रान्वय : उपलम्भ = निश्चय करना, अनुपलम्भ = अनिश्चय करना, निमित्तं = कारण, व्याप्तिज्ञानम् = व्याप्ति ज्ञान को, ऊहः = तर्क, व्याप्ति – किसी एक पदार्थ में दूसरे पदार्थ का पूर्णरूप से मिला होना।

सूत्रार्थ : निश्चय (अन्वय) और अनिश्चय (व्यतिरेक) जिसमें निमित्त हैं, ऐसे व्याप्ति के ज्ञान को तर्क कहते हैं।

संस्कृतार्थ : उपलम्भश्चानुपलम्भश्च उपलम्भानुपलम्भौ निश्चया-निश्चया वित्यर्थः, तौ निमित्तं यस्य तत् उपलम्भानुपलम्भनिमित्तम्। तथा च साध्यसाधनविषयिक निश्चयानिश्चयहेतुकत्वे सति व्याप्तिज्ञानत्वं तर्कत्वम्।

टीकार्थ : उपलम्भश्चानुपलम्भश्च उपलम्भानुपलम्भौ यह द्वन्द्व समास है। निश्चय और अनिश्चय इस प्रकार अर्थ है। वे दोनों निमित्त हैं जिसके वह निश्चयानिश्चय निमित्तक हैं और उसी प्रकार साध्य साधन विषय का निश्चय और अनिश्चय कारण होने पर व्याप्ति के ज्ञान को तर्क कहते हैं।

157. अन्वय किसे कहते हैं ?

साधन के सद्भाव में साध्य का सद्भाव अन्वय कहलाता है।

158. व्यतिरेक किसे कहते हैं ?

साध्य के अभाव में साधन का अभाव व्यतिरेक कहलाता है।

159. साध्य एवं साधन का निश्चय और अनिश्चय किसके अनुकूल रहता है ?

क्षयोपशम के अनुकूल रहता है।

160. व्याप्ति किसे कहते हैं ?

किसी एक पदार्थ के होने पर दूसरे पदार्थ के होने और उसके न होने पर दूसरे के भी न होने को व्याप्ति कहते हैं।

161. तर्क किसे कहते हैं ?

अन्वय और व्यतिरेक जिसमें निमित्त हैं, ऐसे व्याप्ति के ज्ञान को ऊह

(तर्क) कहते हैं।

162. सूत्र में उपलम्भ शब्द से किसे ग्रहण करना है ?

सूत्र में उपलम्भ शब्द से प्रमाण सामान्य का ग्रहण करना चाहिए।

163. किस प्रकार की व्याप्ति के ज्ञान को परोक्ष माना गया है ?

अनियत दिग्देश वाली व्याप्ति के ज्ञान को परोक्ष माना गया है।

व्याप्ति की प्रवृत्ति के प्रकार एवं उदाहरण -

इदमस्मिन्सत्येव भवत्यसति तु न भवत्येव॥ 8॥

यथाऽग्नावेव धूमस्तदभावे न भवत्येवेति च॥ 9॥

सूत्रान्वय : इदम् = यह, अस्मिन् = इसमें, सति = होने पर, एव = ही, भवति = होती है, असति = नहीं होने पर, तु = परन्तु, न = नहीं, यथा = जैसे, अग्नौ = अग्नि में, धूमः = धुआँ, तत् = उसके, अभावे = अभाव में, न = नहीं, भवति = होता है, इति = इस प्रकार, च = और।

सूत्रार्थ : यह साधनरूप वस्तु इस साध्यरूप वस्तु के होने पर ही होती है और साध्य रूप वस्तु के नहीं होने पर नहीं होती है, जैसे - अग्नि में ही धूम होता है और अग्नि के अभाव में धूम नहीं होता है।

संस्कृतार्थ : स च तर्कः इदमस्मिन् सत्येव भवति असति तु न भवति इत्येवम्रूपः प्रवर्तते, यथा वह्नौ सत्येव धूमः उपलभ्यते, वहन्यभावे तु नैवोपलभ्यते॥

टीकार्थ : और वह तर्क यह इसमें होने पर ही होता है परन्तु नहीं होने पर नहीं होता है इस प्रकार रूप की प्रवृत्ति होती है जैसे - अग्नि के होने पर ही धूम की उपलब्धि होती है, परन्तु अग्नि के अभाव में धूम की प्राप्ति नहीं होती है।

164. व्याप्ति कितने प्रकार की होती है ?

दो प्रकार की होती है - 1. अन्वयव्याप्ति 2. व्यतिरेक व्याप्ति।

165. व्याप्ति बनाते समय किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ?

1. साध्य साधन के अविनाभाव रूप सम्बन्ध का।

2. साधन का साध्य के साथ अविनाभाव होना चाहिए।
3. साध्य का साधन के साथ अविनाभाव नहीं होना चाहिए।
4. उदाहरण में धूम के होने पर अग्नि का निश्चय है, पर जहाँ पर अग्नि हो वहाँ पर धूम का होना आवश्यक नहीं है।

इस समय अनुमान का क्रम प्राप्त है अतः उसके लक्षण को कहते हैं –

साधनात् साध्य विज्ञानमनुमानम् ॥ 10 ॥

सूत्रान्वय : साधनात् = साधन से, साध्य = साध्य का, विज्ञानम् = विशिष्टज्ञान, अनुमानम् = अनुमान, (कथयति = कहते हैं)।

सूत्रार्थ : साधन से साध्य के ज्ञान को अनुमान कहते हैं।

संस्कृतार्थ : साधनाद् धूमादेः लिंगात्साध्येऽग्न्यादौ लिंगि यद्विज्ञानं जायते तदनुमानं, तस्यैवाग्न्याद्यव्युत्पत्तिविच्छित्तिकरणत्वात्तस्यैवाग्न्याद्य-व्युत्पत्तिविच्छित्तिकरणत्वात्। (साधनाज्जायमानं साध्यविज्ञानमेवानुमानमिति भावः)।

टीकार्थ : साधन धूमादि लिंग से साध्य अग्नि आदिक लिंगि में जो ज्ञान होता है वह अनुमान है क्योंकि वह साध्य ज्ञान ही अग्नि आदि के अज्ञान को दूर करता है। साधन से अर्थात् जाने हुए लिंग से साध्य में अर्थात् अग्नि आदिक लिंगि में जो ज्ञान होता है वह अनुमान है।

166. साधन को ही अनुमान में कारण मान लिया जाय ना कि साधन के ज्ञान को ?

ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि साधन से इस पद का अर्थ निश्चय पथ प्राप्त धूमादिक से यह विवक्षित है। जिसे जाना नहीं है वह साधन नहीं हो सकता, क्योंकि जिस धूमादि लिंग को नहीं जाना है, उसको साध्य के ज्ञान में कारण मानने पर सोये हुए अथवा जिन्होंने धूमादि लिंग को ग्रहण नहीं किया उनको भी अग्नि आदि का ज्ञान हो जायेगा। अतः यह सिद्ध हुआ कि जाने हुए साधन से होने वाला साध्य का ज्ञान ही साध्य विषयक अज्ञान को दूर करने से अनुमान है। लिंग ज्ञानादिक नहीं।

167. प्रमाणात् विज्ञानम् अनुमानम् प्रमाण से जो ज्ञान होता है उसे अनुमान कहते हैं, इतना मात्र लक्षण मानने पर क्या दोष आता है?

अनुमेय आगम आदि से व्यभिचार आता है। इसलिए उसके निवारणार्थ साध्य का विज्ञान अनुमान है ऐसा कहा है तथापि प्रत्यक्ष से भी व्यभिचार न आये इसलिए साधन से साध्य के ज्ञान को अनुमान कहा है।

साधन का लक्षण कहते हैं -

साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतुः ॥ 11 ॥

सूत्रान्वय : साध्य = साध्य के साथ, अविनाभावित्वेन = अविनाभावी होने से, निश्चितः = निश्चित होता है। हेतुः = हेतु।

सूत्रार्थ : साध्य के साथ अविनाभाव सम्बन्ध होने के कारण हेतु निश्चित होता है।

संस्कृतार्थ : निश्चितसाध्यान्यथानुपपत्तिकं साधनम्। यस्य साध्याभावासम्भवनियमरूपा व्याप्तविनाभावाद्यपरपर्यायः। साध्यान्यथानुपत्तिस्तर्काख्येन प्रमाणेन निर्णीता तत्साधनमित्यर्थः ॥

टीकार्थ : जिसकी साध्य के साथ अन्यथानुपपत्ति (अविनाभाव) निश्चित है, उसे साधन कहते हैं। जिसकी साध्य के अभाव में नहीं होने रूप व्याप्ति, अविनाभाव आदि नामों वाली साध्यान्यथानुपपत्ति साध्य के होने पर ही होना और साध्य के अभाव में नहीं होना तर्क नाम के प्रमाण द्वारा निर्णीत है, वह साधन है, यह अर्थ है।

168. साधन किसे कहते हैं?

अन्यथानुपपत्ति मात्र जिसका लक्षण है उसे लिंग साधन कहते हैं।

169. अविनाभाव किसे कहते हैं?

जो जिसके बिना न हो उसे अविनाभाव कहते हैं।

अब अविनाभाव के भेदों को दिखलाते हुए कहते हैं -

सहक्रमभवनियमोऽविनाभावः ॥ 12 ॥

सूत्रान्वय : सहभाव = एक साथ होना, क्रमभव = क्रम से होना,

नियम = नियामक, अविनाभावः = अविनाभाव है।

सूत्रार्थ : सहभाव नियम और क्रमभाव नियम को अविनाभाव कहते हैं।

संस्कृतार्थ : साध्यसाधनयोः साहचर्य नियमः क्रमवर्तित्वनियमो वा अविनाभावः प्रोच्यते। सहभाव नियमः, क्रमभावनियमश्चेति द्वौ तस्याविनाभावस्य भेदौ स्तः।

टीकार्थ : साध्य और साधन का एक साथ एक समय होने का नियम (सहचर्य)सहभाव नियम अविनाभाव है। और क्रम से होने का (काल के भेद से साध्य और साधन का) नियम क्रमभाव नियम इस प्रकार दो उस अविनाभाव के भेद हैं।

170. सहभाव अविनाभाव किसे कहते हैं ?

एक साथ रहने वाले साध्य साधन के सम्बन्ध को सहभाव अविनाभाव कहते हैं।

171. क्रमभाव अविनाभाव किसे कहते हैं ?

काल के भेद से क्रम पूर्वक होने वाले साध्य-साधन के सम्बन्ध को क्रमभाव अविनाभाव कहते हैं।

172. किन दो कारणों में सहभाव होता है ?

सहचारी और व्याप्य-व्यापक कारणों में सहभाव होता है।

अब आचार्य सहभाव नियम का विषय दिखलाते हुए सूत्र कहते हैं-

सहचारिणो र्व्याप्यव्यापकयोश्च सहभावः ॥ 13 ॥

सूत्रान्वय : सहचारिणः = सहचारी, व्याप्यव्यापकयोः = व्याप्य और व्याप्यक में, सहभावः = सहभाव कहते हैं।

सूत्रार्थ : सहचारी और व्याप्य-व्यापक पदार्थों में सहभाव नियम होता है।

संस्कृतार्थ : सहचारिणो र्व्याप्यव्यापकयोश्चाविनाभावः सहभाव-नियमाविनाभावः प्रोच्यते। यथा रूपरसयो र्व्याप्यप्यापकयोश्च सहभाव नियमोऽ

विनाभावो विद्येते।

टीकार्थ : साथ-साथ रहने वालों में तथा व्याप्य और व्यापक में जो अविनाभाव सम्बन्ध होता है, उसे सहभाव नियम नामक अविनाभाव सम्बन्ध कहते हैं, जैसे रूप और रस में और व्याप्य-व्यापक में सहभाव अविनाभाव होता है।

173. सहचारी कौन कहलाता है ?

रूप और रस सहचारी कहलाते हैं।

174. व्याप्य और व्यापक कौन कहलाते हैं ?

वृक्षत्व और शिंशपात्वादि व्याप्य-व्यापक कहलाते हैं।

175. व्याप्य किसे कहते हैं ?

जो एक देश या स्वल्प देश में रहता है वह व्याप्य कहलाता है।

176. व्यापक किसे कहते हैं ?

जो अधिक देश में रहता है, वह व्यापक कहलाता है।

क्रमभाव नियम का विषय दिखलाते हुए कहते हैं -

पूर्वोत्तरचारिणोः कार्यकारणयोश्च क्रमभावः ॥ 14 ॥

सूत्रान्वय : पूर्वचरः = पूर्वचर, उत्तर चरः = उत्तर चर, कार्यकारणयोः = कार्य कारण में, क्रमभाव : = क्रमभाव, च = और।

सूत्रार्थ : पूर्वचर और उत्तर चर में तथा कार्य और कारण में क्रमभाव नियम होता है।

संस्कृतार्थ : पूर्वोत्तरचारिणोः कार्यकारणयोश्चाविनाभावः क्रमभाव-नियमाविनाभावः प्रोच्यते। यथा कृतिकोदयशकटोदययोः धूमनलयोश्च क्रमभाव नियमोऽविनाभावो विद्यते।

टीकार्थ : पूर्वचर और उत्तर चर में तथा कार्य और कारण में क्रमभाव नियम होता है। वह क्रमभाव अविनाभाव कहलाता है जैसे - पूर्वचर कृतिकोदय, उत्तरच्चर शकटोदय तथा कार्यकारण धूम और अग्नि में क्रमभाव होता है।

177. पूर्वोत्तरचारी कौन कहलाते हैं ?

कृतिका नक्षत्र का उदय और रोहिणी नक्षत्र का उदयादि पूर्वोत्तरचारी कहलाते हैं।

178. कार्य-कारण कौन कहलाते हैं ?

धूम और अग्निादि कार्य-कारण कहलाते हैं।

अविनाभाव का निर्णय (व्याप्ति ज्ञान का निर्णय) किस प्रमाण से होता है -

तर्कात्तन्निर्णयः ॥ 15 ॥

सूत्रान्वय : तर्कात् = तर्क प्रमाण से, तत् = उस अविनाभाव का, निर्णयः = निश्चय।

सूत्रार्थ : अविनाभाव सम्बन्ध का निश्चित (निर्णय) तर्क प्रमाण से होता है।

संस्कृतार्थ : स हि अविनाभावस्तर्कप्रमाणादेव निश्चीयते।

टीकार्थ : क्योंकि वह अविनाभाव तर्क प्रमाण से ही निश्चित होता है।

179. यह सूत्र क्यों रचा गया है ?

अविनाभाव सम्बन्ध का निर्णय प्रत्यक्षादि प्रमाणों से नहीं होता, तर्क प्रमाण से ही होता है एवं अन्य मतावलम्बियों ने तर्क को प्रमाण नहीं माना है। अतः उनके द्वारा मान्य प्रमाण संख्या मिथ्या ठहरती है, क्योंकि प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान, अर्थापत्ति तथा अभाव इन किसी भी प्रमाण से व्याप्ति का निर्णय नहीं हो सकता है। इसलिए सभी को तर्क प्रमाण मानना ही चाहिए। (तर्क ही निर्णायक होता है)

साधन से होने वाले साध्य के ज्ञान को अनुमान कहते हैं, ऐसा प्रतिपादन तो हो चुका किन्तु साध्य किसे कहते हैं यह ज्ञात न हो सका।

अब साध्य का लक्षण कहते हैं -

इष्टमबाधितमसिद्धं साध्यम् ॥ 16 ॥

सूत्रान्वय : इष्टम् = इष्ट (अभिप्रेत), अबाधितम् = अबाधित को, असिद्धं = असिद्ध को, साध्यम् = साध्य (कहते हैं)।

सूत्रार्थ : इष्ट, अबाधित और असिद्धभूत पदार्थ को साध्य कहते हैं।

संस्कृतार्थ : यद् वादिनः साधयितुमिष्टं, प्रत्यक्षादिप्रमाणैरबाधितं, संशयाद्याक्रान्तं च विद्यते तत्साध्यं प्रोच्यते।

टीकार्थ : जिसको वादी सिद्ध करना चाहता है वह इष्ट है, प्रत्यक्षादि प्रमाणों के द्वारा अबाधित और संशयादि का उल्लंघन विद्यमान है और जो सिद्ध नहीं है वह साध्य कहा जाता है।

180. सूत्र में साध्य के कितने विशेषण हैं ?

इष्ट, अबाधित और असिद्ध ये तीन विशेषण हैं।

181. इष्ट किसे कहते हैं ?

वादि जिसे सिद्ध करना चाहे। अथवा जो पदार्थ वादी को अभिप्रेत हो उसे इष्ट कहते हैं।

182. अबाधित किसे कहते हैं ?

जो किसी भी प्रमाण से बाधित नहीं होता वह अबाधित है।

183. असिद्ध किसे कहते हैं ?

अप्रतिभूत पदार्थों को असिद्ध कहते हैं, अथवा संशयादि का व्यवच्छेद करके पदार्थ का स्वल्प ज्ञान होना सिद्ध है, इससे विपरीत असिद्ध कहलाता है।

184. इस सूत्र में लक्ष्य और लक्षण कौन हैं ?

साध्य लक्ष्य है। इष्ट, अबाधित और असिद्ध लक्षण हैं।

185. आसन, शयन, भोजन और मिथुनादिक भी इष्ट हैं अतः इन्हें साध्यपने का प्रसंग आता है ?

ऐसा कहना अत्यन्त मूर्खपना है क्योंकि ये नैयायिक अप्रस्तुत प्रलापी है। यहाँ पर साधन का अधिकार है। अतः साधन के विषय रूप से इच्छित वस्तु को ही इष्ट कहा जाता है।

186. अप्रस्तुत प्रलापी कौन कहलाते हैं ?

जो बिना अवसर की बात करते हैं।

अब अपने द्वारा कहे हुए साध्य के लक्षण के विशेषणों की सफलता बतलाते हुए असिद्ध विशेषण का समर्थन करने के लिए कहते हैं –

संदिग्धविपर्यस्ताव्युत्पन्नानां साध्यत्वं यथास्यादित्यसिद्धपदम् ॥17 ॥

सूत्रान्वय : संदिग्ध = अनिर्णीत, विपर्यस्त = विपरीतपना, अव्युत्पन्न = यथावत् निर्णीत न होना, साध्यत्वं = साध्यपना, यथा = जैसे, स्यात् = हो, इति = इस प्रकार, असिद्धपदम् = असिद्ध पद।

सूत्रार्थ : संदिग्ध, विपर्यस्त और अव्युत्पन्न पदार्थों के साध्यपना जिस प्रकार से माना जा सके, इसलिए साध्य के लक्षण में असिद्ध पद दिया है।

संस्कृतार्थ : संशयविपर्ययानध्यवसायगोचराणां पदार्थानां साध्यत्व संकल्पनार्थं साध्यलक्षणेऽसिद्धपदमुपादीयते।

टीकार्थ : संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय के गोचरभूत पदार्थों के साध्यपना को सिद्ध करने के लिए साध्य के लक्षण में असिद्ध पद को ग्रहण किया गया है।

187. संदिग्ध किसे कहते हैं ?

यह स्थाणु है या पुरुष है इस प्रकार चलित प्रतिपत्ति के विषयभूत उभयकोटि के परामर्श वाली संशय से युक्त वस्तु संदिग्ध कहलाती है।

188. विपर्यस्त किसे कहते हैं ?

विपरीत वस्तु का निश्चय करने वाले विपर्यय ज्ञान के विषयभूत (सीप में) चाँदी आदि पदार्थ विपर्यस्त हैं।

189. अव्युत्पन्न किसे कहते हैं ?

अव्युत्पन्न से नाम, जाति, संख्यादि का विशेष परिज्ञान न होने से अनिर्णीत विषय वाले अनध्यवसाय ज्ञान से ग्राह्य पदार्थ को अव्युत्पन्न कहते हैं।

190. अनुमान की आवश्यकता कब होती है ?

जब पदार्थ में संदेहादि हो जाता है। अतः 3 प्रकार के पदार्थों की सिद्धि करने में ही हेतु की सामर्थ्य होती है इनसे विपरीत पदार्थों की सिद्धि करने

में नहीं।

191. असंदिग्धादि पदार्थों के लिए अनुमान की आवश्यकता क्यों नहीं होती ?

क्योंकि वे पदार्थ पहले से सिद्ध हैं अर्थात् उनका अनुमान बनाना पिष्टपेषण हो जाएगा।

अब साध्य के इष्ट और अबाधित इन-इन विशेषणों की सफलता दिखलाते हैं -

अनिष्टाध्यक्षादिबाधितयोः साध्यत्त्वं मा भूदितीष्टाबाधितवचनम्॥ 18॥

सूत्रान्वय : अनिष्ट = जो इष्ट न हो, अध्यक्ष = प्रत्यक्ष, आदि = परोक्षादि, बाधितयोः = दोनों से बाधित, साध्यत्वं = साध्यपना, मा = नहीं, भूत = हो, इति = इस प्रकार, इष्टाबाधित = इष्ट - अबाधित, वचनम् = वचन।

सूत्रार्थ : अनिष्ट और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से बाधित पदार्थों के साध्यपना न माना जाए, इसलिए इष्ट और अबाधित ये दो विशेषण दिए गए हैं।

संस्कृतार्थ : अनिष्टस्य प्रत्यक्षादिबाधितस्य च पदार्थस्य साध्यत्वं निरासार्थम् इष्टाबाधितपदयोरुपादानं कृतम्।

टीकार्थ : अनिष्ट के और प्रत्यक्ष, परोक्षादि प्रमाण से बाधित पदार्थ के साध्यपना का निराकरण करने के लिए इष्ट और अबाधित इन दो पदों को ग्रहण किया गया है।

192. अनिष्ट किसे कहते हैं ?

जिस वस्तु को वादी सिद्ध नहीं करना चाहता है, उसे अनिष्ट कहते हैं।

192. सूत्र में आदि शब्द से किसे ग्रहण करना है ?

आदि शब्द से परोक्ष से, अनुमान से, आगम से, लोक से तथा स्ववचन से बाधित इन परोक्षप्रमाण के भेदों का ग्रहण किया जाता है।

193. साध्य के लक्षण में इष्ट विशेषण क्यों दिया है ?

जो वादी को इष्ट न हो उसे सिद्ध करना अप्रकरणिक असामयिक है ऐसी वस्तु साध्य नहीं हो सकती। उसका स्पष्टीकरण करने को साध्य के

लक्षण में इष्ट विशेषण दिया है।

194. साध्य के लक्षण में अबाधित विशेषण क्यों दिया जाता है ?

जिस पदार्थ को हम सिद्ध करना चाहते हैं, वह कदाचित् दूसरे प्रमाण से बाधित हो तो प्रमाणान्तर उसे सिद्ध नहीं कर सकता अर्थात् जो किसी दूसरे प्रमाण से बाधित होगा वह भी साध्य नहीं हो सकता। इस बात को स्पष्ट करने के लिए साध्य के लक्षण में अबाधित वचन दिया गया है।

साध्य के लक्षण में तीनों विशेषणों के मध्य में असिद्ध पद प्रतिवादी की अपेक्षा ही ग्रहण किया है, इष्टपद वादी की अपेक्षा ग्रहण किया है, ऐसा भेद प्रदर्शित करने के लिए यह सूत्र कहते हैं -

न चासिद्धवदिष्टं प्रतिवादिनः ॥ 19 ॥

सूत्रान्वय : न = नहीं, च = और, असिद्धवत् = असिद्ध के समान, प्रतिवादिनः = प्रतिवादी की अपेक्षा से, इष्टं = इष्ट।

सूत्रार्थ : असिद्ध के समान इष्ट विशेषण प्रतिवादी की अपेक्षा से नहीं है।

संस्कृतार्थ : न हि सर्वं सर्वापेक्षया विशेषणमपि तु किञ्चित्किमप्युद्दिश्य भवतीति। असिद्धवदिति व्यतिरेकमुखेनोदाहरणम्। यथा असिद्ध विशेषणं प्रतिवाद्यपेक्षया प्रोक्तं न तथा इष्टविशेषणमितिभावः।

टीकार्थ : सभी विशेषण सभी की अपेक्षा से नहीं होते हैं, अपितु कोई विशेषण किसी की अपेक्षा होता है। असिद्ध के समान यह व्यतिरेकमुख से उदाहरण दिया गया है जैसे - असिद्ध विशेषण प्रतिवादी की अपेक्षा कहा गया, वह उस प्रकार से इष्ट नहीं है अर्थात् असिद्ध विशेषण वादी की अपेक्षा कहा गया है।

195. वादी किसे कहते हैं ?

जो पहले अपने पक्ष को स्थापित करता है, उसे वादी कहते हैं।

195. प्रतिवादी किसे कहते हैं ?

जो उसका निराकरण करता है, उसे प्रतिवादी कहते हैं।

196. अपने पक्ष को समझाने की इच्छा किसे होती है ?

अपने पक्ष को समझाने की इच्छा वक्ता को ही होती है।

197. पक्ष को समझाने के लिए उदा. कौन सा दिया है ?

असिद्धवत् यह उदाहरण व्यतिरेक मुख से दिया गया है।

इष्ट विशेषणवादी की अपेक्षा होने का कारण -

प्रत्यायनाय हीच्छा वक्तुरेव ॥ 20 ॥

सूत्रान्वय : प्रत्यायनाय = दूसरे को समझाने के लिए, हि = निश्चय से, इच्छा = अभिलाषा, वक्तुः = वक्ता की, एव = ही।

सूत्रार्थ : क्योंकि दूसरे को समझाने के लिए इच्छा वक्ता को ही होती है।

संस्कृतार्थ : साध्यप्रज्ञापनविषयिणी इच्छा वादिन एव भवति न तु प्रतिवादिनः। अतः साध्ये इष्टविशेषणं वादिनः अपेक्षातः एव विद्यते।

टीकार्थ : साध्य को सिद्ध (दिखाने के लिए) करने की इच्छा वादी को ही होती है, परन्तु प्रतिवादी को नहीं। इसलिए साध्य में इष्ट विशेषण वादी की अपेक्षा से ही है। अर्थात् दूसरों को प्रतिबोधित करने की इच्छा वक्ता को ही होती है।

198. इष्ट किसे कहते हैं ?

इच्छा का विषयभूत पदार्थ इष्ट कहलाता है।

199. विशेषण किसे कहते हैं ?

जो किसी दूसरे शब्द की विशेषता प्रकट करता है।

साध्य धर्म होता है अथवा विशिष्ट धर्मी ऐसा होने पर उसका भेद दिखाते हैं -

साध्यं धर्मः क्वचित् तद्विशिष्टो वा धर्मी ॥ 21 ॥

सूत्रान्वय : साध्यं = साध्य, धर्मः = धर्म, क्वचित् = कहीं पर, तत् = उससे, विशिष्ट = विशेषण से युक्त, वा = और, धर्मी = धर्मी।

सूत्रार्थ : कहीं पर धर्म साध्य होता है और कहीं पर धर्म विशिष्ट

धर्मी।

संस्कृतार्थ : व्याप्तिकालापेक्षया धर्म एव साध्यो भवति। परन्तु अनुमान प्रयोगापेक्षया धर्मविशिष्टो धर्मी साध्यत्वेन प्रयुज्यते।

टीकार्थ : व्याप्ति प्रयोग के समय धर्म ही साध्य होता है और अनुमान प्रयोग के समय धर्म से विशिष्ट धर्मी साध्यपने से प्रयुक्त होता है।

विशेष : जहाँ-जहाँ धूम होता है वहाँ-वहाँ अग्नि होती है और जहाँ-जहाँ अग्नि नहीं होती वहाँ धूम भी नहीं होता। इस प्रकार से जब किसी शिष्यादि को साध्य-साधन का ज्ञान कराया जाता है, तब उसे व्याप्ति काल कहते हैं। इस व्याप्ति काल में अग्नि रूप धर्म ही साध्य होता है इस पर्वत में अग्नि है क्योंकि वह धूम वाला है, इस प्रकार से अनुमान के प्रयोग करने को प्रयोग काल कहते हैं, उस समय अग्निरूप धर्म से विशिष्ट पर्वत ही साध्य होता है।

अब आचार्य इसी धर्मी का पर्यायवाची दूसरा नाम कहते हैं -

पक्ष इति यावत्॥ 22॥

सूत्रार्थ : उसी धर्मी को पक्ष कहते हैं। पक्ष इस प्रकार धर्मी का ही पर्यायवाची नाम है।

200. धर्म और धर्मी के समुदाय को पक्ष कहते हैं। ऐसा स्वरूप क्यों नहीं कहा गया सूत्र में ?

यद्यपि सूत्रकार ने केवल धर्मी को पक्ष कहा है, तथापि उनका अभिप्राय साध्य धर्म से विशिष्ट धर्मी को पक्ष कहने का है, इससे धर्म-धर्मी के समुदाय का अर्थ आ ही जाता है। अतः पूर्व सिद्धान्त से कोई विरोध नहीं है। बौद्धमतानुसार यह ज्ञात हुआ कि धर्मी का प्रतिभास विकल्प बुद्धि से होने के कारण उसकी सत्ता वास्तविक नहीं है ? इस कथन को निरस्त करने के लिए सूत्र कहते हैं -

प्रसिद्धो धर्मी॥ 23॥

सूत्रान्वय : प्रसिद्ध = प्रमाण से, धर्मी = धर्मी (पक्ष)।

सूत्रार्थ : धर्मी प्रसिद्ध अर्थात् प्रमाण से सिद्ध होता है, काल्पनिक नहीं।

संस्कृतार्थ : धर्मी (पक्षः) प्रसिद्धो विद्यते,अवस्तुस्वरूपः,कल्पितो वा नो विद्यते ॥ 23 ॥

टीकार्थ : धर्मी (पक्ष) प्रसिद्ध होता है अवस्तुस्वरूप और कल्पित नहीं होता है।

धर्मी की विकल्प से प्रतिपत्ति मानने पर वहाँ साध्य क्या है ? ऐसी शंका का निराकरण करने के लिए यह सूत्र दिया जाता है –

विकल्पसिद्धे तस्मिन् सत्तेतरे साध्ये ॥ 24 ॥

सूत्रान्वय : विकल्पसिद्धे = विकल्पसिद्धे (धर्मी में) तस्मिन् = उसमें, सत्ता = अस्तित्व, इतर = असत्ता (नास्तित्व), साध्ये = दोनों साध्य हैं।

सूत्रार्थ : उस विकल्प सिद्ध धर्मी में सत्ता और असत्ता ये दोनों ही साध्य हैं।

संस्कृतार्थ : तस्मिन् धर्मिणि विकल्पसिद्धे सति अस्तित्वं नास्तित्वं चेत्युभे साध्ये भवतः।

टीकार्थ : उस धर्मी के विकल्प सिद्ध होने पर सत्ता (सद्भाव – मौजूदगी) और असत्ता (असद्भाव – गैरमौजूदगी) दोनों साध्य होते हैं।

201. विकल्प किसे कहते हैं ?

जिस पक्ष का न तो किसी प्रमाण से अस्तित्व सिद्ध हो और न नास्तित्व सिद्ध हो उस पक्ष को विकल्प सिद्ध कहते हैं। इसी बात को न्यायदीपिका में इस प्रकार कहा है – अनिश्चितप्रामाण्य गोचरत्वं विकल्पसिद्धत्वम्।

202. विकल्पसिद्ध धर्मी में सत्ता साध्य क्यों है ?

सुनिश्चित असम्भव बाधक प्रमाण के बल से सत्ता साध्य है।

202. विकल्प सिद्ध धर्मी में असत्ता साध्य क्यों है ?

योग्य की अनुपलब्धि के बल से असत्ता साध्य है।

अब विकल्प सिद्ध धर्मी का उदाहरण –

अस्ति सर्वज्ञो, नास्ति खरविषाणम्॥ 25॥

सूत्रान्वय : अस्ति = है, सर्वज्ञः = सर्वज्ञ, नास्ति = नहीं है, खर = गधे के, विषाणम् = सींग।

सूत्रार्थ : सर्वज्ञ है, गधे के सींग नहीं हैं।

संस्कृतार्थ : सर्वज्ञोऽस्ति सुनिश्चितासम्भवबाधकप्रमाणत्वात्। खरविषाणं नास्ति अनुपलब्धेः।

टीकार्थ : सर्वज्ञ (आप्त केवली भगवान्) है; सुनिश्चित असम्भव बाधक प्रमाणत्व होने से गधे के सींग नहीं हैं, यहाँ गधे के सींग विकल्प सिद्ध धर्मी हैं, उनकी असत्ता साध्य है।

203. विकल्प सिद्ध धर्मी के कितने रूप हो सकते हैं ?

विकल्पसिद्ध धर्मी के 2 रूप हो सकते हैं। सत्तारूप भी और असत्ता रूप भी।

204. इसका उदाहरण क्या है ?

सर्वज्ञ है ऐसे प्रतिज्ञा रूप वाक्य में सत्ता साध्य है। गधे के सींग नहीं हैं ऐसे प्रतिज्ञा रूप वाक्य में असत्ता साध्य है।

205. पक्ष या धर्मी किसे कहते हैं ?

जिसमें साध्य रहता है, उसे पक्ष या धर्मी कहते हैं।

इस समय प्रमाणसिद्ध और उभयसिद्ध धर्मी में साध्य क्या है ? ऐसी आशंका होने पर कहते हैं –

प्रमाणोभयसिद्धे तु साध्यधर्म विशिष्टता साध्यः॥ 26॥

सूत्रान्वय : प्रमाणसिद्धे = प्रमाणसिद्ध में, उभयसिद्धे = प्रमाण विकल्प सिद्ध, तु = और, साध्य = साध्य (पक्ष); धर्म विशिष्टता = धर्म से युक्त धर्मी।

सूत्रार्थ : प्रमाणसिद्ध धर्मी में और प्रमाण विकल्प सिद्ध धर्मी में धर्म सहित धर्मी साध्य होता है।

संस्कृतार्थ : प्रमाणसिद्धे उभयसिद्धे वा धर्मिणि साध्यधर्मविशिष्टतैव साध्या भवति।

टीकार्थ : प्रमाण सिद्ध धर्मी में और प्रमाण विकल्प सिद्ध धर्मी में धर्म से सहित धर्मी साध्य होता है।

206. साध्ये पूर्व सूत्र में द्विवचनांत है फिर यहाँ एकवचन में प्रयुक्त क्यों किया ?

पूर्वसूत्र में द्विवचनांत होते हुए भी अर्थ के वश से एक वचनांत के रूप से सम्बद्ध किया है। प्रमाण और उभय अर्थात् विकल्प और प्रमाण इन दोंनो से सिद्ध धर्मी में साध्य धर्म विशिष्टता साध्य है।

207. प्रस्तुत सूत्र का भावार्थ क्या है ?

प्रमाण से जानी गई वस्तु (पर्वतादि) विशिष्ट धर्म का आधार होने से विवाद का विषय हो जाती है, साध्यता का उल्लंघन नहीं करती है। इस प्रकार उभयसिद्ध में भी योजना करना चाहिए।

प्रमाण सिद्ध और उभय सिद्ध दोनों धर्मियों के दृष्टान्त क्रम को दिखलाते हुए कहते हैं –

अग्निमानयं देशः परिणामी शब्द इति यथा ॥ 27 ॥

सूत्रान्वय : अग्निमान् = अग्निवाला, अयम् = यह, देशः = प्रदेश, परिणामी =परिणमन वाला, शब्दः = शब्द, इति = इस प्रकार, यथा = जैसे।

सूत्रार्थ : जैसे यह प्रदेश अग्निवाला है और शब्द परिणामी है।

संस्कृतार्थ : अग्निमानयं प्रदेशः धूमवत्वात् इति प्रमाणसिद्धधर्मिणः उदाहरणम्। यतः पर्वतादिप्रदेशाः प्रत्यक्षादिप्रमाणैः सिद्धाः विद्यन्ते। तथा च शब्द परिणामी कृतकत्वात् इति प्रमाणविकल्पसिद्धधर्मिणः उदाहरणम्। यतः अत्र धर्मी शब्दः उभयसिद्धो विद्यते। स हि वर्तमान कालिंकः प्रत्यक्षगम्यः भूतो भविष्यंश्च विकल्पगम्यो वर्तते।

टीकार्थ : यह प्रदेश अग्निवाला है धूम वाला होने से, इस प्रकार प्रमाण सिद्ध धर्मी का उदाहरण है, क्योंकि पर्वतादि प्रदेश प्रत्यक्ष आदि प्रमाण

से सिद्ध होते हैं और उसी प्रकार शब्द परिणामी है किया जाने वाला होने से (कृतक होने से) इस प्रकार प्रमाण विकल्प सिद्ध धर्मी का उदाहरण है क्योंकि इसमें धर्मी शब्द उभय (प्रमाण विकल्प) सिद्ध है क्योंकि वही शब्द (पक्ष) वर्तमान काल वाला तो प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है और भूत तथा भविष्यत् शब्द विकल्प सिद्ध हैं।

208. अनुमान का प्रयोग कब निरर्थक है ?

सर्वदर्शी के अनियत दिग्देश कालवर्ती शब्दों के निश्चय होने पर भी उसके लिए (सर्वज्ञ) अनुमान का प्रयोग निरर्थक है।

अनुमान प्रयोग काल की अपेक्षा से धर्म विशिष्ट धर्मी के साध्यपने का कथन करके व्याप्ति काल की अपेक्षा साध्य नियम को दिखलाते हैं -

व्याप्तौ तु साध्यं धर्म एव॥ 28॥

सूत्रान्वय : व्याप्तौ = व्याप्तिकाल में, तु = परन्तु, साध्यं = साध्य, धर्म = धर्म, एव = ही।

सूत्रार्थ : व्याप्तिकाल में तो धर्म ही साध्य होता है।

संस्कृतार्थ : व्याप्तिकालापेक्षया साध्यं धर्म एव भवति, न तु साध्य विशिष्टो धर्मीति भावः।

टीकार्थ : व्याप्ति काल की अपेक्षा से धर्म ही साध्य होता है, परन्तु धर्म विशिष्ट धर्मी नहीं।

विशेष : जहाँ-जहाँ धुआँ होता है, वहाँ-वहाँ अग्नि होती है, इस प्रकार व्याप्ति होने पर प्रयोग काल में धर्म ही साध्य होता है, व्याप्ति के समय धर्मी साध्य नहीं होता है। अग्नि ही साध्य होती है, अग्नि विशिष्ट पर्वत नहीं। शेष सुगम है।

धर्मी के भी साध्य होने पर क्या दोष है -

अन्यथा तदघटनात्॥ 29॥

सूत्रान्वय : अन्यथा = अन्यथा, तत् = वह व्याप्ति अघटनात् = घटित नहीं होने से।

सूत्रार्थ : अन्यथा व्याप्ति घटित नहीं हो सकती।

संस्कृतार्थ : व्याप्तिकालेऽपि धर्मिणः साध्यत्वे धर्मिसाधनयोः व्याप्त्यघटनात्।

टीकार्थ : व्याप्ति काल में भी धर्मी को साध्य करने पर धर्मी और साधन की व्याप्ति नहीं बन सकेगी।

209. सूत्र में अन्यथा शब्द क्यों ग्रहण किया है ?

अन्यथा शब्द ऊपर कहे गये अर्थ के विपरीत अर्थ में कहा गया है।

210. सूत्र में हेतु क्या है ?

धर्मी को साध्य बनाने पर व्याप्ति नहीं बनती है, यह हेतु है।

211. कैसी व्याप्ति संभव नहीं है ?

धुएँ के देखने से सब जगह पर्वत अग्निवाला है, इस प्रकार की व्याप्ति करना संभव नहीं है, क्योंकि (साध्य साधन भाव के असंभव होने से) प्रमाण से विरोध आता है।

पक्ष के प्रयोग करने की आवश्यकता –

साध्यधर्माधारसन्देहापनोदाय गम्यमानस्यापि पक्षस्य वचनम् ॥ 30 ॥

सूत्रान्वय : साध्य धर्म = साध्य रूप धर्म के, आधार = आधार के विषय में, संदेह = संशय को, अपनोदाय = दूर करने के लिए, गम्यमानस्य = गम्यमान के, अपि = भी, पक्षस्य = पक्ष के, वचनम् = वचन को।

सूत्रार्थ : साध्य धर्म के आधार में उत्पन्न हुए संदेह को दूर करने के लिए गम्यमान भी पक्ष का प्रयोग किया जाता है।

संस्कृतार्थ : साध्यरूपधर्माधिकरण समुत्थसंशयनिवारणाय स्वयं सिद्धस्यापि पक्षस्य प्रयोगः आवश्यकः।

टीकार्थ : साध्यरूप धर्म के आधार के विषय में उत्पन्न हुए संदेह को दूर करने के लिए स्वयं सिद्ध भी पक्ष का प्रयोग आवश्यक है।

212. हेतु की सामर्थ्य से ज्ञात होने वाले पक्ष का प्रयोग आवश्यक क्यों है ?

साध्य ही धर्म है उसका आधार (पक्ष) उसमें यदि संदेह हो कि इस साध्य रूप धर्म का आधार यहाँ रसोई घर आदि है या पर्वत है उसका अपनोद व्यवच्छेद करने के लिए गम्यमान भी यदि पक्ष का प्रयोग न किया जाए तो साध्य-साधन के व्याप्य-व्यापक भावरूप सम्बन्ध का प्रदर्शन नहीं बन सकता।

पक्ष के प्रयोग करने की आवश्यकता का दृष्टान्त -

साध्यधर्मिणि साधनधर्मावबोधनाय पक्षधर्मोपसंहारवत्॥ 31॥

सूत्रान्वय : साध्यधर्मिणि = साध्य से युक्त धर्मी में, साधनधर्म = साधनधर्म, अवबोधनाय = ज्ञान कराने के लिए, पक्षधर्म = पक्षधर्म के, उपसंहारवत् = उपसंहार के समान।

सूत्रार्थ : जैसे साध्य से युक्त धर्मी में साधन धर्म का ज्ञान कराने के लिए पक्ष धर्म के उपसंहार रूप उपनय का प्रयोग किया जाता है।

संस्कृतार्थ : साध्यव्याप्तसाधनप्रदर्शनेन तदाधारावगतावपि नियत-धर्मिसम्बन्धिताप्रदर्शनार्थं यथोपनयः प्रयुज्यते तथा साध्यस्य विशिष्ट धर्मिसम्बन्धितावबोधनार्थं पक्षोऽपि प्रयोक्तव्यः।

टीकार्थ : साध्य के साथ व्याप्त साधन के प्रदर्शन से उसके आधार के अवगत हो जाने पर भी नियत धर्मी के साथ सम्बन्धपना बतलाने के लिए जैसे उपनय का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार साध्य का विशिष्ट धर्मी के साथ सम्बन्धपना बतलाने के लिए जैसे - उपनय आवश्यक है, उसी प्रकार साध्य का विशिष्ट धर्मी के साथ सम्बन्धपना बतलाने के लिए पक्ष का वचन भी आवश्यक है।

213. उपनय किसे कहते हैं ?

साध्य से विशिष्ट जो धर्मी पर्वत आदि उसमें साधन धर्म का ज्ञान करने के लिए पक्ष धर्म के उपसंहार के समान पक्ष धर्म जो हेतु उसके उपसंहार को उपनय कहते हैं।

214. हेतु का समर्थन करने पर भी समर्थन आवश्यक क्यों है ?

क्योंकि असमर्थित हेतु नहीं हो सकता।

215. पक्ष के प्रयोग के अभाव में हेतु की प्रवृत्ति कहाँ होगी ?

इसलिए कार्य, स्वभाव और अनुपलम्भ के भेद से तथा पक्ष धर्मत्वादि के भेद से 3 प्रकार का हेतु कहकर समर्थन करने वाले बौद्ध को पक्ष का प्रयोग स्वीकार करना ही चाहिए।

पक्ष के प्रयोग की आवश्यकता की पुष्टि –

को वा त्रिधा हेतुमुक्त्वा समर्थयमानो न पक्षयति ॥ 32 ॥

सूत्रान्वय : कः = कौन, वा = निश्चय अर्थ में, त्रिधा = तीन प्रकार के, हेतुम् = हेतु को, उक्त्वा = कह करके, समर्थयमानः = समर्थन करता हुआ, न = नहीं, पक्षयति = पक्ष प्रयोग करें।

सूत्रार्थ : ऐसा कौन है जो कि तीन प्रकार के हेतु को कह करके उसका समर्थन करता हुआ भी पक्ष प्रयोग न करे।

संस्कृतार्थ : को वा वादि प्रतिवादी त्रिविधं हेतुं स्वीकृत्य तत्समर्थनं च कुर्वाणः पक्षवचनं न स्वीकरोति ? अपि तु स्वीकरोत्येव।

टीकार्थ : ऐसा कौन वादि या प्रतिवादी पुरुष है (लौकिक या परीक्षक) जो तीन प्रकार के हेतु को कहकर उसका समर्थन करता हुआ उस हेतु को नहीं मानेगा ? अपितु सभी स्वीकार करेंगे ही।

216. कः पद का क्या अर्थ है ?

कौन ऐसा वादी या प्रतिवादी पुरुष है।

217. वा शब्द किस अर्थ में है ?

वा शब्द निश्चय के अर्थ में है।

218. सूत्र में उक्त्वा क्रिया पद को क्यों रखा ?

यह समर्थन हेतु प्रयोग के काल में बौद्धों ने स्वयं अंगीकार किया है, इसलिए सूत्र में उक्त्वा यह पद कहा है।

219. समर्थन किसे कहते हैं ?

हेतु के असिद्ध आदि दोषों का परिहार करके अपने साध्य के साधन करने की सामर्थ्य के प्रकटीकरण में समर्थ वचन को समर्थन कहते हैं।

220. कौन पक्ष का प्रयोग नहीं करता ?

अपितु करता ही है। क्या करके ? हेतु का कथन करके ही, कथन न करके नहीं, यह अर्थ है।

221. सांख्य अनुमान के कितने अंग मानते हैं ?

पक्ष, हेतु और दृष्टान्त अनुमान के तीन अवयव मानते हैं।

222. मीमांसक अनुमान के कितने अंग मानते हैं ?

प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण और उपनय के भेद से अनुमान के चार अवयव मानते हैं।

223. योग अनुमान के कितने अंग मानते हैं ?

प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन के भेद से अनुमान के पाँच अवयव मानते हैं।

उपरोक्त मतों का निराकरण करते हुए स्वमत सिद्ध दो अवयव ही दिखलाते हुए कहते हैं –

एतद्द्वयमेवानुमानाङ्ग नोदाहरणम्॥ 33॥

सूत्रान्वय : एतद् = ये, द्वयम् = दोनों (पक्ष और हेतु), एव = ही, अनुमान = अनुमान के, अंगं = अंग (अवयव), न = नहीं, उदाहरणम् = उदाहरण।

सूत्रार्थ : ये दोनों ही (पक्ष और हेतु) अनुमान के अंग हैं, उदाहरण नहीं।

संस्कृतार्थ : पक्ष, हेतुश्चेति द्वितयमेवानुमानांगं नोदाहरणादिकम्।

टीकार्थ : पक्ष और हेतु इस प्रकार दो ही अनुमान के अंग हैं। उदाहरण आदि नहीं।

विशेष : पक्ष और हेतु ये दोनों ही अनुमान के अंग हैं, अतिरिक्त नहीं यह सूत्र के पूर्वार्ध का अर्थ है।

224. सूत्र में एवकार का प्रयोग क्यों किया गया है ?

सूत्र पठित एव पद से उदाहरणादिक का व्यवच्छेद सिद्ध होने पर भी अन्य मतों के निराकरण करने के लिए उदाहरणादिक नहीं ऐसा पुनः कहा है।

इतने पर भी लोग उदाहरण का प्रयोग आवश्यक मानते हैं, आचार्य उससे पूछते हैं कि क्या साध्य का ज्ञान कराने के लिए उदाहरण का प्रयोग आवश्यक है, अथवा हेतु का अविनाभाव सम्बन्ध बतलाने के लिए अथवा व्याप्ति का स्मरण करने के लिए ? इन तीन प्रकार विकल्प उठाकर आचार्य क्रम से दूषण देते हुए सूत्र कहते हैं :-

न हि तत्साध्यप्रतिपत्त्यंगं तत्र यथोक्त हेतोरेव व्यापारात्॥ 34 ॥

सूत्रान्वय : न = नहीं, हि = क्योंकि, तत् = वह, साध्य = साध्य का, प्रतिपत्ति = ज्ञान कराने के लिए, वा = निश्चय अर्थ में, त्रिधा = तीन प्रकार के, हेतुम् = हेतु को, अंग = कारण, तत्र = ज्ञान में, यथोक्त = जैसा कहा, हेतोः = हेतु का, एव = ही, व्यापारात् = व्यापार होने से।

सूत्रार्थ : वह उदाहरण साध्य का ज्ञान कराने के लिए कारण नहीं है, क्योंकि साध्य के ज्ञान में यथोक्त हेतु का ही व्यापार होता है।

संस्कृतार्थ : साध्यं प्रज्ञापनार्थम् उदाहरणप्रयोगः समीचीन इति चेन्न साध्याविनाभावित्वेन निश्चितस्य हेतोरेव साध्यज्ञानजनकत्व सामर्थ्यात्।

टीकार्थ : साध्य का ज्ञान कराने के लिए उदाहरण का प्रयोग समीचीन है इस प्रकार कहते हैं तो ठीक नहीं है क्योंकि साध्य का अविनाभावी होने से निर्दोष हेतु ही साध्य के ज्ञान कराने के लिए समर्थ है।

225. सूत्र अर्थ का सम्बन्ध कैसा करना चाहिए ?

वह उदाहरण साध्य का प्रतिपत्ति (ज्ञान) का अंग अर्थात् कारण नहीं है। ऐसा सूत्रार्थ है।

226. यथोक्त का क्या अर्थ है ?

साध्य के साथ अविनाभाव रूप से निश्चित हेतु का व्यापार होता है।

227. इस सूत्र में तीन विकल्पों में से कौन से विकल्प का समाधान दिया है ?

प्रथम विकल्प साध्य का ज्ञान कराने के लिए उदाहरण का प्रयोग आवश्यक है इस विकल्प का निराकरण किया है।

साध्य के साथ हेतु का अविनाभाव निश्चित कराने के लिए उदाहरण की आवश्यकता के प्रदर्शन का खण्डन –

तदविनाभावनिश्चयार्थं वा विपक्षे बाधकप्रमाणबलादेव तत्सिद्धेः ॥35॥

सूत्रान्वय : तत् = वह उदाहरण, अविनाभावनिश्चयार्थं = अविनाभाव के निश्चय के लिए, वा = क्योंकि, विपक्षे = विपक्ष में, बाधकप्रमाणबलात् = बाधक प्रमाण के बल से, एव = ही, तत् = अविनाभाव, सिद्धेः = सिद्ध हो जाता है।

नोट : सूत्र का अर्थ करते समय तत् और न इन दो पदों की अनुवृत्ति करना चाहिए।

सूत्रार्थ : वह उदाहरण अविनाभाव के निश्चय के लिए भी कारण नहीं है क्योंकि विपक्ष में बाधक प्रमाण से ही अविनाभाव सिद्ध हो जाता है।

विशेष : तत् और न इन दो पदों की अनुवृत्ति करने से सूत्र का अर्थ इस प्रकार है – वह उदाहरण उस साध्य के साथ अविनाभाव सम्बन्ध का निश्चय करने के लिए भी कारण नहीं है, क्योंकि विपक्ष में बाधक प्रमाण के बल से ही उसकी सिद्धि हो जाती है अर्थात् अविनाभाव का निश्चय हो जाता है।

संस्कृतार्थ : साध्येन सह हेतोरविनाभावनिश्चयार्थमुदाहरण प्रयोगः आवश्यक इति चेन्न विपक्षे बाधकप्रमाणबलादेव तदविनाभाव निश्चय सिद्धः।

टीकार्थ : कोई कहता है कि व्याप्ति का स्मरण करने के लिए उदाहरण का प्रयोग समीचीन है ही। इस प्रकार कहना ठीक नहीं है क्योंकि विपक्ष में बाधक प्रमाण के बल से ही साध्य के साथ हेतु का अविनाभाव

निश्चित हो जाता है।

228. उदाहरण कैसा होता है ?

उदाहरण एक व्यक्ति रूप होता है, वह सर्वदेश सर्वकालवर्ती व्याप्ति का ज्ञान कैसे करा सकता है।

229. अविनाभाव का निश्चय कराने के लिए यदि उदाहरण का प्रयोग किया जाए तो क्या दोष आयेगा ?

अनवस्था दोष प्राप्त होगा, अन्य व्यक्तियों में व्याप्ति के ज्ञान कराने के लिए अन्य उदाहरण भी व्यक्ति रूप होगा। अतः सर्वदेश काल के उपसंहार से वह भी व्याप्ति का निश्चय कराने के लिए अशक्य होगा। इस प्रकार अन्य-अन्य उदाहरणों की अपेक्षा करने पर अनवस्था दोष प्राप्त होगा। अतः अविनाभाव के निश्चय के लिए भी उदाहरण की आवश्यकता नहीं है।

आचार्य भगवन् इसी बात को सूत्र द्वारा प्रकट करते हैं -

व्यक्तिरूपं च निदर्शनं सामान्येन तु व्याप्तिस्तत्रापि तद्विप्रतिपत्ता-वनवस्थानं स्याद् दृष्टान्तान्तरापेक्षाणात्॥ 36॥

सूत्रान्वय : व्यक्तिरूपं = व्यक्तिरूप, च = और, निदर्शनं = उदाहरण, तु = परन्तु, व्याप्ति : = व्याप्ति, सामान्येन = सामान्य से, तत्रापि = उस उदाहरण में भी, तद्विप्रतिपत्तौ = उसमें विवाद होने पर, अनवस्थानम् = अनवस्थादोष, स्यात् = होगा, दृष्टान्तान्तर = अन्य दृष्टान्त की, अपेक्षणात् = अपेक्षा से।

सूत्रार्थ : निदर्शन (उदाहरण) व्यक्ति रूप होता है और व्याप्ति सामान्य रूप से सर्वदेश काल की उपसंहार वाली होती है। अतः उस उदाहरण में भी विवाद होने पर अन्य दृष्टान्त की अपेक्षा पड़ने से अनवस्था दोष प्राप्त होगा।

संस्कृतार्थ : दृष्टान्तो विशेषरूपः व्याप्ति च सामान्यरूपा भवति। अतः उदाहरणेऽपि सामान्यव्याप्ति सति तन्निश्चयार्थम् उदाहरणान्तरापेक्षणात्

अनवस्थादोषप्रसंगो भवेत्।

टीकार्थ : दृष्टान्त विशेष रूप होता है और व्याप्ति सामान्य रूप से होती है। अतः उदाहरण में भी सामान्य व्याप्ति का विवाद होने पर उसका निश्चय कराने के लिए अन्य उदाहरण की अपेक्षा होने से अनवस्था दोष का प्रसंग होता है।

230. निदर्शन और व्याप्ति कैसी होती है ?

निदर्शन विशेष आधार वाला होने से विशेष रूप रहता है और व्याप्ति सामान्य रूप होती है।

विशेष : उस उदाहरण में भी तद्विप्रतिपत्ति अर्थात् सामान्य व्याप्ति में विवाद होने पर यह अर्थ लेना चाहिए।

अब तृतीय विकल्प-व्याप्ति का स्मरण करने के लिए भी उदाहरण का प्रयोग आवश्यक है, इस विषय में दूषण देते हुए कहते हैं -

नापि व्याप्तिस्मरणार्थं तथाविध हेतुप्रयोगादेव तत्स्मृतेः ॥ 37 ॥

सूत्रान्वय : न = नहीं, अपि = भी, व्याप्तिस्मरणार्थं = व्याप्ति का स्मरण करने के लिए, तथाविध = साध्य के अविनाभावी, हेतुप्रयोगात् = हेतु के प्रयोग से, एव = ही, तत् = उस (व्याप्ति का), स्मृतेः = स्मरण हो जाने से।

सूत्रार्थ : व्याप्ति का स्मरण कराने के लिए भी उदाहरण की आवश्यकता नहीं है। उसका (व्याप्ति) स्मरण तो साध्य के अविनाभावी हेतु के प्रयोग से ही हो जाता है।

संस्कृतार्थ : ननु व्याप्तिस्मरणार्थम् उदाहरणप्रयोगस्य समीचीनत्व-मस्त्येवेति चेन्न साध्याविनाभावत्वापन्नस्य हेतोः प्रयोगादेव व्याप्तिस्मरणसंसिद्धेः।

टीकार्थ : कोई कहता है कि व्याप्ति का स्मरण कराने के लिए उदाहरण का प्रयोग समीचीन है ही इस प्रकार कहना ठीक नहीं, क्योंकि साध्य के अविनाभावीपने को प्राप्त हेतु के प्रयोग से ही व्याप्ति स्मरण की समीचीन सिद्ध हो जाती है।

विशेष : जिसने साध्य के साथ साधन का सम्बन्ध ग्रहण किया है।

ऐसे पुरुष को हेतु के दिखलाने से ही व्याप्ति सिद्ध हो जाती है और जिसने सम्बन्ध को ग्रहण नहीं किया है, ऐसे व्यक्ति को सैकड़ों दृष्टान्तों से भी स्मरण नहीं होगा, क्योंकि स्मरण का विषय अनुभूत है।

अतः इस प्रकार उदाहरण का प्रयोग साध्य के लिए उपयोगी नहीं है, अपितु संशय का ही हेतु है इस बात को दिखलाते हैं एवं उपनय और निगमन के प्रयोग बिना उदाहरण प्रयोग से हानि –

तत्परमभिधीयमानं साध्यधर्मिणि साध्यसाधने संदेहयति॥ 38॥

सूत्रान्वय : तत् = वह, परम् = केवल, अभिधीयमानं = कहा जाने वाला, साध्यधर्मिणि = साध्य विशिष्ट धर्मी में, साध्यसाधने = साध्य के साधन करने में, संदेहयति = संदेह करा देता है।

सूत्रार्थ : उपनय और निगमन के बिना यदि केवल उदाहरण का प्रयोग किया जायेगाा तो साध्य धर्म वाले धर्मी (पक्ष) में साध्य और साधन के सिद्ध करने में संदेह करा देगा।

संस्कृतार्थ : केवलं प्रयुज्यमानं तदुदाहरणं साध्यविशिष्टे धर्मिणि साध्यसाधने संदिग्धे करोति। दृष्टान्तधर्मिणि साध्यव्याप्तसाधनोपदर्शनेऽपि साध्य धर्मिणि तन्निर्णस्य कर्त्तुमशक्यत्वात्।

टीकार्थ : केवल कहा गया वह उदाहरण साध्यधर्मी में साध्य विशिष्ट धर्मी में साध्य के साधन करने में संदेहयुक्त कर देता है। दृष्टान्त धर्मी (रसोईघर) साध्य से व्याप्त साधन के दिखलाने पर भी साध्य धर्म (पर्वतादि) में साध्य व्याप्त साधन का निर्णय करना संभव नहीं है।

इसी अर्थ को व्यतिरेक मुख से समर्थन करते हुए कहते हैं अर्थात् केवल उदाहरण प्रयोग से संदेह होने का स्पष्टीकरण –

कुतोऽन्यथोपनयनिगमने॥ 39॥

सूत्रान्वय : कुतः = क्यों, अन्यथा = अन्यथा, उपनय निगमने = उपनय और निगमन का।

सूत्रार्थ : अन्यथा उपनय और निगमन का प्रयोग क्यों किया जाता ?

संस्कृतार्थ : केवलोदाहरणप्रयोगस्य संशयजनकत्वाभावे उपनय निगमन प्रयोगः किमर्थं विधीयते ? अतो निश्चीयते यदुदाहरणमात्रप्रयोगात्संशयोऽवश्यं जायते।

टीकार्थ : केवल उदाहरण के प्रयोग से संशय उत्पन्न नहीं होता तो उपनय और निगमन का प्रयोग क्यों किया जाता ? इसलिए इससे निश्चय होता है कि उदाहरण मात्र के प्रयोग से संशय होता है।

विशेष : उदाहरण यदि साध्य विशिष्ट धर्मी में साध्य का साधन करने में संदेह युक्त न करता तो किस कारण उपनय और निगमन का प्रयोग किया जाता।

योग कहता है कि उपनय और निगमन अनुमान के अंग हैं, उनका प्रयोग न करने पर असंदिग्ध रूप से साध्य का ज्ञान नहीं हो सकता है ?

उक्त कथन का निषेध करने के लिए कहते हैं -

न च ते तदंगे, साध्यधर्मिणि हेतुसाध्ययोर्वचनादेवासंशयात्॥ 40॥

सूत्रान्वय : न = नहीं, च = और, ते = वे दोनों उपनय और निगमन, तत् = उसके (अनुमान), अंगे = अंग, साध्यधर्मिणि = साध्यधर्मी में हेतुसाध्ययोः = हेतु और साध्य के, वचनात् = वचन से, असंशयात् = संशय नहीं रहता।

सूत्रार्थ : उपनय और निगमन अनुमान के अंग नहीं हैं, क्योंकि हेतु और साध्य के बोलने से ही संशय नहीं रहता है।

संस्कृतार्थ : ननूपनयनिगमनयोरप्यनुमानांगत्वमेव, तदप्रयोगे निःसंशय-साध्य सम्वित्तेरयोगादिति चेन्न हेतुसाध्ययोः प्रयोगादेव साध्यधर्मिणि संशयस्य निराकृतत्वात् उपनयनिगमनयोरनुमानांगत्वाभावात्।

टीकार्थ : कोई कहता है उपनय और निगमन को भी अनुमान का अंगपना ही है उनके प्रयोग के बिना निःसंशय साध्य के ज्ञान का योग नहीं है। ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि हेतु और साध्य के प्रयोग से ही साध्य धर्मी में संशय का निराकरण होने से उपनय और निगमन का अनुमान के अंगपने का अभाव है।

231. इस सूत्र में एवं पद को क्यों ग्रहण किया है ?

यहाँ पर दिये गये एवं पद से दृष्टान्तादिक के बिना यह अर्थ लेना है।

232. यौगमतानुसारियों के उपनय और निगमन अनुमान के अंग हैं ? यह निराकरण कैसे किया ?

क्योंकि हेतु और साध्य के बोलने से साध्य धर्म वाले धर्मी में संशय नहीं रहता।

अनुमान के प्रयोग में केवल हेतु की आवश्यकता और उदाहरण आदि की अनावश्यकता –

समर्थनं वा वरं हेतुरूपमनुमानावयवो वास्तु साध्ये तदुपयोगात्॥ 41॥

सूत्रान्वय : समर्थनं = समर्थन ही, वा = ही, वरं = श्रेष्ठ (वास्तविक), हेतुरूपम् = हेतु का स्वरूप है, अनुमानावयवः = अनुमान का अंग, वा = अन्य का संकेत, अस्तु = हो, साध्ये = साध्य की सिद्धि में, उपयोगात् = उपयोग होने से।

सूत्रार्थ : समर्थन ही हेतु का वास्तविक स्वरूप है, अतः वही अनुमान का अवयव माना जाए, क्योंकि साध्य की सिद्धि में उसी का उपयोग होता है।

संस्कृतार्थ : किञ्च दृष्टान्तादिकमभिधायापि समर्थनमवश्यं करणीयम-समर्थितस्याहेतुत्वादिति। तथा च समर्थनमेव वास्तविक हेतु स्वरूपमनुमानावयवो वा भवतु, साध्यसिद्धौ तस्यैवोपयोगान्नोदाहरणादिकस्येति।

टीकार्थ : कोई कहता है दृष्टान्त आदिक को कह करके भी समर्थन अवश्य ही करना चाहिए क्योंकि जिस हेतु का समर्थन न हुआ हो, वह हेतु ही नहीं हो सकता। इसलिए वह समर्थन ह4ी हेतु का उत्तमरूप है और उसे ही अनुमान का अवयव मानना चाहिए, क्योंकि साध्य की सिद्धि में उसका ही उपयोग है, उदाहरण आदि का नहीं कहना चाहिए।

233. सूत्र में दो स्थानों पर वा शब्द का प्रयोग है, उन्हें किन-किन अर्थों में ग्रहण करना है ?

सूत्र पठित प्रथम वा शब्द से एवकार अर्थ लेना है, द्वितीय वा शब्द अन्य पक्ष की सूचना करता है – शेष अर्थ सरल है।

कोई कहता है कि दृष्टान्तादिक के बिना मंदबुद्धि जनों को ज्ञान कराना अशक्य है। अतः पक्ष और हेतु के प्रयोग मात्र से उन्हें साध्य का ज्ञान कैसे हो जायेगा ? इसी का उत्तर इस सूत्र में देते हैं :-

बालव्युत्पत्यर्थं तत्त्रयोपगमे शास्त्रे एवासौ न वादेऽनुपयोगात्॥ 42॥

सूत्रान्वय : बाल = मंदबुद्धि वाले, व्युत्पत्यर्थं = ज्ञान कराने के लिए, तत् = उन, त्रय = तीन (उदाहरण उपनय, निगमन की), उपगमे = स्वीकारता, शास्त्रे = शास्त्र में, एव = ही, असौ = उनकी, न = नहीं, वादे = वाद में, अनुपयोगात् = उपयोग में न होने से।

सूत्रार्थ : मंदबुद्धि वाले बालकों की व्युत्पत्ति के लिए उन उदाहरणादि तीन अवयवों के मान लेने पर भी शास्त्र में ही उनकी स्वीकारता है, वादकाल में नहीं क्योंकि वाद (शास्त्रार्थ) में उनका उपयोग नहीं है।

संस्कृतार्थ : मंदमतीनां शिष्याणां सम्बोधनार्थमुदाहरणादित्रय-प्रयोगाभ्युपगेऽपि वीतरागकथायामेव ज्ञातव्यो न तु बिजिगीषु कथायाम्। तत्र तस्यानुपयोगात्। न हि वादकाले शिष्याः व्युत्पाद्याः व्युत्पन्नानामेव तत्राधिकारात्।

टीकार्थ : मंदमती वाले शिष्यों को समझाने के लिए उदाहरण, उपनय, निगमन इन तीनों का प्रयोग स्वीकारने पर भी उनका प्रयोग वीतराग कथा में ही जानना चाहिए परन्तु विजिगीषु कथा में नहीं, क्योंकि विजगीषु कथा में बालक अनुपयोगी होने से वाद के समय शिष्यों को समझाया नहीं जाता, क्योंकि वाद में तो व्युत्पन्न पुरुषों का ही अधिकार होता है।

234. कथा कितने प्रकार की होती है एवं उनका स्वरूप क्या है ?

इस प्रश्न का समाधान प्रथम परिच्छेद के प्रथम सूत्र में किया गया है।

बाल व्युत्पत्ति के लिए उन तीनों को स्वीकार किया गया है अतः शास्त्र में स्वीकृत उन उदाहरणादिक तीनों अवयवों का स्वरूप दिखलाते हुए प्रथम

दृष्टान्त के भेद दिखलाते हैं –

दृष्टान्तो द्वेधा, अन्वयव्यतिरेकभेदात्॥ 43 ॥

सूत्रान्वय : दृष्टान्तः = दृष्टान्त, द्वेधा = दो प्रकार का, अन्वय = अन्वय, व्यतिरेक = व्यतिरेक के, भेदात् = भेद से।

सूत्रार्थ : दृष्टान्त दो प्रकार का है –अन्वय और व्यतिरेक।

संस्कृतार्थ : दृष्टौ अन्तौ साध्यसाधनलक्षणौ धर्मौ अन्वयमुखेन व्यतिरेकमुखेन वा यत्र सः दृष्टान्तः। स हि द्विविधः अन्वयदृष्टान्तो व्यतिरेकदृष्टान्तश्चेति।

टीकार्थ : जहाँ पर साध्य-साधन लक्षण वाले दो धर्म अन्वय या व्यतिरेक रूप से देखे जायें, वह दृष्टान्त है, इस प्रकार के अर्थ का अनुसरण करने वाली संज्ञा जानना चाहिए। वह दो प्रकार का है – 1. अन्वय दृष्टान्त, 2. व्यतिरेक दृष्टान्त।

235. दृष्टान्त किसे कहते हैं ?

जहाँ पर साध्य और साधन लक्षण वाले दोनों धर्म अन्वय मुख से अथवा व्यतिरेक मुख से देखे जायें, वह दृष्टान्त कहलाता है।

अन्वय दृष्टान्त का लक्षण दिखलाते हैं –

साध्यव्याप्तं साधनं यत्र प्रदर्श्यते सोऽन्वयदृष्टान्तः॥ 44 ॥

सूत्रान्वय : साध्यव्याप्तं = साध्य से व्याप्त, साधनम् = साधन को, यत्र = जहाँ, प्रदर्शते = दिखाया जाता है, सः = वह, अन्वयदृष्टान्तः = अन्वयदृष्टान्त।

सूत्रार्थ : साध्य के साथ जहाँ साधन की व्याप्ति दिखलाई जाती है, वह अन्वय दृष्टान्त है।

संस्कृतार्थ : साधनसद्भावे साध्यसद्भावो यत्र प्रदर्श्यते सोऽन्वय दृष्टान्तः।

टीकार्थ : साधन के सद्भाव में साध्य का सद्भाव जहाँ दिखाया जाता है वह अन्वय दृष्टान्त है।

विशेष : (जन्यजनकादि भावरूप) साध्य से व्याप्त अविनाभाव से निश्चित साधन व्याप्ति पूर्वक जहाँ दिखलाया जाता है वह भाव है। धूम और जल की व्याप्ति नहीं है, क्योंकि वहाँ जन्य जनक भाव नहीं है। परन्तु धूम और अग्नि में जन्य-जनक भाव पाया जाता है जैसे सम्यग्दर्शन और सम्यक्ज्ञान। अनंतचतुष्टय और अरहंत। इसमें अनंतचतुष्टय साधन है और अरहंत हैं साध्य जहाँ-जहाँ अनंत चतुष्टय है वहाँ-वहाँ अरहंतपना निश्चित है।

व्यतिरेक दृष्टान्त का स्वरूप और लक्षण दिखलाते हैं -

सध्याभावे साधनाभावो यत्र कथ्यते स व्यतिरेक दृष्टान्तः ॥ 45 ॥

सूत्रान्वय : साध्याभावे = साध्य के अभाव में, साधनाभावः = साधन का अभाव, यत्र = जहाँ, कथ्यते = कहा जाता है, सः = वह, व्यतिरेक = व्यतिरेक दृष्टान्त है।

सूत्रार्थ : जहाँ पर साध्य के अभाव में साधन का अभाव कहा जावे वह व्यतिरेक दृष्टान्त है।

संस्कृतार्थ : साध्याभावे साधनाभावो यत्र प्रदशर्यते स व्यतिरेकदृष्टान्तः प्रोच्यते।

टीकार्थ : साध्य के अभाव में साधन का अभाव जहाँ पर दिखलाया जाता है, वह व्यतिरेक दृष्टान्त कहलाता है।

236. व्यतिरेक किसे कहते हैं ?

साध्य के अभाव में साधन का अभाव व्यतिरेक है।

237. व्यतिरेक दृष्टान्त किसे कहते हैं ?

व्यतिरेक प्रधान दृष्टान्त को व्यतिरेक दृष्टान्त कहते हैं।

नोट - प्रस्तुत सूत्र में साध्य के अभाव में साधन का अभाव ही हो इस प्रकार एवकार यहाँ जानना चाहिए।

उपनय का लक्षण एवं स्वरूप दिखलाते हैं -

हेतोरुपसंहार उपनयः ॥ 46 ॥

सूत्रान्वय : हेतोः = हेतो के, उपसंहार = उपसंहार, उपनयः = उपनय।

सूत्रार्थ : उपनीयते पुनरुच्यते इत्युपनयः पक्षे हेतोरूपसंहार उपनय इत्यर्थः।

संस्कृतार्थ : 'उपनीयते पुनरुच्यते इति उपनयः' यह व्युत्पत्ति है पक्ष में हेतु के दुहराने को उपनय कहते हैं।

विशेष : यहाँ पर पक्ष इस पद का अध्याहार करना चाहिए। तब यह अर्थ होता है कि हेतु का पक्ष धर्मरूप से उपसंहार करना अर्थात् उसी प्रकार यह धूम वाला है इस प्रकार से हेतु का दुहराना उपनय है।

निगमन का स्वरूप या लक्षण कहते हैं –

प्रतिज्ञायास्तु निगमनम्॥ 47॥

सूत्रान्वय : प्रतिज्ञाया = प्रतिज्ञा के, तु = और, निगमन = निगमन।

सूत्रार्थ : प्रतिज्ञा के दोहराने को निगमन कहते हैं।

संस्कृतार्थ : पक्षस्य साध्यधर्मविशिष्टत्वेन प्रदर्शनं निगमनं प्रोच्यते।

टीकार्थ : पक्ष के साध्यधर्म विशिष्टता के साथ दिखलाना निगमन कहा जाता है।

विशेष : सूत्र में उपसंहार पद की अनुवृत्ति की गई है प्रतिज्ञा का उपसंहार अर्थात् साध्य धर्म विशिष्टता के साथ कि धूम वाला होने से यह अग्नि वाला है, इस प्रकार प्रतिज्ञा दुहराना निगमन है।

238. शास्त्र में दृष्टान्त आदि कहना ही चाहिए, ऐसा नियम नहीं माना गया है, फिर आचार्यों ने यहाँ पर उन तीनों का कथन क्यों किया है ?

ऐसी शंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि स्वयं नहीं स्वीकार करके भी (शिष्य)प्रतिपाद्य के अनुरोध से जिनमत का अनुसरण करने वाले आचार्यों ने प्रयोग की परिपाटी को स्वीकार किया है। जिन्होंने उन उदाहरण आदि का स्वरूप नहीं जाना है, वे लोग प्रयोग परिपाटी को कर नहीं सकते हैं। अतः उनकी जानकारी के लिए उनका स्वरूप भी शास्त्र में कहना ही चाहिए, इसलिए यहाँ पर उदाहरणादिक का स्वरूप आचार्य ने कहा है।

इस प्रकार मतभेद की अपेक्षा दो, तीन और पाँच अवयव रूप जो अनुमान है वह दो प्रकार का ही है यह दिखलाते हुए आचार्य सूत्र कहते हैं -

तदनुमानं द्वेधा ॥ 48 ॥

सूत्रान्वय : तत् = वह, अनुमानं = अनुमान, द्वेधा = दो प्रकार का।

सूत्रार्थ : वह अनुमान दो प्रकार का है।

संस्कृतार्थ : अनुमानं द्विविधम्।

टीकार्थ : वह अनुमान दो प्रकार का है।

अब आचार्य भगवन् उन दोनों भेदों को बतलाते हैं -

स्वार्थपरार्थभेदात् ॥ 49 ॥

सूत्रान्वय : स्वार्थ = स्वार्थ, परार्थ = परार्थ, भेदात् = भेद से।

सूत्रार्थ : स्वार्थ और परार्थ के भेद से अनुमान के 2 भेद हैं।

संस्कृतार्थ : स्वार्थानुमानं, परार्थानुमानं चेत्यनुमानस्य दौ भेदौ स्तः।

टीकार्थ : स्वार्थानुमान और परार्थानुमान इस प्रकार अनुमान के 2 भेद हैं।

239. सूत्र का अभिप्राय क्या है ?

स्व और पर के विवाद का निराकरण करना ही दोनों प्रकार के अनुमानों का फल है अर्थात् स्वविषयक विवाद का निराकरण करना स्वार्थनुमान है और परविषयक विवाद का निराकरण करना परार्थानुमान का फल है।

अब स्वार्थानुमान का स्वरूप बतलाते हुए आचार्य सूत्र कहते हैं -

स्वार्थमुक्तलक्षणम् ॥ 50 ॥

सूत्रान्वय : स्वार्थम् = स्वार्थ का, उक्त = कहा गया, लक्षणम् = लक्षण (स्वरूप)।

सूत्रार्थ : स्वार्थानुमान का लक्षण कहा जा चुका है।

संस्कृतार्थ : परोपदेशमनपेक्ष्य स्वयमेव निश्चितात् धूमादिसाधनात् पर्वतादौ धर्मिणि बह्नयादेः साध्यस्य यद् विज्ञानं जायते तत्स्वार्थानुमानं निगद्यते।

टीकार्थ : पर के उपदेश की अपेक्षा से रहित स्वयं ही निश्चित होने से धूमादि साधन से पर्वत आदि धर्मी में अग्नि आदि साध्य का जो विशेष ज्ञान होता है, वह स्वार्थानुमान कहा जाता है।

विशेष : दूसरे के उपदेश के बिना स्वतः ही साधन से साध्य का जो अपने लिए ज्ञान होता है, उसे स्वार्थानुमान कहते हैं।

अब अनुमान के दूसरे भेद का स्वरूप बतलाने के लिए सूत्र कहते हैं -

परार्थं तु तदर्थ परामर्शिवचनाज्जातम्॥ 51॥

सूत्रान्वय : परार्थं = परार्थानुमान, तु = परन्तु, तत् = उस स्वार्थानुमान के विषयभूत, अर्थ = पदार्थ का, परामर्श = परामर्श करने वाले, वचनात् = वचनों से, जातम् = उत्पन्न होता है।

सूत्रार्थ : उस स्वार्थानुमान के विषयभूत पदार्थ का परामर्श करने वाले वचनों से जो उत्पन्न होता है, उसे परार्थानुमान कहते हैं।

संस्कृतार्थ : स्वार्थानुमानगोचरार्थप्रतिपादकवचनेभ्यः समुत्पन्नं यत्साधनज्ञानं तन्निमित्तिकं साध्यविज्ञानं परार्थानुमानं निगद्यते।

टीकार्थ : स्वार्थानुमान के गोचरभूत पदार्थ साध्य और साधन को कहने वाले वचनों से उत्पन्न हुआ जो साधन ज्ञान उसके निमित्त जो साध्य का ज्ञान होता है वह परार्थानुमान कहा जाता है।

विशेष : उस स्वार्थानुमान का अर्थ जो साध्य-साधन लक्षण वाला पदार्थ उसे तदर्थपरामर्षि कहते हैं। ऐसे तदर्थ परामर्षि वचनों से जो विज्ञान उत्पन्न होता है वह परार्थानुमान है ऐसा जानना चाहिए।

240. परार्थानुमान किसे कहते हैं ?

दूसरे के वचनों के द्वारा साधन से जो साध्य का ज्ञान होता है, वह परार्थानुमान है और दूसरों के वचनों के बिना जो स्वयं साधन से जो साध्य का ज्ञान होता है, वह स्वार्थानुमान है यही दोनों में भेद है।

परार्थानुमान के प्रतिपादक वचनों की उपचार से परार्थानुमान संज्ञा है, यह बतलाने के लिए सूत्र कहते हैं -

तद्वचनमपि तद्धेतुत्वात्॥ 52॥

सूत्रान्वय : तत् = परार्थानुमान के प्रतिपादक, वचनम् = वचनों को, अपि = भी, हेतुत्वात् = कारण होने से।

सूत्रार्थ : परार्थानुमान के कारण होने से परार्थानुमान के प्रतिपादक वचनों को भी परार्थानुमान कहते हैं।

संस्कृतार्थ : स्वार्थानुमानस्य कार्यत्वात् परार्थानुमानस्य कारणत्वाच्च परार्थानुमान प्रतिपादकवचनमपि उपचारतः परार्थानुमानं प्रोच्यते।

टीकार्थ : स्वार्थानुमान का कार्य होने से परार्थानुमान का कारण होने से परार्थानुमान का प्रतिपादक वचन भी उपचार से परार्थानुमान कहा जाता है।

241. तद्वचन किसे कहते हैं ?

साध्य साधन का प्रतिपादन करने वाले पुरुष का ज्ञान लक्षणभूत अनुमान है कारण जिसका, उसको तद्वचन कहते हैं।

242. तत् हेतुत्व किसे कहते हैं ?

प्रतिपाद्य शिष्यादि पुरुष के ज्ञान लक्षण रूप अनुमान का जो कारण है उसे तत् हेतुत्व कहते हैं।

243. (अ) - उपचार की प्रवृत्ति कब होती है ?

मुख्य का अभाव होने पर तथा प्रयोजन और निमित्त के होने पर उपचार की प्रवृत्ति होती है।

243. (ब) - यहाँ किसमें किसका उपचार किया गया है ?

यहाँ अनुमान के कारण वचनों में ज्ञानरूप कार्य का उपचार किया गया है।

244. सूत्र अर्थ का सम्बन्ध कैसा करना चाहिए ?

परार्थानुमान का प्रतिपादक जो वक्ता पुरुष उसका स्वार्थानुमान है कारण जिसके ऐसा जो परार्थानुमान का वचन वह भी अनुमान है। ऐसा सम्बन्ध करना चाहिए। इस पक्ष में कारण का उपचार किया गया है, इतना अर्थसूत्र में शेष है।

245. वचन को अनुमानपना कहने में प्रयोजन क्या है ?

वह यह है कि प्रतिज्ञा, हेतु आदिक अनुमान के अवयव हैं ऐसा शास्त्र में व्यवहार है। ज्ञानात्मक और निरंश अर्थात् अवयव रहित अनुमान में प्रतिज्ञा हेतु आदि के व्यवहार की कल्पना करना अशक्य है।

वह अनुमान दो प्रकार का है इत्यादि रूप से उसके प्रकाश को भी विस्तार से कहकर अन्यथानुपपन्नत्व रूप लक्षण की अपेक्षा साधन एक प्रकार का होने पर भी अति संक्षेप से भेद करने पर वह दो प्रकार का है- यह दिखलाते हैं -

स हेतुर्द्वेधोपलब्ध्यनुपलब्धिभेदात्॥ 53॥

सूत्रान्वय : सः = वह, हेतुः = हेतु, द्वेधा = दो प्रकार का, उपलब्धि = उपलब्धि, अनुपलब्धि = अनुपलब्धि, भेदात् = भेद से।

सूत्रार्थ : अविनाभाव लक्षण वाला वह हेतु दो प्रकार का है, उपलब्धि और अनुपलब्धि के भेद से।

संस्कृतार्थ : हेतु र्द्विविधः उपलब्धिरूपोऽनुपलब्धिरूपश्च।

टीकार्थ : हेतु के दो प्रकार हैं उपलब्धिरूप और अनुपलब्धिरूप।

246. उपलब्धि और अनुपलब्धि का अर्थ क्या है ?

उपलब्धि नाम विद्यमान का है और अनुपलब्धि नाम अविद्यमान का है।

उपलब्धि विधि की साधिका ही है, अनुपलब्धि प्रतिषेध की साधिका ही है, इस प्रकार दूसरे मत वालों के नियम का निषेध करते हुए आचार्य कहते हैं कि उपलब्धि और अनुपलब्धि सामान्य रूप से विधि और प्रतिषेध के साधक हैं।

उपलब्धिर्विधिप्रतिषेधयोरनुपलब्धिश्च॥ 54॥

सूत्रान्वय : उपलब्धिः = उपलब्धि, विधिप्रतिषेधयोः = विधि के प्रतिषेध के, अनुपलब्धिः = अनुपलब्धि, च = और।

सूत्रार्थ : उपलब्धिरूप हेतु भी विधि और प्रतिषेध दोनों का साधक है तथा अनुपलब्धिरूप हेतु भी दोनों का साधक है।

संस्कृतार्थ : उपलब्धिरूपो हेतु र्द्विविधः - अविरुद्धोपलब्धिः, विरुद्धोपलब्धिश्चेति। अनुपलब्धिरूपो हेतुरपि द्विविधः अविरुद्धानुपलब्धिः, विरुद्धानुपलब्धिश्चेति।

विशेष : इनमें पहला विधि साधक है और दूसरा प्रतिषेध साधक है। इसी प्रकार द्वितीय पक्ष में पहला निषेधसाधक है और दूसरा विधि साधक है। इस प्रकार उपलब्धि और अनुपलब्धिरूप दोनों हेतु विधि और निषेध दोनों के साधक होते हैं।

इस समय उपलब्धि के भी संक्षेप से विरुद्ध-अविरुद्ध भेद से दो भेद बतलाते हुए अविरुद्धोपलब्धि के विधि को सिद्ध करने में विस्तार से भेद कहते हैं -

अविरुद्धोपलब्धिर्विधौषोढाव्याप्यकार्यकारणपूर्वोत्तरसहचर भेदात्॥ 55॥

सूत्रान्वय : अविरुद्धोपलब्धिः = अविरुद्धोपलब्धि, विधौ = विधि (साधन दशा में), षोढा = छह, व्याप्यः = व्याप्य, कार्य : = कार्य, कारणः = कारण, पूर्वचर = पूर्वचर, उत्तरचर = उत्तरचर, सहचर = सहचर, भेदात् = भेद से।

सूत्रार्थ : विधि साधन की दशा में अविरुद्धोपलब्धि व्याप्य, कार्य, कारण, पूर्व और सहचर के भेद से छह प्रकार की है।

संस्कृतार्थ : अविरुद्धोपलब्धिरूपो हेतुः विधौ साध्ये सति षट्प्रकारो भवति। व्याप्यरूपः कार्यरूपः कारणरूपः पूर्वचररूपः उत्तरचररूपः, सहचर रूपश्चेति।

टीकार्थ : अविरुद्धोपलब्धि रूप हेतु विधि के साध्य होने पर छह प्रकार की होती है। व्याप्यरूप, कार्यरूप, पूर्वचररूप, उत्तरचररूप और सहचररूप इस प्रकार से 6 भेद हैं।

विशेष : सूत्र पठित पूर्व और सहपद का द्वन्द्व समास करना है, पश्चात् पूर्व और सहपद के साथ चर शब्द का अनुकरण निर्देश करना इस प्रकार द्वन्द्व समास से पीछे सुना गया चर शब्द प्रत्येक के साथ लगाना चाहिए। तदनुसार यह अर्थ होता है पूर्वचर, उत्तरचर और सहचर का पश्चात् व्याप्य

आदि पदों के साथ द्वन्द्व समास करना चाहिए।

कारण हेतु के विधि साधकपना –

रसादेकसामग्र्यनुमानेन रूपानुमानमिच्छद्भिरिष्टमेव किञ्चित् कारणं हेतुर्यत्र सामर्थ्याप्रतिबंधकारणान्तरावैकल्ये ॥ 56 ॥

सूत्रान्वय : रसात् = रस से, एक = एक, सामग्री, अनुमानेन = अनुमान द्वारा, रूपानुमानम् = रूप का अनुमान, इच्छद्भिः = स्वीकार करने वाले, इष्टम् = इष्ट, एव = ही, किञ्चित् कारणं = कोई विशिष्ट कारण, हेतु = हेतु, यत्र = जिसमें, सामर्थ्य = सामर्थ्य की, अप्रतिबंध = रुकावट नहीं है, कारणान्तरा = दूसरे कारणों की, अवैकल्ये = विकलता नहीं है।

सूत्रार्थ : रस से एक सामाग्री के अनुमान द्वारा रूप का अनुमान स्वीकार करने वाले बौद्धों ने कोई विशिष्ट कारण रूप हेतु माना ही है, जिसमें सामर्थ्य की रुकावट नहीं है और दूसरे कारणों की विकलता नहीं है।

संस्कृतार्थ : सौगतः प्राह – विधिसाधनं द्विविधमेव, स्वभावकार्यभेदात्। कारणस्य तु कार्याविनाभावाभावाद् अलिंगत्वम्। नावश्यं कारणानि कार्यवन्ति भवन्तीति वचनादिति। तदप्यसंगतम् – आस्वाद्यमानाद्धि रसात् तज्जनिका सामग्री अनुमीयते ततो रूपानुमानं जायते, प्राक्तनो रूपक्षणः सजातीयं रूपक्षणान्तरलक्षणं कार्यं कुर्वन्नेव विजातीयरसलक्षणं कार्यं कुरुते इति रूपानुमानमिच्छद्भिः सौगतैः किचित्कारणं हेतुत्वेनाभ्युपगतमेव रूपक्षणस्य सजातीयरूपक्षणान्तराव्यभिचारात्। एतेनेदमुक्तं यत् यस्मिन्कारणे सामर्थ्याप्रतिबंधः कारणान्तर विकलता च नास्ति तद्विशिष्टकारणं कार्योत्पत्तिनियामकत्वादवश्यमेव कार्यानुमापकं भवतीतिः भावः।

टीकार्थ : बौद्ध कहते हैं – विधि साधक हेतु दो प्रकार का ही है – स्वभावहेतु और कायहेतु, क्योंकि कारण का कार्य के साथ अविनाभाव का अभाव होने से हेतु नहीं माना जा सकता। कारण कार्य वाले अवश्य हों ऐसा नहीं है इस प्रकार वचन है। **जैन** – उन बौद्धों का ऐसा कहना ठीक नहीं है। क्योंकि आस्वाद्यमान रस से उसकी उत्पादक सामग्री का अनुमान किया जाता है उससे रूप का अनुमान होता है पहले का रूपक्षण सजातीय अन्यरूप क्षण रूप कार्य को उत्पन्न करता हुआ ही विजातीय इस लक्षण कार्य को करता है, इस

प्रकार से रूप के अनुमान की इच्छा करने वाले बौद्धों को कोई कारण रूप हेतु इष्ट ही है, क्योंकि पूर्वकाल के रूप क्षण का सजातीय अन्य रूप क्षण के साथ कोई व्यभिचार नहीं पाया जाता है। इसके द्वारा यह कहा गया जो जिस कारण में सामर्थ्य की प्रतिबंध नहीं है और अन्यकारण अविकलता (पूर्णता) है। विशिष्ट कारण कार्योत्पत्ति का नियामक होने से अवश्य ही कार्य का अनुमापक होता है यह भाव है।

247. बौद्ध लोग किस हेतु को नहीं मानते ?

बौद्ध लोग कारण रूप हेतु को नहीं मानते।

248. बौद्ध लोग कारण रूप हेतु को इष्ट कैसे मानते हैं ?

वह इस प्रकार किसी व्यक्ति ने गहन अंधकार में आम को चखा। वह उसके मीठे रस के स्वाद से विचारता है कि इसका रूप पीला होना चाहिए। यहाँ वर्तमान रस सहकारी कारण से उत्पन्न हुआ है। अतः पूर्वरूप क्षण सजातीय क्षण रूप कार्य की उत्पत्ति में सहायक होता है। अतः कारणभूत पूर्वरूप क्षण से कार्य स्वरूप रूप क्षण का अनुमान किया जाता है। इस प्रकार बौद्ध रस से एक सामाग्री के द्वारा रूप का अनुमान करते हैं इससे सिद्ध होता है कि कारण रूप हेतु माना ही है।

अब पूर्वचर और उत्तरचर हेतु भी भिन्न ही है, क्योंकि उनका स्वाभाव हेतु कार्य और कारण हेतुओं में भी अन्तर्भाव नहीं होता है। यह बात आचार्य दिखलाते हैं -

न च पूर्वोत्तरचारिणोस्तादात्म्यं तदुत्पत्तिर्वा कालव्यवधाने तदनुपलब्धेः ॥ 57 ॥

सूत्रान्वय : न = नहीं, च = और, पूर्वोत्तरचारिणो = पूर्वचर और उत्तरचर का, तादात्म्यं = तादात्म्य सम्बन्ध, वा = और तदुत्पत्तिः = तदुत्पत्ति, कालव्यवधाने = काल का व्यवधान होने पर, तत् = उन दोनों सम्बन्धों की, अनुपलब्धिः = उपलब्धि नहीं है।

सूत्रार्थ : पूर्वचर और उत्तर चर हेतुओं का साध्य के साथ तादात्म्य सम्बन्ध नहीं है, तदुत्पत्ति सम्बन्ध भी नहीं है, क्योंकि काल का व्यवधान होने पर इन दोनों सम्बन्धों की उपलब्धि नहीं होती।

संस्कृतार्थ : साध्यसाधनयोस्तादात्म्यसम्बन्धे हेतोः स्वाभावहेतावन्तर्भावो भवेत्। तदुत्पत्तिसम्बन्धे च कार्यहेतोः कारणहेतौ वान्तर्भावो विभाव्यते। न च पूर्वोत्तरचारिणो तदुभयसम्बन्धौ स्तः, कालव्यवधाने सति तदुभय सम्बन्धानुपलब्धेः। पूर्वोत्तरचारिणोश्चान्तर्मुहुतप्रमाणं कालव्यवधानं सुनिश्चितम्। अतश्च तयोर्न स्वभावादिहेतुष्वन्तर्भावः। इति तौ तेभ्यः पृथगेव हेतू प्रत्येतव्यौ।

टीकार्थ –साध्य साधन में तादात्म्य सम्बन्ध के होने पर स्वभाव हेतु में अन्तर्भाव होता है और तदुत्पत्ति सम्बन्ध के होने पर कार्य या कारण हेतु में अन्तर्भाव होता है। पूर्वचर और उत्तरचर हेतु में तादात्म्य और तदुत्पत्ति सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि काल का व्यवधान होने पर इन दोनों सम्बन्धों की उपलब्धि नहीं होती है। पूर्वचर और उत्तरचर में अन्तर्मुहूर्त प्रमाण काल का व्यवधान सुनिश्चित है और इसलिए इन दोनों हेतुओं का स्वभावादि तीनों में से किसी भी हेतु में अन्तर्भाव नहीं होता। इस प्रकार पूर्वचर और उत्तरचर हेतु पृथक् ही जानना चाहिए।

248. तादात्म्य सम्बन्ध किसे कहते हैं ?

ज्ञान और आत्मा जैसे दो अभिन्न पदार्थों में जो सम्बन्ध होता है, उसे तादात्म्य सम्बन्ध कहते हैं।

249. तदुत्पत्ति सम्बन्ध किसे कहते हैं ?

एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ की उत्पत्ति को तदुत्पत्ति सम्बन्ध कहते हैं।

विशेष : एक मुहूर्त के बाद रोहिणी नक्षत्र का उदय होगा, क्योंकि अभी कृतिका का उदय हो रहा है। यह पूर्वचर हेतु का उदाहरण है। एक मुहूर्त के पूर्व ही भरणि का उदय हो चुका है, क्योंकि अभी कृतिका का उदय हो रहा है, यह उत्तरचर हेतु का उदाहरण है। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि एक नक्षत्र के बाद दूसरे नक्षत्र के उदय में अन्तर्मुहूर्त का व्यवधान है। अतः इनमें न तो तादात्म्य सम्बन्ध संभव है और न तदुत्पत्ति सम्बन्ध, जिससे स्वभाव हेतु में अन्तर्भाव किया जा सके ? अतः पूर्वचर और उत्तर चर ये दोनों हेतु भिन्न ही हैं, यह सिद्ध हुआ।

यहाँ बौद्धों का कहना है कि काल के व्यवधान में भी कार्य कारण भाव देखा ही जाता है जैसे कि जाग्रत दशा और प्रबुद्ध दशा भावी प्रबोध (ज्ञान) में तथा मरण और अनिष्ट में कार्य कारण भाव देखा जाता है। आचार्य उनके इस कथन का परिहार करने के लिए सूत्र कहते हैं -

भाव्यतीतयोर्मरणजाग्रद्बोधयोरपि नारिष्टोद्बोधौ प्रतिहेतुत्वम्॥ 58॥

सूत्रान्वय : भाव्यतीतयो: = भावी और अतीत के, मरण = मरण, जाग्रद = सोने से पूर्व की अवस्था, बोधयो: = दोनों ज्ञानों का, अपि = भी, न = नहीं, अरिष्ट = अपशकुन, उद्बोधौ = दोनों का ज्ञान, प्रति = और, हेतुत्वम् = हेतुपना।

सूत्रार्थ : भावी मरण और अतीत के जाग्रत बोध के भी अपशकुन और जाग्रत अवस्था के बोध (उद्बोध) के प्रति कारणपना नहीं है।

संस्कृतार्थ : ननु कालव्यवधानेऽपि कार्यकारणभावो दृश्यते एव। यथा जाग्रत्प्रबुद्धदशा भाविप्रबोधयो मरणारिष्टयो र्वा कार्यकारणभाव इति चेन्न भविष्यत्कालीनमरणस्यापशकुनं प्रति, भूतकालीनजाग्रद्बोधस्य प्रबुद्धदशा भाविबोधं प्रति कारणत्वाभावात्।

टीकार्थ : बौद्धों का कथन है कि काल के व्यवधान में भी कार्यकारण भाव देखा ही जाता है, जैसे कि जाग्रतदशा और प्रबुद्धदशाभावी प्रबोध (ज्ञान) में तथा मरण तथा अपशकुन में कार्यकारण भाव देखा जाता है। यदि ऐसा कहते हैं तो यह ठीक नहीं है, आगामी काल में होने वाले मरण को अप शकुनादि का कारण तथा सोने से पूर्व समय के ज्ञान को प्रातःकाल के ज्ञान का कारण नहीं होने से।

विशेष : बौद्धों का कहना है कि रात्रि में सोते समय का ज्ञान प्रातःकाल के ज्ञान में कारण होता है और आगामी काल में होने वाला मरण इस समय में होने वाले अरिष्टों (अपशकुनों)का कारण है, अतः काल के व्यवधान में भी कार्य कारण भाव होता है।

अब जैनाचार्य कहते हैं कि दोनों में कार्य-कारण भाव बतलाना ठीक नहीं है, क्योंकि कार्य-कारण भाव तभी संभव है जबकि कारण के सद्भाव में

कार्य उत्पन्न हो। जब सोने से पूर्व समय का ज्ञान नष्ट ही हो गया है, तब वह प्रातःकाल के प्रबोध का कारण कैसे हो सकता है। इसी प्रकार आगामी काल में होने वाला मरण जब अभी हुआ ही नहीं है, तब वह इस समय होने वाले अपशकुनादि का भी कारण कैसे हो सकता है, क्योंकि आपके द्वारा दिये गये दोनों उदाहरणों में काल का अंतराल बीच में पाया जाता है और जहाँ काल का अंतराल पाया जाता है, वहाँ कार्य कारण भाव हो नहीं सकता है।

कार्य कारण भाव मानने के खण्डन में हेतु –

तद्व्यापाराश्रितं हि तद्भावभावित्वम्॥ 59॥

सूत्रान्वय : तत् = उस कारण के, व्यापार = व्यापार के, आश्रितं = आश्रित, हि = ही (यस्मात्), तद्भावित्वम् = कार्य का व्यापारपना।

सूत्रार्थ : कारण के व्यापार के आश्रित ही कार्य का व्यापार हुआ करता है।

संस्कृतार्थ : यस्मात्कारणात् कार्यकारणभावः कारण व्यापाराश्रितो विद्यते ततो मरण जाग्रद्बोधयोरपि नारिष्टबोधौ प्रति हेतुत्वम् अतिव्यवहितपदार्थानां कारणव्यापारसापेक्षाभावात्।

टीकार्थ : जिस कारण के होने पर कार्य का होना। कार्य कारण के व्यापार के आश्रित है इसलिए अतीत जाग्रतबोध और भावी उद्बोध तथा भावीमरण और वर्तमान अरिष्ट में कार्यकारण भाव नहीं है, क्योंकि अतिव्यवहित पदार्थों में कारण के व्यापार का आश्रितपना नहीं होता है।

250. सूत्र में हि शब्द किस अर्थ में है ?

यहाँ हि शब्द यस्मात् के अर्थ में है।

251. तद्भाव भावित्व किसे कहते हैं ?

कारण के होने पर कार्य का होना तद्भावभावित्व है।

सहचर हेतु का भी स्वभाव कार्य और कारण हेतुओं में अन्तर्भाव नहीं होता है। यह प्रदर्शित करते हैं –

सहचारिणोरपि परस्परपरिहारेणावस्थानात्सहोत्पादाच्च ॥ 60 ॥

सूत्रान्वय : सहचारिणः = सहचारी पदार्थ के, अपि = भी, परस्पर = परस्पर, परिहारेण = परिहार से, अवस्थानात् = अवस्थान होने से, सहोत्पादात् = एक साथ उत्पन्न होने से, च = और।

सूत्रार्थ : सहचारी पदार्थ परस्पर के परिहार से रहते हैं, अतः सहचर हेतु का स्वभाव हेतु में अन्तर्भाव नहीं हो सकता और वे एक साथ उत्पन्न होते हैं अतः उसका कार्य हेतु और कारण हेतु में भी अन्तर्भाव नहीं हो सकता है।

संस्कृतार्थ : सहचारिणोरपि साध्यसाधनयोः परस्परपरिहारेणावस्थानात् सहचराख्यहेतोर्न स्वभावहेतावन्तर्भावः। सहोत्पादाच्च न कार्यहेतोः कारणहेतौ वान्तर्भावः तस्मात्सौगतैः सहचराख्योऽपि हेतुः स्वतंत्र एवाभ्युपगन्तव्यः।

टीकार्थ : सहचारी पदार्थ के भी साध्य-साधन का परस्पर परिहार से अवस्थान होने से सहचर नामक हेतु का स्वभाव हेतु में अन्तर्भाव नहीं किया जा सकता तथा सहचारी पदार्थ एक साथ उत्पन्न होने से कार्य हेतु अथवा कारण हेतु में भी अन्तर्भाव नहीं किया जा सकता। इसलिए बौद्धों के द्वारा सहचर नामक हेतु को भी स्वतंत्र ही स्वीकार करना चाहिए।

विशेष : जैसे गाय के समान समयवर्ती अर्थात् एक काल में होने वाले सत्य (वाम) और इतर (दक्षिण) विषाण (सींग) में कार्य-कारण भाव नहीं माना जाता इसी प्रकार फलादिक में एक साथ उत्पन्न होने वाले रूप और रस में भी कार्य कारण भाव नहीं माना जा सकता। अतः सहचर हेतु को स्वतंत्र ही स्वीकार करना चाहिए।

अब क्रम प्राप्त व्याप्य हेतु का उदाहरण देते हुए अन्वय व्यतिरेक पूर्वक शिष्य के अभिप्राय के वश प्रतिपादित प्रतिज्ञादि पाँच अवयवों को प्रदर्शित करते हैं -

परिणामी शब्दः कृतकत्वात्, य एवं, स एवं दृष्टो यथा घटः, कृतकश्चायं तस्मात्परिणामीति यस्तु न परिणामी स न कृतको दृष्टोः यथा वन्ध्यास्तनंधयः कृतकश्चायं, तस्मात्परिणामी ॥ 61 ॥

सूत्रान्वय : परिणामी = परिणमनशील, शब्दः = शब्द, कृतकत्वात् =

किया जाने वाला होने से, यः = जो, एवं = इस प्रकार, सः = वह, दृष्टः = देखा जाता है, यथा = जैसे, घटः = घड़ा, कृतकः = किया जाने वाला, च = और, अयम् = यह, तस्मात् = इसलिए, परिणामी = परिणमन वाला, यः = जो, तु = परन्तु, न = नहीं, कृतकः = किया जाने वाला, दृष्टः = देखा गया, यथा = जैसे, बन्ध्या = बन्ध्या का, स्तन्धयः = पुत्र।

सूत्रार्थ : शब्द परिणामी है क्योंकि वह कृतक होता है। जो इस प्रकार अर्थात् कृतक होता है वह इस प्रकार अर्थात् परिणामी देखा जाता है, जैसे – घड़ा। शब्द कृतक है इसलिए परिणामी है, जो परिणामी नहीं होता, वह कृतक भी नहीं देखा जाता है जैसे कि बन्ध्या का पुत्र। कृतक यह शब्द है, अतः वह परिणामी है।

विशेष : प्रतिज्ञा शब्द परिणामी, हेतु–कृतक है अन्वय दृष्टान्त – घड़ा, उपनय –यह कृतक है, निगमन – इसलिए परिणामी, व्यतिरेक दृष्टान्त – बंध्या का पुत्र।

संस्कृतार्थ : परिणामी शब्दः इति प्रतिज्ञा। कृतकत्वादिति हेतुः। यथा घटः इत्यन्वयदृष्टान्तः। यथा वन्ध्यास्तनन्धयः इति व्यतिरेकदृष्टान्तः। कृतकश्चाय मित्युपनयः। तस्मात्परिणामीति निगमनम्। एवमत्र पूर्वं बालव्युत्पत्त्यर्थम् अनुमानस्य यानि पञ्चांगानि अंगीकृतानि तान्युपदर्शितानि। अत्र कृतकत्वादिति हेतुः शब्दस्य परिणामित्वं साधयति, परिणामित्वेन व्याप्तं च वर्तते, अतोऽविरुद्धव्याप्योपलब्धिनामत्वं लभते।

टीकार्थ : शब्द परिणामी है यह प्रतिज्ञा है। किया जाने वाला होने से यह हेतु है। जैसे घड़ा यह अन्वय दृष्टान्त है। जैसे–बंध्या का पुत्र यह व्यतिरेक दृष्टान्त है। यह कृतक है, यह उपनय है। इसलिए परिणामी है यह निगमन है। इस प्रकार इसमें पहले बालकों को ज्ञानार्थ अनुमान के जो 5 अंगों को स्वीकृत किया गया था, उनको दिखाया गया है। इसमें किया जाने वाला होने से यह हेतु परिणामपने को सिद्ध करता है और परिणामपने के साथ व्याप्त है, अतः परिणामित्व साध्य के अविरुद्ध व्याप्य कृतकत्व की उपलब्धि है।

252. कृतक किसे कहते हैं ?

अपनी उत्पत्ति में अपेक्षित व्यापार वाला पदार्थ कृतक कहा जाता है और यह कृतकपना न कूटस्थ नित्यपक्ष में बनता है और न क्षणिक पक्ष में किन्तु परिणामी होने पर ही कृतकपना संभव है।

253. व्याप्य एवं व्यापक किसे कहते हैं ?

जो अल्प देश में रहे, वह व्याप्य और जो बहुत देश में रहे, उसे व्यापक कहते हैं।

254. व्याप्य और व्यापक का उदाहरण क्या है ?

कृतकत्व केवल पुद्गल द्रव्य में रहने से व्याप्य है और परिणामित्व आकाशादि सभी द्रव्यों में पाये जाने से व्यापक है।

255. परिणामी किसे कहते हैं ?

जो प्रतिसमय परिणमनशील होकर भी अर्थात् पूर्व आकार का परित्यागकर और उत्तर आकार को धारण करते हुए भी दोनों अवस्थाओं में अपने स्वत्व को कायम रखता है, उसे परिणामी कहते हैं।

अब आचार्य अविरुद्ध कार्योपलब्धिरूप हेतु को कहते हैं –

अस्त्यत्र देहिनि बुद्धि र्व्याहारादेः ॥ 62 ॥

सूत्रान्वय : अस्ति = है, अत्र = इसमें, देहिनि = प्राणी में, बुद्धिः = बुद्धि के कार्य, व्याहारदेः = वचनादि।

सूत्रार्थ : इस शरीरधारी प्राणी में बुद्धि है क्योंकि बुद्धि के कार्य वचनादिक पाये जाते हैं।

संस्कृतार्थ : अस्त्यत्र देहिनि बुद्धिः व्याहारादेरित्यत्र बुद्ध्यविरुद्ध कार्यस्य वचनादेरुपलब्धिः दृश्यते, अतोऽयम् अविरुद्धकार्योपलब्धिहेतुः कथ्यते।

टीकार्थ : इस प्राणी में बुद्धि है, क्योंकि बुद्धि के कार्य वचनादि पाये जाते हैं। यहाँ बुद्धि के अविरुद्ध कार्य वचनादिक की उपलब्धि है। इसलिए यह अविरुद्ध कार्योपलब्धि हेतु है।

विशेष : साध्य –बुद्धि है, हेतु–वचनादि, अतः यहाँ पर बुद्धि साध्य है

और उसका अविरोधी कार्य वचनादिक हेतु है वह अपने साध्य की सिद्धि करता है, यह अविरुद्ध कार्योपलब्धि का उदाहरण है।

अब अविरुद्ध कारणोपलब्धि रूप हेतु को कहते हैं –

अस्त्यत्रच्छाया छत्रात्॥ 63॥

सूत्रान्वय : अस्ति = है, अत्र = इसमें, छाया = छाया, छत्रात् = छत्र होने से।

सूत्रार्थ : यहाँ पर छाया है क्योंकि छत्र पाया जाता है।

संस्कृतार्थ : 'अस्त्यत्र छाया छत्रात्' अत्र छत्रनामककारणहेतुः छायानामकसाध्यं साध्नोति। अर्थादत्रच्छायाः अविरुद्धकारणस्य छत्रस्योपलब्धि र्विद्यते। अतोऽयं हेतुः अविरुद्धकारणोपलब्धिहेतुः कथ्यते।

टीकार्थ : यहाँ पर छाया है, छत्र होने से, इसमें छत्र नामक कारण हेतु छाया नामक साध्य को सिद्ध करता है। अर्थात् यहाँ छाया के अविरुद्धकारण छत्र की उपस्थिति है, इसलिए यह हेतु अविरुद्ध कारणोपलब्धि हेतु कहा जाता है।

अब अविरुद्धपूर्वचरोपलब्धिरूप हेतु को कहते हैं –

उदेष्यति शकटं कृत्तिकोदयात्॥ 64॥

सूत्रान्वय : उदेष्यति = उदय होगा, शकटं = रोहिणी का, कृतिका = कृतिका नक्षत्र का, उदयात् = उदय होने से।

सूत्रार्थ : (एक मुहूर्त के बाद) शकट (रोहिणी नक्षत्र) का उदय होगा, क्योंकि कृतिका का उदय हुआ है।

नोट : यहाँ मुहूर्त्तान्त पद का अध्याहार करना चाहिए।

संस्कृतार्थ : उदेष्यति शकटं कृतिकोदयाद् अत्र कृतिकोदयरूपं पूर्वचरहेतुः शकटोदयभावितारूपसाध्यं साध्नोति। अर्थादत्र शकटोदय भावितायाः अविरुद्धपूर्वचरस्य कृतिकोदयस्योपलब्धि र्विद्यते। अतोऽयं हेतुः अविरुद्ध पूर्वचरोपलब्धि हेतुः निगद्यते।

टीकार्थ : रोहिणी नक्षत्र का उदय होगा क्योंकि कृतिका का उदय हो

रहा है इसमें कृतिका का उदय रूप पूर्वचर हेतु उदय होने वाले शकट रूप साध्य को साधता है अर्थात् यहाँ रोहिणी के उदय भाविता रूप साध्य को कृतिका उदयरूप पूर्वचर हेतु साध रहा है इसलिए यह हेतु अविरुद्धपूर्वचरोपलब्धि हेतुः कहा जाता है।

विशेष : प्रतिदिन क्रम से एक-एक मुहूर्त के पश्चात् अश्विनी, भरणी, कृतिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य आदि नक्षत्रों का उदय होता है। जब जिसका उदय विवक्षित हो, तब उसके पूर्ववर्ती नक्षत्र को पूर्वचर और उत्तरवर्ती नक्षत्र को उत्तर चर जानना चाहिए।

प्रसंगवश - रोहिणी का उदय साध्य है। वह उसके पूर्वचर कृतिका के उदय रूप हेतु से सिद्ध किया जा रहा है, अतः यह अविरुद्ध पूर्वचरोपलब्धि हेतु का उदाहरण है।

अब अविरुद्ध उत्तर चरोपलब्धि हेतु को कहते हैं -

उद्गाद् भरणिः प्राक्तत एव ॥ 65 ॥

सूत्रान्वय : उद्गाद् = उदय होना, भरणि = भरणि का, प्राक्ततः = एक मुहूर्त के पहले, एव = ही।

सूत्रार्थ : भरणि का उदय एक मुहूर्त के पूर्व ही हो चुका है, क्योंकि कृतिका का उदय पाया जाता है।

नोट : यहाँ पर मुहूर्तात् प्राक् पद का उध्याहार किया गया है एवं ततः एव पद से कृतिकोदयात् एव अर्थ ग्रहण किया गया है।

संस्कृतार्थ : मुहूर्तात्प्राक्भरणेरुदयो व्यतीतः कृतिकोदयात्। अत्र कृतिकोदयनामकोत्तरचरहेतुः भरण्युदयभूततारूपसाध्यं साधयति। अर्थादत्र भरण्युदयभूततायाः अविरुद्धोत्तरचरस्य कृतिकोदयस्योपलब्धिं विद्यते अतोऽयं हेतुः अविरुद्धोत्तरचरोपलब्धि हेतुः निगद्यते।

टीकार्थ : एक मुहूर्त के पहले ही भरणि का उदय हो चुका है, क्योंकि कृतिका का उदय हो रहा है। यहाँ पर कृतिका उदय नाम का उत्तर चर हेतु पहले उदय हो चुके भरणि के उदय को साधता है अर्थात् यहाँ भरणि के उदय की भूतता के अविरुद्ध उत्तरचर कृतिका के उदय की उपलब्धि है इसलिए यह हेतु अविरुद्धोत्तरचरोपलब्धि हेतु कहलाता है।

अविरुद्ध सहचरोपलब्धि (सहचर हेतु) का उदाहरण –

अस्त्यत्र मातुलिंगे रूपं रसात्॥ 66॥

सूत्रान्वय : अस्ति = है, अत्र = इसमें, मातुलिंगे = नींबू में, रूपं = रूप, रसात् = रस होने से।

सूत्रार्थ : इस बिजौरे नींबू में रूप है, क्योंकि रस पाया जाता है।

संस्कृतार्थ : अस्त्यत्र मातुलिंगे रूपं रसात्। अत्र रसनामक सहचर हेतुः रूपनामकसाध्यं साधयति। अर्थादत्र रूपविरुद्धसहचरस्य रसस्योपलब्धि र्विद्यते। अतोऽयं हेतुः अविरुद्ध सहचरोपलब्धि हेतुः प्रोच्यते।

टीकार्थ : इस बिजौरे नींबू के रूप है, क्योंकि रस नामक सहचर हेतु रूप नामक साध्य को साधता है। अर्थात् यहाँ रूप का अविरुद्ध सहचर रस मौजूद है। इसलिए यह हेतु अविरुद्धसहचरोपलब्धि हेतु कहलाता है।

अब आचार्य विरुद्धोपलब्धि के भेद कहते हैं –

विरुद्धतदुपलब्धिः प्रतिषेधे तथा॥ 67॥

सूत्रान्वय : विरुद्धतदुपलब्धि : = विरुद्धतदुपलब्धि के भी, प्रतिषेधे = प्रतिषेध करने वाली, तथा = उसी प्रकार (छह भेद हैं)

सूत्रार्थ : प्रतिषेध सिद्ध करने वाली विरुद्धोपलब्धि के भी 6 भेद हैं।

संस्कृतार्थ : प्रतिषेधसाधिकाया विरुद्धोपलब्धेः षड् भेदा विद्यन्ते। विरुद्धव्याप्योपलब्धिः, विरुद्धकार्योपलब्धिः विरुद्धकारणोपलब्धि, विरुद्ध पूर्वचरोपलब्धिः, विरुद्धोत्तरचरोपलब्धिः विरुद्धसहचरोपलब्धिश्चेति।

टीकार्थ : प्रतिषेध को सिद्ध करने वाली विरुद्धोपलब्धि के भी 6 भेद हैं –1. विरुद्धव्याप्योपलब्धि, 2. विरुद्धकार्योपलब्धि, 3.विरुद्धकारणोपलब्धि, 4. विरुद्धपूर्वचरोपलब्धि, 5. विरुद्धोत्तरचरोपलब्धि, 6.विरुद्धसहचरोपलब्धि। ये सभी हेतु प्रतिषेध के साधक हैं।

अब साध्य से विरुद्धव्याप्योपलब्धि हेतु को कहते हैं –

नास्त्यत्र शीतस्पर्शः औष्ण्यात् ॥ 68 ॥

सूत्रान्वय : नास्ति = नहीं है, अत्र = इसमें, शीतस्पर्श = शीत का स्पर्श,औष्ण्यात् = उष्णता होने से।

सूत्रार्थ : यहाँ पर शीत स्पर्श नहीं है, क्योंकि उष्णता पाई जाती है।

संस्कृतार्थ : नास्त्यत्र शीतस्पर्शः औष्ण्यात्। अत्र प्रतिषेधरूपसाध्यात् शीतस्पर्शात् विरुद्धस्याग्नेः व्याप्यस्वरूप उष्णता वद्यते। यस्य व्याप्यं विद्यते तत्तदेव साधयिष्यति। इत्थमत्र औष्ण्यत्वहेतुः शीतस्पर्शसाध्याविरुद्धव्याप्यम् अग्निमेव साधयिष्यति। अतोऽयं हेतुर्विरुद्धव्याप्योपलब्धिहेतुः भवेत्।

टीकार्थ : यहाँ शीतस्पर्श नहीं है, उष्णता होने से। यहाँ पर प्रतिषेधरूप साध्य शीतस्पर्श से विरुद्ध अग्नि की व्याप्य स्वरूप उष्णता विद्यमान है। जिसका व्याप्य विद्यमान है, वह उसी को ही साधेगा अतएव यहाँ औष्ण्यत्व हेतु शीतस्पर्श साध्य के अविरुद्ध व्याप्योपलब्धि हेतु कहा जाएगा।

विशेष : यहाँ शीत स्पर्श प्रतिषेध्य है, उसकी विरोधी अग्नि है, उसकी व्याप्य उष्णता पाई जा रही है, अतः यह विरुद्ध व्याप्योपलब्धि हेतु का उदाहरण है।

अब अविरुद्धकार्योपलब्धि हेतु को कहते हैं –

नास्त्यत्र शीतस्पर्शःधूमात् ॥ 69 ॥

सूत्रान्वय : नास्ति = नहीं है, अत्र = इसमें, शीतस्पर्शः = शीत का स्पर्श, धूमात् = धूम होने से।

सूत्रार्थ : यहाँ पर शीतस्पर्श नहीं है, क्योंकि धूम है।

संस्कृतार्थ : नास्त्यत्र शीतस्पर्शो धूमात्। अत्र प्रतिषेधरूपसाध्यात् शीतस्पर्शात् विरुद्धस्याग्नेः कार्यस्वरूपो धूमः उपलभ्यते। अग्नेः कार्यं स्थित्त्वाग्निमेव साधयिष्यति नो शीतस्पर्शम्। अतोऽत्रायं धूमत्वहेतुर्विरुद्ध-कार्योपलब्धिहेतुर्भवेत्।

टीकार्थ : यहाँ पर शीतस्पर्श नहीं है धूम होने से। यहाँ पर प्रतिषेध

स्पर्शसाध्य शीतस्पर्श से विरुद्ध अग्नि का कार्यरूप धूम प्राप्त है, अग्नि का कार्य धूम रहकर अग्नि को ही जनावेगा, शीतस्पर्श को नहीं, इससे यहाँ यह धूमहेतु विरुद्ध कार्योपलब्धि हेतु होगा।

विशेष : यहाँ भी प्रतिषेध के योग्य साध्य जो शीत स्पर्श उसकी विरुद्ध जो अग्नि उसका कार्य धूम पाया जाता है, अतः यह विरुद्ध कार्योपलब्धि हेतु का उदाहरण है।

अविरुद्ध कारणोपलब्धि (सहचर हेतु) को कहते हैं -

नास्मिन् शरीरिणि सुखमस्ति हृदयशल्यात्॥ 70॥

सूत्रान्वय : न = नहीं, अस्मिन् = इस, शरीरिणि = प्राणी में, सुखम् = सुख अस्ति = है, हृदयशल्यात् = हृदय में शल्य होने से।

सूत्रार्थ : इस प्राणी में सुख नहीं है क्योंकि हृदय में शल्य पाई जाती है।

संस्कृतार्थ : नास्मिन् शरीरिणि सुखमस्ति हृदयशल्यात्। अत्र सुख विरोधिनो दुःखस्य कारणं हृदयशल्यरूप हेतुः विरुद्धकारणोपलब्धि हेतुर्जातः।

टीकार्थ : इस प्राणी में सुख नहीं है, क्योंकि हृदय में शल्य होने से क्योंकि यहाँ पर सुख की विरोधिनी दुःख की कारण हृदय शल्य (मानसिक पीड़ा) विद्यमान है। इसलिए यहाँ यह हृदय शल्य हेतु विरुद्ध कारणोपलब्धि हेतु है।

विशेष : सुख का विरोधी दुःख है, उसका कारण हृदय की शल्य पाये जाने से यह विरुद्धकारणोपलब्धि हेतु का उदाहरण है।

अब विरुद्धोपूर्वचरोपलब्धि हेतु को कहते हैं -

नोदेष्यति मुहूर्त्तान्ते शकटं रेवत्युदयात्॥ 71॥

सूत्रान्वय : न = नहीं, उदेष्यति = उदित होगा, मुहूर्तान्ते = एक मुहूर्त के पश्चात्, शकटं = रोहिणी, रेवती = रेवती का, उदयात् = उदय होने से।

सूत्रार्थ : एक मुहूर्त के पश्चात् रोहिणी उदय नहीं होगा क्योंकि अभी रेवती नक्षत्र का उदय हो रहा है।

संस्कृतार्थ : नोदेष्यति मुहूर्तान्ते शकटं रेवत्युदयात्। अत्र शकटोदयाद् विरुद्धस्याश्विनी नक्षत्र पूर्वचरस्य रेवती नक्षत्रस्योदयो विद्यते। स चाश्विनीनक्षत्र पूर्वचरो वर्तते, अतएवाश्विनी नक्षत्रभाविताामेव साधयिष्यति, शकटोदयञ्च निषेत्स्यति। अतोऽत्रायं रेवत्युदयत्वहेतुः विरुद्धपूर्वचरोपलब्धि हेतुर्जातः।

टीकार्थ : एक मुहूर्त के बाद रोहिणी का उदय नहीं होगा क्योंकि रोहिणी के उदय से विरुद्ध अश्विनी नक्षत्र के पूर्वचर (पहले उदय वाला) रेवती का उदय हो रहा है। रेवती का उदय अश्विनी के उदय का पूर्वचर है, इसलिए वह अश्विनी के उदय की भाविता को ही सिद्ध करेगा, साधेगा और रोहिणी के उदय का निषेध करेगा, इसलिए यहाँ यह हेतु विरुद्धपूर्वचरोपलब्धि हेतु हुआ।

विशेष : यहाँ रोहिणी के विरोधी अश्विनी का उदय है, उसका पूर्वचर रेवती नक्षत्र है। उसका उदय पाये जाने से यह विरुद्ध पूर्वचरोपलब्धि हेतु का उदाहरण है।

अब विरुद्धोत्तरचरोपलब्धिहेतु को कहते हैं –

नोद्गाद् भरणिः मुहूर्तात्परं पुष्योदयात्॥ 72॥

सूत्रान्वय : न = नहीं, उद्गात् = उदय, भरणिः = भरणि का, मुहूर्तात्परं = एक मुहूर्त पहले, पुष्योदयात् = पुष्य नक्षत्र का उदय होने से।

सूत्रार्थ : एक मुहूर्त पहले भरणी का उदय नहीं हुआ है, क्योंकि अभी पुष्य नक्षत्र का उदय पाया जा रहा है।

संस्कृतार्थ : नोद्गाद्भरणिः मुहूर्तात्पूर्वं पुष्योदयात। अत्र भरण्युदयात् विरुद्धस्य पुनर्वसूत्तरचरस्य पुष्यस्योदयो विद्यते। अर्थात् पुष्यनक्षत्रोदयः पुनर्वसुनक्षत्रोत्तरचरो वर्ततेऽतस्तस्यैवोदयं सूचयिष्यति यत् पुनर्वसूदयो भूतस्तथा च भूतभरण्युदयं निषेत्स्यति, अतोऽत्रायं पुष्योदयत्व हेतुः विरुद्धोत्तरचरोपलब्धि र्जातः।

टीकार्थ : एक मुहूर्त पहले भरणि का उदय नहीं हुआ हैं। पुष्य का उदय हो रहा है। यहाँ पर भरणि के उदय से विरुद्ध पुनर्वसु के उत्तर चर (पीछे उदय) पुष्य नक्षत्र का उदय हो रहा है। अर्थात् पुष्य नक्षत्र का उदय पुनर्वसु का उत्तरचर है, इसलिए उसी ही के उदय को सूचित करेगा जो पुनर्वसु का उदय हो

चुका है तथा हो चुके भरणि के उदय का निषेध करेगा। इसलिए यहाँ यह पुष्योदयत्व हेतु विरुद्धोत्तरचरोपलब्धि होगा।

विशेष : यहाँ पर भरणि के उदय का विरोधी पुनर्वसु नक्षत्र का उदय पाये जाने से यह विरुद्धोत्तरचरोपलब्धि हेतु का उदाहरण है।

अब विरुद्धोसहचरोपलब्धि हेतु को कहते हैं -

नास्त्यत्र भित्तौ परभागाभावोऽर्वाग्भागदर्शनात्॥ 73॥

सूत्रान्वय : नास्ति = नहीं है, अत्र = इसमें, भित्तौ = दीवाल में,परभाग =उस ओर के भाग, अभावः = अभाव, अर्वाग्भाग = इस ओर का भाग, दर्शनात् = दिखाई दे रहा है।

सूत्रार्थ : इस दीवाल में उस ओर के भाग का अभाव नहीं है क्योंकि इस ओर का भाग दिखाई दे रहा है।

संस्कृतार्थ : नास्त्यत्र भित्तौ परभागाभावोऽर्वाग्भागदर्शनात्। अत्र परभागाभावाद् विरुद्धः परभागसद्भावसहचरोऽर्वाग्भागो दृश्यते। अर्थात्पर - भागसद्भावसहचरो विद्यतेऽतः सः परभागसद्भावमेव साधयिष्यति। अतोऽत्रायं अर्वाग्भागदर्शनत्वहेतुः विरुद्धसहचरोपलब्धिहेतुः जातः।

टीकार्थ : इस दीवाल में उस ओर के भाग का अभाव नहीं इस ओर का भाग दिखने से। यहाँ पर उस ओर के भाग के अभाव से विरुद्ध उस ओर के भाग का सद्भाव का साथी इस तरफ का भाग दिखाई दे रहा है। अर्थात् उस तरफ के भाग के सद्भाव का सहचर विद्यमान है। इसलिए वह उसके सद्भाव को ही साधेगा। इसलिए विरुद्धसहचर उपलब्धि हेतु हुआ।

विशेष : परभाग के अभाव का विरोधी उसका सद्भाव है, उसका सहचारी इस ओर का भाग पाया जाता है।

अब अविरुद्धानुपलब्धि के भेद को कहते हैं -

अविरुद्धानुपलब्धिः प्रतिषेधे सप्तधा स्वभाव व्यापक कार्य कारण पूर्वोत्तर सहचरानुपलम्भभेदात्॥ 77॥

सूत्रान्वय : अविरुद्धानुपलब्धिः = अविरुद्धानुपलब्धि, प्रतिषेधे =

प्रतिषेध होने पर, सप्तधा = सात प्रकार, स्वभाव व्यापककार्यकारण पूर्वोत्तर सहचर = व्यापक, कार्य,कारण पूर्वचर, उत्तरचर, सहचर, अनुपलम्भ = अभाव के, भेदात् = भेद से।

संस्कृतार्थ : अविरुद्धानुपलब्धिः प्रतिषेधसाधिका जायते। तस्याः सप्त भेदा विद्यन्ते। अविरुद्धस्वभावानुपलब्धिः अविरुद्धव्यापकानुपलब्धिः अविरुद्धकार्यानुपलब्धिः अविरुद्धकारणानुपलब्धिः, अविरुद्धपूर्वचरानुपलब्धिः अविरुद्धोत्तरचरानुपलब्धिः, अविरुद्धसहचरानुपलब्धिश्चेति।

टीकार्थ : प्रतिषेध अर्थात् अभाव को सिद्ध करने वाली अविरुद्धानुलब्धि के 7 भेद हैं - 1. अविरुद्धस्वभावानुपलब्धि, 2. अविरुद्धव्यापकानुपलब्धि, 3.अविरुद्धकार्यानुपलब्धि, 4. अविरुद्धकारणानुपलब्धि, 5. अविरुद्ध पूर्वचरानुपलब्धि, 6. अविरुद्धोत्तरचरानुपलब्धि, 7. अविरुद्धसहचरानुपलब्धि।

विशेष : सूत्र पठित स्वभाव, व्यापक आदि पदों का पहले द्वन्द्वसमास करना है, पहले उसका अनुपलम्भ पद के साथ षष्ठी तत्पुरुष समास करना चाहिए।

अविरुद्धस्वभावानुपलब्धि का उदाहरण

नास्त्यत्र भूतले घटोऽनुपलब्धेः॥ 75॥

सूत्रान्वय : नास्ति = नहीं है, अत्र = इसमें, भूतले = पृथ्वीतल पर, घट = घड़ा, अनुपलब्धेः = उपलब्धि नहीं होने से।

सूत्रार्थ : इस भूतल पर घट नहीं है क्योंकि उपलब्धि योग्य स्वभाव के होने पर वह भी नहीं पाया जा रहा है।

संस्कृतार्थ : नास्त्यत्र भूतले घटोऽनुपलब्धेः। अत्र घटप्राप्ति रूपस्वभावस्य भूतलेऽभावो विद्यतेऽतः स घटाभावं साधयति। अर्थात् प्रतिषेध योग्यघटस्याविरुद्धस्वभावस्यानुपलम्भो वर्तते। अतोऽयमनुपलब्धित्वहेतुः अविरुद्धस्वभावानुपलब्धि हेतुः जातः।

टीकार्थ : इस भूतल पर घड़ा नहीं है, क्योंकि उपलब्ध नहीं है। यहाँ पर घट के प्राप्त होने रूप स्वभाव का भूतल में अभाव है, इसलिए वह घड़े के अभाव को सिद्ध करता है। अर्थात् प्रतिषेध योग्य घट के अविरुद्धस्वभाव का

(अभाव) अनुपलम्भ है। इसलिए यह हेतु अविरुद्ध स्वाभावानुपलब्धि हुआ।

विशेष : यहाँ पर पिशाच और परमाणु आदिक के व्यभिचार के परिहारार्थ उपलब्धि लक्षण प्राप्ति के योग्य होने पर भी इतना विशेषण ऊपर से लगाना है। यदि कोई ऐसा कहे कि यहाँ पर भूतप्रेतादि नहीं हैं अथवा परमाणु नहीं हैं, क्योंकि उनकी अनुपलब्धि है। यह व्यभिचारी हेतु है। संभव है कि वे भूत-पिशाचादि या परमाणु आदि यहाँ पर हैं और उनका अदृश्य या सूक्ष्म स्वभाव होने से हमें उनकी उपलब्धि न हो रही हो अतः इस प्रकार के दोष को दूर करने के लिए आचार्य ने उक्त विशेषण दिया है अतः घट का स्वभाव उपलब्धि के योग्य है। फिर भी वह घट यहाँ उपलब्ध नहीं हो रहा है। अतः यह अविरुद्धस्वभावानुपलब्धि रूप हेतु का उदाहरण है।

अविरुद्धव्यापकानुपलब्धि हेतु को कहते हैं -

नास्त्यत्र शिंशपा वृक्षानुपलब्धेः ॥ 76 ॥

सूत्रान्वय : नास्ति = नहीं है, अत्र = यहाँ पर, शिंशपा = शीशम, वृक्ष = वृक्ष, अनुपलब्धेः = प्राप्ति नहीं होने से।

संस्कृतार्थ : नास्त्यत्र शिंशपा वृक्षानुपलब्धेः। व्यापकवृक्षं विना व्याप्य स्वरूपः शिंशपाः भवितुं नार्हति। अर्थादत्र व्यापकवृक्षानुपलब्धिः व्याप्यशिंशपा प्रतिषेधं साधयति। अतोऽयं वृक्षानुपलब्धिहेतुः अविरुद्धव्यापकानुपलब्धि हेतुः सम्भूतः।

टीकार्थ : यहाँ पर शीशम नहीं है, वृक्ष की अनुपलब्धि है। व्यापक वृक्ष के बिना व्याप्य स्वरूप शिंशपा हो नहीं सकता, अर्थात् यहाँ व्यापक वृक्ष की अनुपलब्धि व्याप्य शीशम के प्रतिषेध को सिद्ध करती है। इसलिए यह हेतु अविरुद्धव्यापकानुपलब्धि हेतु प्राप्त हुआ।

अब अविरुद्ध कार्यानुपलब्धि हेतु को कहते हैं -

नास्त्यत्राप्रतिबद्ध-सामर्थ्योऽग्नि र्धूमानुपलब्धेः ॥ 77 ॥

सूत्रान्वय : नास्ति = नहीं है, अत्र = यहाँ, अप्रतिबद्ध = बिना रुकी, सामर्थ्य : = सामर्थ्य वाली, अग्निः = आग, धूम = धुआँ, अनुपलब्धेः = प्राप्ति

न होने से।

सूत्रार्थ : यहाँ पर अप्रतिबद्ध सामर्थ्य वाली अग्नि नहीं है, क्योंकि धूम नहीं पाया जाता है।

संस्कृतार्थ : नास्त्यत्राप्रतिबद्धसामर्थ्योऽग्नि र्धूमानुपलब्धेः। अत्र सामर्थ्यवतोऽग्नेरविरुद्धकार्यस्य धूमस्याभावो विद्यते, अतश्च प्रतीयते यदत्राग्निर्नास्ति, अस्ति चेद् भस्मादिभिराच्छन्नो विद्यते। एवमत्रायं धूमानुपलब्धित्वहेतुः अविरुद्धकार्यानुपलब्धिहेतुः विज्ञेयः।

टीकार्थ : यहाँ पर बिना सामर्थ्य रुकी अग्नि नहीं है, क्योंकि धुआँ नहीं पाया जाता है। यहाँ पर सामर्थ्यवान अग्नि के अविरुद्ध कार्य धूम का अभाव है, इसलिए ज्ञात होता है कि यहाँ अग्नि नहीं है अगर है भी तो भस्म वगैरह से ढकी हुई है। इससे यहाँ धूम अनुपलब्धि हेतु अविरुद्धकार्यानुपलब्धि हेतु हुआ।

विशेष : जिसकी सामर्थ्य अप्रतिबद्ध है, ऐसा कारण अपने कार्य के प्रति अनुपहत (अप्रतिहत) शक्ति वाला कहा जाता है। यहाँ पर अप्रतिहत शक्तिवाली अग्नि का अभाव आग के विरोधी कार्य धूम के नहीं पाये जाने से सिद्ध है। अतः यह अविरुद्ध कार्यानुपलब्धि हेतु का उदाहरण है।

अविरुद्ध कारणानुपलब्धि हेतु को कहते हैं -

नास्त्यत्र धूमोऽनग्नेः ॥ 78 ॥

सूत्रान्वय : नास्ति = नहीं है, अत्र = यहाँ, धूम = धुआँ, अनग्नेः = अग्नि के नहीं होने से।

सूत्रार्थ : यहाँ पर धूम नहीं है, क्योंकि धूम के अविरोधी कारण अग्नि का अभाव है।

संस्कृतार्थ : नास्त्यत्र धूमोऽनग्नेः। अत्र धूमस्याविरुद्धकारण-स्याग्नेरभावोधूमाभावं साधयति। अतोऽयम् अनग्नित्वहेतुः अविरुद्धकारणानु-पलब्धिहेतुः जातः।

टीकार्थ : यहाँ धूम नहीं है, क्योंकि अग्नि नहीं है। यहाँ पर धूम के

अविरुद्ध कारण अग्नि का अभाव धूम के अभाव को सिद्ध करता है। इसलिए यह हेतु अविरुद्धकारणानुपलब्धि है।

अब अविरुद्धपूर्वचरानुपलब्धि हेतु को कहते हैं -

न भविष्यति मुहूर्तान्ते शकटं कृतिकोदयानुपलब्धेः ॥ 79 ॥

सूत्रान्वय : न = नहीं, भविष्यति = होगा, मुहूर्तान्ते = एक मुहूर्त के बाद, शकटं = रोहिणी नक्षत्र, कृतिका = कृतिका नक्षत्र, उदय = उदय की, अनुपलब्धेः = उपलब्ध नहीं होने से।

सूत्रार्थ : एक मुहूर्त के पश्चात् रोहिणी का उदय नहीं होगा, क्योंकि कृतिका के उदय की अनुपलब्धि है।

संस्कृतार्थ : न भविष्यति मुहूर्तान्ते शकटं, कृतिकोदयानुपलब्धेः। अत्र शकटोदयादविरुद्धस्य पूर्वचरस्य कृतिकोदयस्याभावो मुहूर्तान्ते शकटोदयाभावं साधयति। अतोऽयं कृतिकोदयानुपलब्धित्वहेतुः अविरुद्धपूर्वचरानुपलब्धिहेतुः जातः।

टीकार्थ : एक मुहूर्त के बाद रोहिणी का उदय नहीं होगा, क्योंकि कृतिका का उदय नहीं हुआ है। यहाँ पर रोहिणी के उदय के अविरुद्ध पूर्वचर कृतिका के उदय का अभाव एक मुहूर्त बाद रोहिणी के उदय के अभाव को सिद्ध करता है। इसलिए यह हेतु अविरुद्धपूर्वचरानुपलब्धि हेतु हुआ।

अब अविरुद्ध उत्तरचर अनुपलब्धि हेतु का उदाहरण कहते हैं -

नोद्गाद् भरणिः मुहूर्तात्प्राक् तत एव ॥ 80 ॥

सूत्रान्वय : नोद्गात् = नहीं हो चुका उदय, भरणिः = भरणि का, मुहूर्तात् = एक मुहूर्त पहले, ततः = उस कारण से, एव = ही।

सूत्रार्थ : एक मुहूर्त पहले भरणि का उदय नहीं हुआ है क्योंकि उत्तरचर कृतिका का उदय नहीं पाया जाता।

संस्कृतार्थ : नोद्गात् भरणिः मुहूर्तात्प्राक् तत एव। अत्र भरण्युदयात् अविरुद्धत्तरोचरस्य कृतिका उदयस्य अभावो भरण्युदयभूतताऽभावं साधयति। अतोऽयं हेतुः अविरुद्धोत्तरचरोपलब्धिहेतुः जातः।

टीकार्थ : एक मुहूर्त पहले भरणी का उदय नहीं हुआ है क्योंकि अभी कृतिका का उदय नहीं है। यहाँ पर भरणि के उदय के अविरुद्ध उत्तर चर कृतिका के उदय का अभाव, भरणि के उदय की भूतता के अभाव को सिद्ध करता है, इसलिए यह हेतु अविरुद्धोत्तरचरोपलब्धि हेतु है।

विशेष : यहाँ पर सूत्र पठित ततः एव पद से कृतिका के उदय की अनुपलब्धि का अर्थ ग्रहण किया है।

अब अविरुद्धसहचरोपलब्धि को कहते हैं -

नास्त्यत्र समतुलायामुन्नामो नामानुपलब्धेः ॥ 81 ॥

सूत्रान्वय : नास्ति = नहीं है, अत्र = इसमें, समतुलायाम् = तराजू में, उन्नाम = ऊँचाई, नाम = नीचापन, अनुपलब्धेः = प्राप्ति नहीं होने से।

सूत्रार्थ : इस तराजू में एक ओर ऊँचापना नहीं है, क्योंकि उन्नाम का अविरोधि सहचर नहीं पाया जाता है।

संस्कृतार्थ : नास्त्यत्र समतुलायामुन्नामो नामानुपलब्धेः। अत्र उन्नामाद् अविरुद्धसहचरस्य नामस्याभावः उन्नामस्याभावं साधयति। अतोऽयं नामानुपलब्धित्वहेतुः अविरुद्धसहचरानुपलब्धिहेतु र्जातः।

टीकार्थ : इस तराजू में ऊँचापना नहीं है, क्योंकि नीचेपन का अभाव है। यहाँ पर ऊँचेपने का अविरुद्ध सहचर नीचेपन का अभाव ऊँचेपने के अभाव को सिद्ध करता है, इससे यह हेतु अविरुद्ध सहचरानुपलब्धि हेतु हुआ।

अब विरुद्ध कार्यानुपलब्धि आदि हेतु विधि में सम्भव है और उसके भेद तीन ही हैं यह प्रदर्शित करने के लिए कहते हैं -

विरुद्धानुपलब्धि र्विधौ त्रेधा विरुद्ध कार्यकारणस्वभावानुपलब्धिभेदात् ॥ 82 ॥

सूत्रान्वय : विरुद्धानुपलब्धिः = विरुद्धानुपलब्धि, विधौ = विधि से, त्रेधा = तीन प्रकार के, विरुद्धकार्यकारणस्वभावानुपलब्धि, भेदात् = भेद होने से।

सूत्रार्थ : विधि के अस्तित्व को सिद्ध करने में विरुद्धानुपलब्धि के

तीन भेद हैं-1. विरुद्धकार्यानुपलब्धि, 2. विरुद्धकारणानुपलब्धि, 3 विरुद्धस्वभावानुपलब्धि।

256. विरुद्धकार्यानुपलब्धि किसे कहते हैं ?

साध्य से विरुद्ध पदार्थ के कार्य का नहीं पाया जाना विरुद्धकार्यानुपलब्धि हेतु है।

257. विरुद्धकारणानुपलब्धि हेतु किसे कहते हैं ?

साध्य से विरुद्ध पदार्थ के कारण का नहीं पाया जाना विरुद्ध-कारणानुपलब्धि है।

258. विरुद्धस्वभावानुपलब्धि किसे कहते हैं ?

साध्य से विरुद्ध पदार्थ के स्वभाव का नहीं पाया जाना विरुद्ध-स्वभावानुपलब्धि हेतु है।

259. इन्हें विधि साधक क्यों कहा गया है ?

ये तीनों ही हेतु अपने साध्य के सद्भाव को सिद्ध करते हैं, इसलिए विधि साधक कहा गया है।

अब विरुद्धकार्यानुपलब्धि हेतु के उदाहरण को कहते हैं -

यथास्मिन्प्राणिनि व्याधिविशेषोऽस्ति निरामयचेष्टानुपलब्धेः ॥83॥

सूत्रान्वय : यथा = जैसे, अस्मिन् प्राणिनि = इस प्राणी में, व्याधि विशेषः = रोग विशेष, अस्ति = है, निरामय = रोग रहित, चेष्टा = प्रवृत्ति, अनुपलब्धेः = प्राप्त न होने से।

सूत्रार्थ : इस प्राणी में व्याधि-विशेष है क्योंकि निरामय (रोग रहित) चेष्टा नहीं पाई जाती है।

संस्कृतार्थ : अस्मिन् प्राणिनि व्याधिविशेषोऽस्ति निरामयचेष्टानुपलब्धेः। अत्र व्याधि विशेषसद्भाव साध्याद् विरोधिनो व्याधिविशेषाभावस्य कार्यस्य नीरोगचेष्टायाः अनुपलब्धिः विद्यते। अतोऽयं हेतुः विरुद्धकार्यानुपलब्धि हेतु जार्तः।

टीकार्थ : इस प्राणी में व्याधि विशेष है, निरामय चेष्टा नहीं होने से। यहाँ पर व्याधि विशेष के सद्भाव साध्य से विरोधि व्याधि विशेष के अभाव के कार्य नीरोग चेष्टा की अनुपलब्धि है। इसलिए यह हेतु विरुद्ध कार्यानुपलब्धि हेतु हुआ।

अब विरुद्धकारणानुपलब्धि हेतु को कहते हैं -

अस्त्यत्र देहिनि दुःखमिष्टसंयोगाभावात्॥ 84॥

सूत्रान्वय : अस्ति = है, देहिनि = प्राणि में, अत्र = इसमें, दुःखम् = दुःख, इष्टसंयोग = इष्ट का योग, अभावात् = अभाव होने से।

सूत्रार्थ : इस प्राणी में दुःख है क्योंकि इष्ट संयोग का अभाव है।

संस्कृतार्थ : अस्त्यत्र देहिनि दुःखमिष्टसंयोगाभावात्। अत्र दुःख विरोधिनः सुखकारणस्येष्टसंयोगस्याभावो दुःखसद्भावमेव साधयति। अतोऽत्रायम् इष्ट संयोगाभावित्वहेतुः विरुद्धकारणानुपलब्धिहेतुरवगन्तव्यः।

टीकार्थ : इस प्राणी में दुःख है, क्योंकि इष्ट संयोग का अभाव है। यहाँ पर दुःख के विरोधी सुख के कारण इष्ट संयोग का अभाव दुःख के सद्भाव को सिद्ध करता है, इसलिए यहाँ पर हेतु इष्ट संयोग अभावपना विरुद्धकारणानुपलब्धि हेतु जानना चाहिए।

विशेष : दुःख का विरोधी सुख है, उसका कारण इष्टसंयोग है उसकी विवक्षित प्राणी में अनुपलब्धि है, अतः यह विरुद्धकारणानुपलब्धि हेतु हुआ।

अब विरुद्धस्वभावानुपलब्धि रूप हेतु का उदाहरण कहते हैं -

अनेकान्तात्मकं वस्त्वेकान्तस्वरूपानुपलब्धेः॥ 85॥

सूत्रान्वय : अनेकान्तात्मकं = अनेक धर्म स्वरूप वाली, वस्तु = वस्तु का, एकान्त = एक धर्म, स्वरूप = स्वभाव, अनुपलब्धेः = प्राप्ति न होने से।

सूत्रार्थ : वस्तु अनेकान्तात्मक है अर्थात् अनेक धर्म वाली है, क्योंकि वस्तु का एकान्त रूप पाया नहीं जाता।

संस्कृतार्थ : अनेकान्तात्मकं वस्त्वेकान्तस्वरूपानुपलब्धेः।

अत्रानेकान्तात्मकताया विरुद्धः एकान्तात्मकताया अभावो वस्तुनोऽनेकान्तात्मकतामेव साधयति, अतोऽत्रायं हेतुः विरुद्धस्वभावानुपलब्धि हेतुः प्रत्येतव्यः।

टीकार्थ : अनेकान्तात्मक साध्य का विरोधी नित्यत्व आदि एकान्त है, न कि एकान्त पदार्थ को विषय करने वाला विज्ञान, क्योंकि मिथ्या ज्ञान के रूप से उसकी उपलब्धि संभव है। नित्यादि एकान्तरूप पदार्थ का स्वरूप अवास्तविक है अतः उसकी अनुपलब्धि है, इससे यह विरुद्धस्वभावानुपलब्धि हेतु का उदाहरण है।

शंका : यहाँ पर कोई कहता है कि व्यापक विरुद्धकार्यादि हेतु और परम्परा से अविरोधि हेतुओं का पाया जाना बहुलता से संभव है। आचार्यों ने उनके उदाहरण क्यों नहीं दिए ?

सूत्रकार उनकी शंका का समाधान करते हुए कहते हैं –

परम्परासंभवत्साधनमत्रैवान्तर्भावनीयम्॥ 86॥

सूत्रान्वय : परम्परया = परम्परा से, संभवत् = संभव है, साधनम् = साधन को, अत्रैव = इनमें ही, अन्तर्भावनीयम् = अन्तर्भाव करना चाहिए।

संस्कृतार्थ : गुरुपरम्परयासम्भवन्ति भिन्नानि साधनानि पूर्वोक्त साधनेष्वेवान्तर्भावनीयानि।

टीकार्थ : गुरु परम्परा से और भी जो साधन (हेतु) सम्भव हो सकते हैं उनका पूर्वोक्त साधनों में ही अन्तर्भाव करना चाहिए।

260. सूत्र में अत्रैव से क्या ग्रहण करना है ?

अत्रैव का तात्पर्य कार्यादि हेतुओं में।

उसी साधन के उपलक्षण के लिए दो उदाहरण दिखलाते हैं –

अभूदत्र चक्रे शिवकः स्थासात्॥ 87॥

सूत्रान्वय : अभूत् = हो गया है, अत्र चक्रे = इस चाक पर, शिवकः = शिवक, स्थासात् = स्थास होने से।

सूत्रार्थ : इस चाक पर शिवक हो गया है, क्योंकि स्थास पाया जा रहा है।

संस्कृतार्थ : अभूदत्र चक्रे शिवकः स्थासात्। अत्र स्थासरूपहेतुः परंपरया शिवककार्यं विद्यते, साक्षान्नो, साक्षात्कार्यं तु छत्रकं विद्यते। एवमत्रायं स्थासादिति हेतुः कार्यकार्यहेतु र्विद्यते।

टीकार्थ : इस चाक पर शिवक हो गया है, क्योंकि स्थास है। यहाँ पर स्थासरूप हेतु परम्परा से शिवक का कार्य है, साक्षात् नहीं, साक्षात् कार्य तो छत्रक है इस प्रकार यह हेतु यहाँ पर (स्थासात्) कार्य-कार्य हेतु हुआ।

विशेष : जब कुंभकार घड़ा बनाता है तब घड़ा बनाने से पहले शिवक, छत्रक, स्थास, कोश, कुशूल आदि अनेक पर्यायें होती हैं, तब अंत में घड़ा बनता है। यहाँ चाक पर रखी हुई पिण्डाकारपर्याय का नाम शिवक है, उससे पीछे वाली पर्याय का नाम छत्रक है और उसके पश्चात् होने वाली पर्याय का नाम स्थास है इसी व्यवस्था के अनुसार यह उदाहरण दिया गया है, शिवकरूप पर्याय हो चुकी है क्योंकि अभी स्थासरूप पर्याय है। अतः ज्ञात हुआ कि शिवक का कार्य छत्रक है और उसका कार्य स्थास है, अतः स्थास शिवक के कार्य का परम्परा से कार्य है, साक्षात् नहीं, क्योंकि साक्षात् कार्य तो छत्रक है।

अब उक्त हेतु की क्या संज्ञा है और किस हेतु में उसका अन्तर्भाव होता है, ऐसी आशंका होने पर आचार्य उत्तर देते हैं -

कार्यकार्यमविरुद्धकार्योपलब्धौ ॥ 88 ॥

सूत्रान्वय : कार्यकार्यम् = कार्य के कार्यरूप, अविरुद्धकार्योपलब्धौ = अविरुद्धकार्योपलब्धि में।

सूत्रार्थ : कार्य के कार्यरूप उक्त हेतु का अविरुद्धकार्योपलब्धि में अन्तर्भाव होता है।

नोट : यहाँ सूत्र में 'अन्तर्भावनीयम्' पद का अध्याहार करना चाहिए।

संस्कृतार्थ : कार्यकार्य (परम्पराकार्य) रूप हेतुरविरुद्ध कार्योपलब्धि -हेतावन्तर्भवति।

टीकार्थ : कार्यकार्य रूप हेतु का अविरुद्धकार्योपलब्धि में ही अन्तर्भाव हो जाता है।

विशेष : उक्त उदाहरण में शिवक का कार्य छत्रक है और उसका कार्य स्थास है, इस प्रकार यह स्थास शिवक के कार्य का अविरोधी कार्य होने से परम्परा से अविरुद्धकार्योपलब्धि में अन्तर्भूत होता है।

अब आचार्य दृष्टान्त द्वारा परम्परा हेतु का दूसरा दृष्टान्त देते हैं –

नास्त्यत्र गुहायां मृगक्रीडनं, मृगारिसंशब्दनात्
कारणविरुद्धकार्यं विरुद्धकार्योपलब्धौ यथा ॥ 89 ॥

सूत्रान्वय : नास्ति = नहीं है, अत्र = इसमें, गुहायां = गुफा में, मृगक्रीडनम् = मृगक्रीड़ा, मृगारि = सिंह का, संशब्दनात् = गर्जना होने से, कारणविरुद्धकार्यं = कारणविरुद्धकार्यरूपहेतु को, विरुद्धकार्योपलब्धौ = विरुद्धकार्योपलब्ध में, यथा = जैसे।

सूत्रार्थ : इस गुफा में हरिण की क्रीड़ा नहीं है, क्योंकि सिंह की गर्जना हो रही है, यह कारणविरुद्धकार्यरूप हेतु है, इसका विरुद्धकार्योपलब्धि हेतु में अन्तर्भाव होता है।

संस्कृतार्थ : नास्त्यत्र गुहायां मृगक्रीड़नं मृगारिसंशब्दनात्। अत्र कारण विरुद्धकार्य विद्यते। अर्थात् मृगक्रीड़ाकारणमृगस्य विरोधिनः सिंहस्य शब्दरूपं कार्यम् उपलभ्यते, अतोऽत्रायं हेतुः च यथा कारण विरुद्ध कार्योपलब्धि विरुद्धकार्योपलब्धिहेतु र्विज्ञेयः। तथार्विरुद्धकार्योपलब्धावन्तर्भवति तथैव कार्यकार्यहेतुरपि अविरुद्धकार्योपलब्धावन्तर्भवति इति भावः।

टीकार्थ : इस गुफा में हरिण की क्रीड़ा नहीं है, सिंह की गर्जना होने से, यहाँ पर कारण विरुद्ध कार्य विद्यमान है अर्थात् हरिणक्रीड़ा के कारण हरिण के विरोधी सिंह का शब्द रूप कार्य पाया जाता है। इसलिए इस हेतु का विरुद्धकार्योपलब्धि हेतु में अन्तर्भाव करना चाहिए और जैसे इस कारण विरुद्धकार्योपलब्धि का विरुद्धकार्योपलब्धि हेतु में अन्तर्भाव होता है, उसी प्रकार कार्य-कार्य हेतु का अविरुद्ध कार्योपलब्धि हेतु में अन्तर्भाव होता है।

अब यहाँ पर कोई कहता है कि बाल व्युत्पत्ति के लिए अनुमान के पाँचों अवयवों का प्रयोग किया जा सकता है, ऐसा आपने कहा, परन्तु व्युत्पन्नपुरुषों के प्रति प्रयोग का क्या नियम है – इसका समाधान देते हैं –

व्युत्पन्नप्रयोगस्तु तथोपपत्त्याऽन्यथानुपपत्त्यैव वा ॥ 90 ॥

सूत्रान्वय : व्युत्पन्नप्रयोगः = विद्वान् प्रयोग, तु = परन्तु, तथोपपत्ति = तथोपपत्ति, वा = अथवा, अन्यथानुपपत्ति = अन्यथानुपपत्ति, एव = ही।

सूत्रार्थ : व्युत्पन्नपुरुषों के लिए तथोपत्ति या अन्यथानुपपत्ति नियम से ही प्रयोग करना चाहिए।

संस्कृतार्थ : व्युत्पन्नप्रयोगस्तु तथोपपत्त्या,अन्यथानुपपत्त्यैव वा विधेयः।

टीकार्थ : विद्वान् पुरुषों के लिए तथोपपत्ति के द्वारा अथवा अन्यथानुपपत्ति के द्वारा प्रयोग करना चाहिए।

नोट : सूत्र में क्रियते पद शेष है एवं व्युत्पन्नस्य प्रयोग-व्युत्पन्न का प्रयोग एवं व्युत्पन्नाय - व्युत्पन्न के लिए इस प्रकार षष्ठी तत्पुरुष एवं चतुर्थी तत्पुरुष समास से विग्रह करना चाहिए।

261. तथोत्पत्ति किसे कहते हैं ?

साध्य के सद्भाव में साधन का सद्भाव होना।

262. अन्यथानुपपत्ति किसे कहते हैं ?

साध्य के अभाव में साधन का न होना।

अब व्युत्पन्न प्रयोग की उदाहरण द्वारा पुष्टि -

अग्निमानयं देशस्तथैव धूमवत्त्वोपपत्ते धूमवत्त्वान्यथानुपपत्तेर्वा ॥ 91 ॥

सूत्रान्वय : अग्निमानं = अग्निवाला, अयम् = यह, देशः = देश, तथा = उस प्रकार, एव = ही, धूमवत्त्व = धूमवान, उपपत्तेः = प्राप्त होने पर, धूमवत्व = धूम वाला होकर, अन्यथानुपपत्तेः = अन्यथानुपपत्तिके, वा = अथवा।

सूत्रार्थ : यह प्रदेश अग्नि वाला है क्योंकि अग्निवाला होने पर ही धूमवाला हो सकता है। अथवा अग्नि के अभाव में धूमवाला हो नहीं सकता।

संस्कृतार्थ : अग्निमानयं देशः, अग्निमत्त्वे सत्येव धूमवत्वोपपत्तेः अग्निमत्त्वाभावे धूमवत्त्वानुपपत्तेश्च। व्युत्पन्नायैवमेवप्रयोगो विधेयः। दृष्टान्तेनानेन

दृढ़ीकृतं यद्व्युत्पन्नायोदाहरणादीनां प्रयोगस्यावश्यकता नो विद्यते।

टीकार्थ : यह देश अग्नि वाला है, अग्निमान होने पर ही धूमवान की प्राप्ति हो सकती है, अथवा अग्नि वाला के अभाव में धूम वाला हो ही नहीं सकता व्युत्पन्न के लिए इस प्रकार प्रयोग करना चाहिए। इस दृष्टान्त में यह दृढ़ किया गया है कि विद्वानों के लिए उदाहरण आदि के प्रयोग की आवश्यकता नहीं है।

विशेष : जो न्याय शास्त्र में प्रवीण हैं, उनके लिए अनुमान का प्रयोग प्रतिज्ञा के साथ तथोपपत्ति या अन्यथानुपपत्ति रूप हेतु से ही करना चाहिए क्योंकि उनके लिए उदाहरणादिक शेष अवयवों के प्रयोग की आवश्यकता नहीं है।

कोई कहता है कि साध्य साधन के अतिरिक्त दृष्टान्तादि के प्रयोग की व्याप्ति के ज्ञान कराने में उपयोगी है, फिर व्युत्पन्न पुरुषों की अपेक्षा से उनका प्रयोग क्यों नहीं ? इसका समाधान देते हैं -

हेतुप्रयोगो हि यथा व्याप्तिग्रहणं विधीयते सा च तावन्मात्रेण व्युत्पन्नैरवधार्यते॥ 92॥

सूत्रान्वय : हेतुप्रयोगः = हेतु का प्रयोग, यथा = जैसे, व्याप्तिग्रहणं = व्याप्ति का ग्रहण, विधीयते = किया जाये, सा = उस प्रकार से, तावन्मात्रेण = उतने मात्र से, व्युत्पन्नैः = विद्वानों के द्वारा, अवधार्यते = निश्चय कर लिया जाता है, हि = क्योंकि।

सूत्रार्थ : जैसे हेतु का प्रयोग व्याप्ति को ग्रहण करता है, उतने मात्र से बुद्धिमानों के द्वारा धारण किया जाता है।

संस्कृतार्थ : उदाहरणादिकं विना एव तथोपपत्तिमतोऽन्यथानुपपत्तिमतो वा हेतोः प्रयोगेणैव व्युत्पन्ना व्याप्तिं ग्रह्णन्ति, अतस्तदपेक्षयोदाहरणादि प्रयोगस्यावश्यकता नो विद्यते।

टीकार्थ : उदाहरण आदि के बिना ही तथोपपत्तिमान का और अन्यथानुपत्ति का हेतु के प्रयोग से ही बुद्धिमान लोग व्याप्ति का निश्चय कर

लेते हैं, इसलिए विद्वानों की अपेक्षा उदाहरणादिक के प्रयोग की आवश्यकता नहीं है।

विशेष : सूत्र पठित 'हि' शब्द यस्मात् इस अर्थ में है। यतः जैसे व्याप्ति का ग्रहण हो जाए उस प्रकार से अर्थात् तथोपपत्ति और अन्यथानुपपत्ति के द्वारा अन्वयव्याप्ति और व्यतिरेक व्याप्ति के ग्रहण का उल्लंघन न करके ही हेतु का प्रयोग किया जाता है, अतः उतने मात्र से अर्थात् दृष्टान्तादिक के बिना ही व्युत्पन्न पुरुष व्याप्ति का अवधारण कर लेते हैं।

दृष्टान्तादिक का प्रयोग साध्य की सिद्धि के लिए फलवान नहीं है, आचार्य भगवन् इसको बतलाने के लिए सूत्र कहते हैं –

तावता च साध्यसिद्धिः ॥ 93 ॥

सूत्रान्वय : तावता = उतने मात्र से, च = ही, साध्यः = साध्य की, सिद्धिः = सिद्धि होती है।

सूत्रार्थ : उतने मात्र से ही साध्य की सिद्धि हो जाती है।

नोट : इस सूत्र में च शब्द एवकार अर्थ में है।

संस्कृतार्थ : तस्य साध्याविनाभाविनो हेतोः प्रयोगादेव साध्यसिद्धिः जायते। अतः साध्यसिद्धौ दृष्टान्तादयो नोपयुक्ताः।

टीकार्थ : उस साध्य अविनाभावि हेतु के प्रयोग से ही साध्य की सिद्धि हो जाती है, इसलिए साध्य की सिद्धि में दृष्टान्तादिक की कोई आवश्यकता नहीं है।

विशेष : उतने मात्र से अर्थात् जिसका विपक्ष में रहना निश्चित रूप से असंभव है, ऐसे हेतु के प्रयोग मात्र से ही साध्य की सिद्धि हो जाती है। अतः उसके लिए दृष्टान्तादिक का प्रयोग कोई फलवाला नहीं है।

इसी कारण से पक्ष का प्रयोग सफल है, यह दिखलाने के लिए सूत्र कहते हैं –

तेन पक्षस्तदाधार सूचनायोक्तः ॥ 94 ॥

सूत्रान्वय : तेन = इसी कारण से, पक्ष : = पक्ष का, तत् = उसका, आधारः = आधार की, सूचनाय = सूचना के लिए, उक्तः = कहा गया है।

सूत्रार्थ : साधन से व्याप्त साध्य रूप आधार की सूचना के लिए पक्ष कहा जाता है।

संस्कृतार्थ : साध्याविनाभाविनो हेतोः प्रयोगादेव साध्यसिद्धिः जायते अतस्तस्य हेतोः आधारदर्शनार्थमेव पक्षप्रयोगः आवश्यकः।

टीकार्थ : जब साध्य के बिना नहीं होने वाले हेतु के प्रयोग से ही साध्य की सिद्धि हो जाती है, तब उस हेतु (साधन) का स्थान दिखाने के लिए पक्ष का प्रयोग करना आवश्यक है।

विशेष : जो पुरुष साध्य व्याप्त साधन को नहीं जानते हैं, उनके लिए विज्ञजन दृष्टान्त से तद्भाव को या हेतु भाव को कहते हैं। किन्तु विद्वानों के लिए तो केवल एक हेतु ही कहना चाहिए।

इस प्रकार अनुमान के स्वरूप का प्रतिपादन करके अब आचार्य भगवन् क्रम प्राप्त आगम के स्वरूप का निरुपण करने के लिए सूत्र कहते हैं -

आप्तवचनादिनिबन्धनमर्थज्ञानमागमः ॥ 95 ॥

सूत्रान्वय : आप्तवचनादि = आप्त के वचन आदि के, निबन्धनम् = निमित्त से होने वाले, अर्थज्ञानम् = पदार्थ ज्ञान को, आगमः = आगम।

सूत्रार्थ : आप्त के वचनादि के निमित्त से होने वाले अर्थज्ञान को आगम कहते हैं।

संस्कृतार्थ : यो यत्रावञ्चकः स तत्राप्तः। आप्तस्य वचनम् आप्त वचनम्। आदिशब्देनाङ्गुल्यादिसंज्ञापरिग्रहः। आप्तवचनमादिर्यस्य तत् तथोक्तम्। आप्तवचनादि निबन्धनं कारणं यस्य तत् तथोक्तम्। तथाचाप्तवचनादिकारणत्वे सति अर्थज्ञानत्वं नाम आगमत्वमिति।

अर्थज्ञानमित्येतावदुच्यमाने प्रत्यक्षादावतिव्याप्तिः। अत उक्तं वाक्यनिबन्धनमिति। वाक्यनिबन्धनमर्थज्ञानामागमः इत्युच्यमानेऽपि यादृच्छिकसम्भावादिषु विप्रलम्भजन्यवाक्येषु सुप्तोन्मत्तादिजन्यवाक्येषु वा नदीतीरफलसंसर्गादिज्ञानेषु अतिव्याप्तिः अत उक्तम् आप्तेति। आप्तवाक्य निबन्धनज्ञानमित्युच्यमानेऽपि आप्तवाक्यकर्मके श्रावणप्रत्यक्षेऽतिव्याप्तिः अतः उक्तमर्थेति।

टीकार्थ : जहाँ जो अवञ्चक है, वह वहाँ आप्त है, आप्त का वचन आप्त वचन है। आदि शब्द से अंगुली आदि के संकेत ग्रहण करना चाहिए। आप्त के वचनादि जिस अर्थज्ञान के कारण हैं, वह आगम प्रमाण है। आप्त शब्द के ग्रहण से अपौरुषेय वेद का निराकरण किया जाता है। अर्थज्ञान इस पद से अन्यापोह ज्ञान का तथा अभिप्राय के सूचक शब्द सन्दर्भ का निराकरण किया गया है।

अर्थज्ञान आगम है, यह कहने पर प्रत्यक्षादि में अति व्याप्ति हो जायेगी। अतः उसके परिहार के लिए वाक्य निबन्धनम् कहा गया है। वाक्य निबन्धनम् अर्थज्ञान आगम है, ऐसा कहने पर भी अपनी इच्छा से कुछ भी बोलने वाले, ठगने वाले लोगों के वाक्य, सोए हुए तथा उन्मत्त पुरुषों के वचनों से उत्पन्न होने वाले अर्थज्ञान में लक्षण के चले जाने से अतिव्याप्ति दोष हो जायेगा। अतः उसके निराकरणार्थ अर्थ विशेषण दिया है। आप्त वचन जिसमें कारण है ऐसा अर्थज्ञान आगम है, ऐसा कहे जाने पर परार्थानुमान में अति व्याप्ति हो जायेगी, अतः उसका परिहार करने के लिए आदि पद ग्रहण किया है।

नोट : सूत्र में आदि शब्द से अंगुली आदि का संकेत ग्रहण करना है।

वचन या शब्द से वास्तविक अर्थबोध होने का कारण –

सहजयोग्यतासंकेतवशाद्धि शब्दादयो वस्तुप्रतिपत्तिहेतवः ॥ 96 ॥

सूत्रान्वय : सहजयोग्यता = स्वभावभूत योग्यता के होने पर, संकेतवशात् = संकेत के वश से, शब्दादयः = शब्दादि, वस्तु = वस्तु, प्रतिपत्ति = ज्ञान कराने के लिए, हेतवः = कारण है, हि = क्योंकि।

सूत्रार्थ : सहज योग्यता के होने पर संकेत के वश से शब्दादि वस्तु का ज्ञान कराने के कारण हैं।

संस्कृतार्थ : सहजा स्वभाव संभूता, योग्यता शब्दार्थयोर्वाच्यवाचक शक्तिः तस्याम् संकेतस्तस्य वशस्तस्मात् तथा च शब्दार्थ निष्ठावाच्य-वाचक शक्तिसंकेत ग्रहण निमित्तेन शब्दादयः स्पष्टरीत्या पदार्थ ज्ञानं जनयन्ति इति भावः।

टीकार्थ : सहजा स्वभावभूता योग्यता शब्द और अर्थ की वाच्य-वाचक भावरूप शक्ति उसके होने पर संकेत के वश से और उसी प्रकार अर्थों में वाच्य रूप तथा शब्दों में वाचक रूप एक स्वाभाविक योग्यता होती है, जिसमें संकेत हो जाने से ही शब्दादिक स्पष्ट रूप से पदार्थ ज्ञान को उत्पन्न करने में कारण होते हैं यह भाव है।

विशेष : शब्द और अर्थ की वाच्य-वाचक भाव रूप शक्ति, उसके होने पर संकेत के वश से स्पष्ट रूप से पहले कहे गए शब्दादिक वस्तु का ज्ञान कराने में कारण होते हैं।

अब शब्दार्थ से अर्थ अवबोध होने का दृष्टान्त देते हैं -

यथा मेर्वादयः सन्ति॥ 97॥

सूत्रान्वय : यथा = जैसे, मेरु= सुमेरुपर्वत, आदयः = आदिक, सन्ति = हैं।

सूत्रार्थ : जैसे मेरुपर्वतादिक हैं।

संस्कृतार्थ : यथा मेर्वादयः सन्तीत्यादि वाक्यश्रवणात् सहजयोग्यता श्रयेण हेमाद्रि प्रभृतीनां बोधो जायते तथैव सर्वत्र शब्दादर्थावबोधो जायते।

टीकार्थ : जैसे मेरुपर्वत आदिक होते हैं, इस प्रकार का वाक्य सुनने से सहज योग्यता के आश्रय से हेम आदि पर्वतों का ज्ञान होता है उसी प्रकार ही सभी जगह शब्द से पदार्थों का ज्ञान हो जाता है।

इति तृतीयः परिच्छेदः समाप्तः

(इस प्रकार तीसरा परिच्छेद पूर्ण हुआ)

हेतु के बाईस भेदों का चार्ट

उपलब्धिहेतु 12 भेद

अविरुद्धोपलब्धि
(विधिसाधक 6 भेद)

1. अविरुद्धव्याप्योपलब्धि हेतु
2. अविरुद्धकार्योपलब्धि हेतु
3. अविरुद्धकारणोपलब्धि हेतु
4. अविरुद्धपूर्वचरोपलब्धि हेतु
5 अविरुद्धउत्तरचरोपलब्धि हेतु
6. अविरुद्धसहचरोपलब्धि हेतु

विरुद्धोपलब्धि
(प्रतिषेधसाधक 6 भेद)

1. विरुद्धव्याप्योपलब्धि हेतु
2. विरुद्धकार्योपलब्धि हेतु
3. विरुद्धकारणोपलब्धि हेतु
4. विरुद्धपूर्वचरोपलब्धि हेतु
5. विरुद्धउत्तरचरोपलब्धि हेतु
6. विरुद्धसहचरोपलब्धि हेतु

अनुपलब्धिहेतु 10 भेद

अविरुद्ध की अनुपलब्धि
(प्रतिषेधसाधक 7 भेद)

1. अविरुद्धस्वभावानुपलब्धि हेतु
2. अविरुद्धव्यापकानुपलब्धि हेतु
3. अविरुद्धकार्यानुपलब्धि हेतु
4. अविरुद्धकारणानुपलब्धि हेतु
5. अविरुद्धपूर्वचरानुपलब्धि हेतु
6. अविरुद्धउत्तरचरानुपलब्धि हेतु
7. अविरुद्धसहचरानुपलब्धि हेतु

विरुद्ध अनुपलब्धि
(विधि साधक 3 भेद)

1. विरुद्धकार्यानुपलब्धि हेतु
2. विरुद्धकारणानुपलब्धि हेतु
3. विरुद्धस्वभावनुपलब्धि हेतु

अथ प्रमाणविषय निर्णय

अथ चतुर्थः परिच्छेदः

प्रमाण के स्वरूप और संख्या की विप्रतिपत्ति का निराकरण करके आचार्य भगवन् अब विषय की विप्रतिपत्ति का निराकरण करने के लिए उत्तर सूत्र कहते हैं -

सामान्यविशेषात्मा तदर्थो विषयः ॥1॥

सूत्रान्वय : सामान्य =सामान्य, विशेष =विशेष, आत्मा=स्वरूप, तदर्थः=उस प्रमाण से गृहीत पदार्थ, विषयः = विषय।

सूत्रार्थ : सामान्य और विशेष स्वरूप वस्तु प्रमाण का विषय है।

संस्कृतार्थ : अनुगतप्रतीति विषयत्वं नाम सामान्यत्वम्। व्यावृत्तप्रतीति विषयत्वं नाम विशेषत्वम्, सामान्यं च विशेषश्चेति सामान्यविशेषौ, तौ आत्मानौ यस्य सः सामान्यविशेषात्मा, स तस्य प्रमाणस्य ग्राह्योऽर्थः इति तदर्थः। तथा च सामान्यविशेषोभयधर्मस्वरूपः प्रमाणग्राह्यः पदार्थः प्रमाण गोचरो भवतीति भावः।

टीकार्थ : अनुगत (साथ -साथ रहनें वालों में) ज्ञान के विषयपने का नाम सामान्य है। व्यावृत्त (यह उससे भिन्न है) ज्ञान के विषयपने का नाम विशेष है। सामान्यं च विशेषश्चेति सामान्यविशेषौ (यहाँ द्वन्द्व समास है) सामान्य और विशेष वे दोनों हैं आत्मा जिसकी वह सामान्यविशेषात्मा (यहाँ बहुब्रीहि समास है) उस प्रमाण के ग्राह्य अर्थ को तदर्थ कहते हैं और उसी प्रकार सामान्य और विशेष उभय धर्म स्वरूप पदार्थ प्रमाण से ग्राह्य है अतः प्रमाण का विषय होता है, यह भाव है।

263. इस सूत्र में विशेषण विशेष्य कौन है ?

सामान्यविशेषात्मक = विशेषण, विशेष्य - पदार्थ।

264. इस सूत्र में तीन पदों का ग्रहण क्यों किया गया है ?

केवल सामान्य, केवल विशेष और स्वतंत्र सामान्य विशेष की प्रमाण विषयता के प्रतिषेध के लिए है।

विशेषार्थ : अद्वैतवादी और सांख्य मतावलम्बी पदार्थ सामान्यात्मक ही मानते हैं। बौद्ध पदार्थ को विशेष रूप ही मानते हैं। नैयायिक वैशेषिक सामान्य को एक स्वतंत्र पदार्थ और विशेष को एक स्वतंत्र पदार्थ मानते हैं और उनका द्रव्य के साथ समवाय सम्बन्ध मानते हैं। इस प्रकार के विषयभूत पदार्थ के विषय में जो मतभेद हैं, उनके निराकरण के लिए सूत्र में सामान्य - विशेषात्मा ऐसा विशेषण पदार्थ के लिए दिया गया है। जिसका अभिप्राय यह है कि पदार्थ न केवल सामान्य रूप है, न केवल विशेष रूप है और न केवल स्वतंत्र उभय रूप है, अपितु उभयात्मक है।

अब आचार्य भगवन् अनेकान्तात्मक वस्तु के समर्थन के लिए दो हेतु कहते हैं –

अनुवृत्तव्यावृत्तप्रत्ययगोचरत्वात् पूर्वोत्तराकारपरिहारावाप्ति स्थितिलक्षणपरिणामेनार्थक्रियोपपत्तेश्च॥ 2॥

सूत्रान्वय : अनुवृत्त = अनुवृत्त, व्यावृत्त = व्यावृत्त, प्रत्यय = ज्ञान, गोचरत्वात् = विषय होने से, पूर्व =पहला, उत्तर = बाद का, आकार = आकृति, परिहार = निराकरण, अवाप्ति = प्राप्ति, स्थितिलक्षण =ध्रुवरूपता, परिणामेन = परिणाम के साथ, अर्थक्रिया =अर्थक्रिया की, उपपत्तेः =प्राप्ति होने से, च = और।

सूत्रार्थ : वस्तु अनेकान्तात्मक है, क्योंकि वह अनुवृत्त और व्यावृत्त ज्ञान की विषय है तथा पूर्व आकार का परिहार और उत्तर आकार की प्राप्ति तथा स्थिति लक्षण परिणाम के साथ उसमें अर्थक्रिया पायी जाती है।

संस्कृतार्थ : अनुवृत्ताकारो हि गौः गौः गौरित्यादिप्रत्ययः। व्यावृत्ताकारः श्यामः शबलः इत्यादि प्रत्ययः। पदार्थानां कार्यमर्थक्रिया। वस्तुतः पूर्वाकारविनाशः उत्तराकारावाप्तिश्चेत्युभयावस्थासहितस्थितिः परिणामः।

अनुवृत्तञ्च व्यावृत्तञ्च तौ च तौ प्रत्ययौ, तयोः गोचरः तस्य भावस्तत्त्वं तस्मात्। पूर्वोत्तराकारयोः यथासंख्येन परिहारावाप्तिः ताभ्यां स्थितिः सैव लक्षणं यस्य सः चासौ परिणामश्च, तेनार्थक्रियायाः उपपत्तिः तस्याः। तथा च सादृश्य व्यावृत्तात्मकज्ञानविषयत्वात् पूर्वोत्तराकारपरित्याग प्राप्ति सहचरित ध्रौव्यलक्षण

परिणत्या अर्थक्रिया सिद्धे च वस्तु सामान्यविशेषात्मकम् अनेकधर्मात्मकं वा सिद्धयति।

टीकार्थ : गौ, गौ, इस प्रकार अन्वयरूप (यह वही है ऐसे) ज्ञान को अनुवृत्तप्रत्यय कहते हैं तथा यह काली है, यह चितकबरी है, इत्यादि भिन्न-भिन्न (यह वह नहीं है) प्रतीति को व्यावृत्त कहते हैं। पदार्थों के कार्य को अर्थ क्रिया कहते हैं। वस्तुतः पदार्थ के पूर्वाकार का विनाश और उत्तराकार का प्रादुर्भाव इन दोनों सहित स्थिति को परिणाम कहते हैं। अनुवृत्त और व्यावृत्त इनमें द्वन्द्व समास है और प्रत्यय के साथ कर्मधारय समास है, इन दो प्रकार के प्रत्ययों का विषय होना, उसके भाव को तत्त्व कहते हैं। पूर्वाकार और उत्तराकार इन दोनों पदों का यथाक्रम से परिहार और अवाप्ति इन दोनों पदों के साथ सम्बन्ध करना चाहिए। इन दोनों के साथ जो स्थिति है, वही लक्षण जिस परिणाम का है, उस परिणाम से अर्थक्रिया बन जाती है। इसलिए वस्तु सामान्य विशेषात्मक अथवा अनेक धर्मात्मक रूप सिद्ध हो जाती है।

265. इस सूत्र में किसे सिद्ध करने के लिए कितने हेतु दिए है ?

पदार्थ सामान्य विशेषात्मक, द्रव्यपर्यायात्मक या अनेक धर्मात्मक है, इसे सिद्ध करने के लिए आचार्य भगवन् ने इस सूत्र में दो हेतु दिए हैं -

1. पदार्थ अनुवृत्त और व्यावृत्तप्रत्यय का विषय है।
2. उत्पादव्यय- ध्रौव्यात्मकता से पदार्थ की सिद्धि की गयी है।

अब प्रथम कहे गए सामान्य के भेद दिखलाते हुए आचार्य उत्तरसूत्र कहते हैं -

सामान्यं द्वेधा तिर्यगूर्ध्वताभेदात्॥ 3॥

सूत्रान्वय : सामान्यं = सामान्य, द्वेधा = दो प्रकार, तिर्यक् =तिरछा, ऊर्ध्वता= ऊर्ध्वपना, भेदात् = भेद से।

सूत्रार्थ : सामान्य के दो भेद हैं-तिर्यक् सामान्य और ऊर्ध्वपना सामान्य।

संस्कृतार्थ : तिर्यक् सामान्यं ऊर्ध्वता सामान्यं चेति सामान्यस्य द्वौ भेदौ स्तः।

टीकार्थ : तिर्यक् सामान्य और ऊर्ध्वपना सामान्य के भेद से सामान्य

के दो भेद हैं।

अब प्रथम भेद तिर्यक् सामान्य को उदाहरण सहित कहते हैं –

सदृशपरिणामस्तिर्यक् खण्डमुण्डादिषु गोत्ववत्॥ 4॥

सूत्रान्वय : सदृशपरिणामः = सदृश परिणाम को, तिर्यक् = तिर्यक्, खण्ड = खण्डी, मुण्डादिषु = मुण्डी आदियों में, गोत्ववत् = गायों में गोपना।

सूत्रार्थ : सदृश परिणाम को तिर्यक् सामान्य कहते हैं। जैसे खण्डी, मुण्डी आदि गायों में गोपना।

संस्कृतार्थ : सादृश्यात्मको धर्मस्तिर्यक् सामान्यं प्रोच्यते, यथा खण्डमुण्डादिषु गोषु गौत्वम्।

टीकार्थ : सामान्य परिणमन रूप धर्म को तिर्यक् सामान्य जैसे खण्डी मुण्डी आदि गायों में गोपना।

विशेषार्थ : नित्य और एक रूप गोत्व आदि के क्रम और यौगपद्य से अर्थक्रिया का विरोध है तथा एक सामान्य के एक व्यक्ति में साकल्य रूप से रहने पर अन्य में रहना संभव नहीं है। अतः अनेक और सदृश परिणमन ही सामान्य है। योग लोग सामान्य को नित्य और एक ही मानते हैं, आचार्य भगवन् ने सामान्य को नित्य मानने पर यह दूषण दिया है कि नित्य पदार्थ में क्रम से या युगपत् अर्थक्रिया नहीं बन सकती है। अतः उसे सर्वथा नित्य नहीं, किन्तु कथंचित् नित्य मानना चाहिए तथा सामान्य को एक माना जाए तो यह दूषण आयेगा कि वह गोत्वादि रूप सामान्य जब एक काली या धवली गाय में पूर्णरूप से रहेगा तब अन्य गायों में उसका रहना असंभव होने से अभाव मानना पड़ेगा। अतः वह एक नहीं, किन्तु अनेक है और सदृश परिणाम ही उसका स्वरूप है।

अब आचार्य भगवन् सामान्य के दूसरे भेद को दृष्टान्त के साथ कहते हैं –

परापरविर्वतव्यापिद्रव्यमूर्ध्वता मृदिव स्थासादिषु॥ 5॥

सूत्रान्वय : पर = पूर्व, अपर = उत्तर, विवर्त = पर्याय, व्यापि = रहने वाले, द्रव्यम् = द्रव्य को, ऊर्ध्वता = ऊर्ध्व सामान्य, मृदिव = जैसे मिट्टी में,

स्थासादिषु = स्थास आदि पर्यायों में।

सूत्रार्थ : पूर्व और उत्तर पर्यायों में रहने वाले द्रव्य को ऊर्ध्वता सामान्य कहते हैं। जैसे – स्थास, कोश, कुशूल आदि में मिट्टी रहती है।

नोट : यहाँ सामान्य पद की अनुवृत्ति है।

संस्कृतार्थ : परेऽपरे च ये विवर्तास्तेषु व्याप्नोति इति परापरविवर्तव्यापि। तथा च पूर्वोत्तरपर्यायव्यापकत्वे सति द्रव्यत्वं नाम ऊर्ध्वता सामान्यम्। यथा स्थासकोशकुशूलादिषु पर्यायेषु व्यापकत्वं मृत्तिका द्रव्यम्।

टीकार्थ : परेऽपरे च ये विवर्तास्तेषु व्याप्नोति इति परापरविवर्तव्यापि/ यहाँ पर द्वन्द्वगर्भा कर्मधारय समास है कि पर में और अपर में व्याप्य होकर रहने वाला परापर विवर्तव्यापि है और इसी तरह पूर्व और उत्तर पर्याय में व्यापकपने से होने पर द्रव्यपने का नाम ऊर्ध्वता सामान्य है। जैसे-स्थास, कोश, कुशूल आदि पर्यायों में व्यापकपना मिट्टी द्रव्य का है।

266. वह वस्तु क्या है ?

द्रव्य।

267. वह द्रव्य कैसा है ?

वह द्रव्य परापरविर्वतव्यापि इस विशेषण से विशिष्ट है।

268. परापरविर्वतव्यापि इस पद का क्या अर्थ है ?

पूर्वोत्तर कालवर्ती या त्रिकालवर्ती पर्यायों का अनुयायी।

अब विशेष भी दो प्रकार का है, यह दिखलाते हैं –

विशेषश्च ॥ 6 ॥

सूत्रान्वय : च = और, विशेष = विशेष।

सूत्रार्थ : विशेष के भी पर्याय और व्यतिरेक दो भेद हैं।

नोट : सूत्र में द्वेधा पद का अधिकार से सम्बन्ध किया गया है।

संस्कृतार्थ : विशेषस्यापि द्वौ भेदौ विद्येते।

टीकार्थ : विशेष के भी दो भेद हैं।

अब विशेष के प्रथम भेद को कहते हैं -

पर्यायव्यतिरेकभेदात्॥ 7॥

सूत्रार्थ : पर्याय और व्यतिरेक के भेद से विशेष दो प्रकार का है।

संस्कृतार्थ : पर्यायो व्यतिरेकश्चेति द्वौ विशेषस्य भेदौ स्तः।

टीकार्थ : पर्याय और व्यतिरेक के भेद से विशेष के दो भेद हैं।

पर्याय विशेष का स्वरूप वा उदाहरण कहते हैं -

एकस्मिन्द्रव्ये क्रमभाविनः परिणामः पर्यायाः आत्मनि हर्षविषादादिवत्॥ 8॥

सूत्रान्वय : एकस्मिन् द्रव्ये = एक द्रव्य में, क्रम भाविनः = क्रम से होने वाले, परिणामः = परिणाम को, पर्यायाः =पर्याय कहते हैं, आत्मनि =आत्मा में, हर्षविषादादिवत् = हर्ष और विषाद के समान।

सूत्रार्थ : एक द्रव्य में क्रम से होने वाले परिणामों को पर्याय कहते हैं, जैसे आत्मा में हर्ष विषाद आदिक।

संस्कृतार्थ : एकस्मिन्द्रव्ये क्रमशः समुत्पद्यमानाः भावा पर्यायविशेषाः प्रोच्यन्ते। यथात्मनि हर्ष विषादायो भावाः।

टीकार्थ : एकद्रव्य में क्रम से होने वाले भावों को पर्याय विशेष कहा जाता है। जैसे आत्मा में हर्ष विषाद आदिक भाव।

विशेषार्थ : यहाँ पर द्रव्य (आत्मद्रव्य अपने शरीर के प्रमाण मात्र ही है, न व्यापक है और न वटकणिकामात्र है और न शरीराकार से परिणत भूतों के समुदाय रूप है।

अब विशेष के दूसरे भेद को बताते हैं -

अर्थान्तरगतो विसदृशपरिणामो व्यतिरेको गोमहिषादिवत्॥ 9॥

सूत्रान्वय : अर्थ=पदार्थ, अन्तर=एक की अपेक्षा दूसरे में, गतः =प्राप्त, विसदृशः = विसदृश, परिणामः = परिणाम, व्यतिरेक = व्यतिरेक, गो=गाय, महिषादि = भैसादि, वत् =समान।

सूत्रार्थ : एक पदार्थ की अपेक्षा अन्य पदार्थ में रहने वाले विसदृश परिणाम का व्यतिरेक कहते हैं। जैसे - गााय, भैंस आदि में विलक्षणपना।

संस्कृतार्थ : अन्ये अर्थाः अर्थान्तराणि, तानि गतः इत्यर्थान्तरगतः। विसदृशश्चासौ परिणामो विसदृशपरिणामः। तथा च भिन्न-भिन्न पदार्थ निष्ठत्वे सति। विलक्षणधर्मत्वं नाम व्यतिरेकत्वम्। यथा पारस्परिक वैलक्षण्य विशिष्टा गोमहिषादयस्तिर्यञ्चः।

टीकार्थ : अन्ये अर्थाः अर्थान्तराणि (अन्य पदार्थों में), तानि गतः (उनको प्राप्त) इस प्रकार अर्थान्तर गत शब्द क्या है और उसी प्रकार भिन्न-भिन्न पदार्थों के स्थित होने पर विलक्षण धर्मपने का नाम व्यतिरेक है। जैसे - पारस्परिक विलक्षणता गाय और भैंस आदि तिर्यञ्च के पायी जाती है।

इति चतुर्थः परिच्छेदः समाप्तः

(इस प्रकार चतुर्थः परिच्छेद पूर्ण हुआ)

अथ प्रमाण फल निर्णय

अथ पञ्चमः परिच्छेदः

अब आचार्य भगवन् प्रमाण के फल की विप्रतिपत्ति के निराकरण के लिए उत्तर कहते हैं –

अज्ञाननिवृत्तिर्हानोपादानोपेक्षाश्च फलम्॥ 1 ॥

सूत्रान्वय : अज्ञाननिवृत्तिः = अज्ञान की निवृत्ति, हान = त्याग, उपादान = ग्रहण, उपेक्षा = उदासीनता, च = और, फलम् = फल।

सूत्रार्थ : अज्ञान की निवृत्ति, त्याग, ग्रहण और उदासीनता ये प्रमाण के फल हैं।

संस्कृतार्थ : अज्ञानस्य निवृत्तिः अज्ञाननिवृत्तिः। प्रमेयाज्ञान निरास इत्यर्थः। हानं च उपादानं च उपेक्षा चेति हानोपादानोपेक्षाः त्याग ग्रहणानादराः इत्यर्थः। तद्यथा प्रमाणस्य फलं द्विविधं, साक्षात्फलं परम्पराफलं चेति। तत्र साक्षात्फलम् अज्ञाननिवृत्तिः परम्पराफलं च क्वचित्वस्तुत्यागः, क्वचित् वस्तु गृहणं, क्वचित् वस्तु अनादरो वा। त्यागादीनां प्रमेय निश्चयोत्तरकाल भावित्वात्।

टीकार्थ : अज्ञान की निवृत्ति अज्ञाननिवृत्ति (षष्ठी तत्पुरुष) प्रमेय सम्बन्धी अज्ञान का निराकरण हेतु यह अर्थ लेना है। हानं च उपादानं च उपेक्षा चेति हानोपादापेक्षाः यहाँ द्वन्द्व समास है। हान का अर्थ त्याग, उपादान का अर्थ ग्रहण, उपेक्षा का अर्थ अनादर है, अतः प्रमाण का फल दो प्रकार है – साक्षात् फल और परम्परा फल, किसी वस्तु का त्याग, किसी वस्तु का ग्रहण और किसी वस्तु का अनादर त्यागादि का प्रमेय के निश्चय करने के उत्तरकाल में होता है।

269. फल कितने प्रकार का होता है ?

दो प्रकार का – साक्षात् फल और परम्पराफल।

270. साक्षात् फल किसे कहते हैं ?

वस्तु के जानने के साथ ही तत्काल होने वाले फल को साक्षात् फल कहते हैं।

271. परम्पराफल किसे कहते हैं ?

वस्तु के जानने के पश्चात् परम्परा से प्राप्त होने वाले फल को परम्पराफल कहते हैं।

272. हान किसे कहते हैं ?

जानने के पश्चात् अनिष्ट या अहितकर वस्तु के परित्याग करने को हान कहते हैं।

273. उपादान किसे कहते हैं ?

इष्ट या हितकर वस्तु के ग्रहण को उपादान कहते हैं।

274. उपेक्षा किसे कहते हैं ?

राग–द्वेष दूर होने के बाद जो उदासीनता रूप भाव है, उसे उपेक्षा कहते हैं।

यह दोनों ही प्रकार का फल प्रमाण से भिन्न ही है, ऐसा यौग मानते हैं। प्रमाण से फल अभिन्न नहीं है, ऐसा बौद्ध मानते हैं। इन दोनों मतों के निराकरण के साथ अपने मत की व्यवस्था करने के लिए अगला सूत्र कहते हैं –

प्रमाणादभिन्नं भिन्नं च ॥ 2 ॥

सूत्रान्वय : प्रमाणात् = प्रमाण से, अभिन्नं = अभिन्न, च =और, भिन्नं = भिन्न।

सूत्रार्थ : फल प्रमाण से कथञ्चित् अभिन्न है और कथञ्चित् भिन्न है।

संस्कृतार्थ : तत्प्रमाणफलं संज्ञास्वरूपादिभेदापेक्षया कथञ्चित् प्रमाणात् भिन्नं विद्यते। प्रमाणस्यकरणरूपत्वात्, प्रमितेश्च क्रियारूपत्वादिति। कथञ्चिच्चा–भिन्नं विद्यते।

टीकार्थ : वह प्रमाण का फल संज्ञा, स्वरूपादि भेद की अपेक्षा से कथञ्चित् अभिन्न है।

अब कथञ्चित् अभेद का समर्थन करने के लिए हेत रूप सूत्र कहते हैं –

यः प्रमिमीते स एव निवृत्ताज्ञानो जहात्यादत्ते उपेक्षते चेति प्रतीतेः ॥ 3 ॥

सूत्रान्वय : यः = जो, प्रमिमीते = जानता है, सः = वह, एव = ही, निवृत्तज्ञानः = अज्ञान निवृत्त होता है, जहाति = त्यागता है, आदत्तेः = ग्रहण करता है, उपेक्षते= उपेक्षा करता है, च = और, इति = इस प्रकार, प्रतीतेः = प्रतीति से सिद्ध है।

सूत्रार्थ : जो (जानने वाला) प्रमाण से पदार्थ को जानता है, उसी का अज्ञान निवृत्त होता है, अप्रशस्त पदार्थ का त्याग करता है, इष्ट का ग्रहण करता है अथवा उपेक्षा करता है। यह बात प्रतीति सिद्ध है।

संस्कृतार्थ : तद्धि प्रमाणफलम् एकप्रमातृसम्बन्धापेक्षया कथञ्चित् प्रमाणादभिन्नं विद्यते। तद्यथा - यः आत्मा पदार्थं जानाति, स एव पदार्थविषयिकाज्ञानरहितः सन् पदार्थं त्यजति, गृह्णाति, उपेक्षते चेति प्रतीतेः।

टीकार्थ : प्रमाण का फल प्रमाता (ज्ञाता) की अपेक्षा से कथञ्चित् प्रमाण से अभिन्न है, जो आत्मा पदार्थ को जानती है, वही पदार्थ विषयक अज्ञान से रहित होती हुई पदार्थ को त्यागती है, ग्रहण करती है और उपेक्षा करती है इस प्रकार प्रतीति होती है।

विशेष : इस सूत्र का भाव यह है कि जिस ही आत्मा की प्रमाण के आकार से परिणति होती है, उसके ही फल रूप से परिणाम होता है। इस प्रकार एक प्रमाता की अपेक्षा प्रमाण और फल में अभेद है। कारण और क्रिया रूप परिणाम के भेद से प्रमाण और फल में भेद है।

इति पञ्चमः परिच्छेदः समाप्तः

(इस प्रकार पाँचवां परिच्छेद पूर्ण हुआ)

अथ आभास स्वरूप प्रकरणम्

अथ षष्ठः परिच्छेदः

अब पहले कहे गये प्रमाण के स्वरूप, संख्या, विषय और फल इन चारों के आभासों को कहते हैं -

ततोऽन्यत्तदाभासम् ॥1 ॥

सूत्रान्वय : ततः = उसमें, अन्यत् = अन्य, तदाभासम् = तदाभास है।

सूत्रार्थ : पहले कहे गए प्रमाण से भिन्न प्रमाणाभास है।

संस्कृतार्थ : पूर्वोक्त प्रमाणस्य स्वरूपसंख्याविषयफलेभ्यो विपरीतानि (भिन्नानि) स्वरूपसंख्याविषयफलानि स्वरूपाभास संख्याभासविषयाभासाः प्रोच्यन्ते।

टीकार्थ : पहले कहे गए प्रमाण के स्वरूप, संख्या, विषय और फल से विपरीत फलाभास कहे जाते हैं।

275. **तदाभास किसे कहते हैं ?**

यथार्थ स्वरूप से रहित होने पर भी उन जैसे प्रतिभासित होने वाले स्वरूपादि को तदाभास कहते हैं।

276. **स्वरूपाभास किसे कहते हैं ?**

प्रमाण के स्वरूप से रहित विपरीत आभास को स्वरूपाभास कहते हैं।

277. **संख्याभास किसे कहते हैं ?**

प्रमाण की यथार्थ संख्या से विपरीत अयथार्थ संख्या को संख्याभास कहते हैं।

278. **विषयाभास किसे कहते हैं ?**

प्रमाण के वास्तविक विषय से विपरीत विषय को विषयाभास कहते हैं।

279. **फलाभास किसे कहते हैं ?**

प्रमाण के फल से विपरीत फल को फलाभास कहते हैं।

अब क्रम प्राप्त स्वरूपाभास को कहते हैं –

अस्वसंविदित–गृहीतार्थदर्शनसंशयादयः प्रमाणाभासाः ॥ 2 ॥

सूत्रान्वय : अस्वसंविदित = अस्वसंवेदी, गृहीतार्थ =गृहीत अर्थ, दर्शन = दर्शन, संशयादयः = संशय आदि को, प्रमाणाभासाः = प्रमाणाभास कहते हैं।

सूत्रार्थ : अस्वसंविदित, गृहीतार्थ, दर्शन, संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय को प्रमाणाभास कहते हैं।

संस्कृतार्थ : अस्वसंविदितं, गृहीतार्थ ज्ञानं, दर्शनं, संशयः, विपर्ययः, अनध्यवसायश्चेति सप्तप्रमाणाभासाः प्रोच्यंते।

टीकार्थ : अस्वसंविदित को, गृहीतार्थ ज्ञान को, दर्शन को, संशय को, विपर्यय को और अनध्यवसाय इस प्रकार सात प्रमाणाभास कहे गए हैं।

नोट : अस्वसंविदित, गृहीतार्थ, दर्शन और संशय है आदि में जिनके ऐसे संशयादि इन सभी का द्वन्द्व समास करना चाहिए। आदि शब्द से विपर्यय और अनध्यवसाय का भी ग्रहण करना है।

280. अस्वसंविदित ज्ञान किसे कहते हैं ?

जो ज्ञान अपने आपके द्वारा अपने स्वरूप को नहीं जानता है, उसे अस्वसंविदित ज्ञान कहते हैं।

281. गृहीतार्थ ज्ञान किसे कहते हैं ?

किसी यथार्थ ज्ञान के द्वारा पहले जाने हुए पदार्थ के पुनः जानने वाले ज्ञान को गृहीतार्थ ज्ञान कहते हैं।

282. निर्विकल्प ज्ञान किसे कहते हैं ?

यह घट है, यह पट है, इत्यादि विकल्प से रहित निर्विकल्प रूप ज्ञान को दर्शन कहते हैं। (विस्तार – प्रमेयरत्नमाला देखें)

अब इन उपर्युक्त अस्वसंविदित ज्ञानादि के प्रमाणाभासता क्यों है, इसका उत्तर देते हुए आचार्य भगवन् कहते हैं –

स्वविषयोपदर्शकत्वाभावात् ॥ 3 ॥

सूत्रान्वय : स्व = अपना, विषयोपदर्शकत्व = विषय के निश्चयपने

का, अभावात् = अभाव होने से।

सूत्रार्थ : क्योंकि वे अपने विषय का निश्चय नहीं करते हैं।

संस्कृतार्थ : अस्वसंविदितादयः स्वस्वविषयनिश्चायकत्वाभावात् प्रमाणाभासाः प्रोच्यन्ते।

टीकार्थ : अस्वसंविदित आदि अपने अपने विषय के निश्चायक न होने से प्रमाणाभास कहे जाते हैं।

अब आचार्य भगवन् ऊपर कहे गए प्रमाणाभासों के यथाक्रम से दृष्टान्त कहते हैं -

पुरुषान्तरपूर्वार्थगच्छत्तृणस्पर्शस्थाणुपुरुषादिज्ञानवत्॥ 4॥

सूत्रान्वय : पुरुषान्तर = दूसरे पुरुष का, पूर्वार्थ = गृहीतार्थ, गच्छत् = जाते हुए पुरुष के, तृणस्पर्श = तृण (घास, तिनका) स्पर्श, स्थाणुपुरुषादि = स्थाणु से पुरुषादि के, ज्ञानवत् = ज्ञान के समान।

सूत्रार्थ : दूसरे पुरुष का ज्ञान गृहीतागृहीतज्ञान, चलते हुए पुरुष के तृण स्पर्शी ज्ञान के समान स्थाणु है या पुरुष ऐसे संशयादि ज्ञान प्रमाणाभास हैं।

नोट : पुरुषान्तरं च पूर्वार्थं च, गच्छत्तृणस्पर्शं च, स्थाणुपुरुषादि च तेषां ज्ञानम् तद्वत् सूत्र में इस प्रकार द्वन्द्व समास कर लेना चाहिए।

संस्कृतार्थ : यथा पुरुषान्तरज्ञानं, धारावाहिज्ञानं, गच्छत्तृणस्पर्शज्ञानं तथा स्थाणुपुरुषज्ञानम् इत्यादि ज्ञानानां स्वस्वविषयनिश्चायकत्वाभावेन प्रमाणाभासत्वमुत्पद्यते तथा अस्वसंविदितादिज्ञानानामपि प्रमाणाभासत्वं सिद्ध्यति।

टीकार्थ : जैसे दूसरे पुरुष का ज्ञान, धारावाही ज्ञान, जाते मनुष्य के तृणस्पर्शी ज्ञान तथा स्थाणु में पुरुष का ज्ञान इत्यादि ज्ञानों के अपने-अपने विषय को निश्चय रूप से नहीं जानते इसलिए प्रमाणाभास हैं, उसी प्रकार अस्वसंविदित ज्ञानों के भी प्रमाणाभासपना सिद्ध होता है।

विशेष : अस्वसंविदित ज्ञान प्रमाण नहीं होता, क्योंकि वह अपने विषय का निश्चायक नहीं है। जैसे-दूसरे पुरुष का ज्ञान। गृहीतार्थज्ञान प्रमाण नहीं होता क्योंकि वह अपने विषय का निश्चायक नहीं है। जैसे-पूर्व में जाने

हुए पदार्थ का ज्ञान। निर्विकल्पज्ञान प्रमाण नहीं होता, क्योंकि वह अपने विषय का निश्चायक नहीं होता है। जैसे-चलते हुए पुरुष के तृण स्पर्शादि का ज्ञान। संशयादि ज्ञान भी प्रमाण नहीं हैं, क्योंकि अपने विषय के निश्चायक नहीं हैं, जैसे-स्थाणु में पुरुष आदि का ज्ञान।

अब सन्निकर्षवादी के प्रति दूसरा दृष्टान्त कहते हैं -

चक्षुरसयोर्द्रव्ये संयुक्तसमवायवच्च॥ 5॥

सूत्रान्वय : चक्षुरसयोः = चक्षु और रस के, द्रव्ये = द्रव्य में, च = और, संयुक्तसमवायवत् = संयुक्त समवाय के समान।

सूत्रार्थ : द्रव्य में चक्षु और रस के संयुक्त समवाय के समान।

संस्कृतार्थ : यथा घटपटादिपदार्थेषु चक्षुरसयोः संयुक्तसमवायाख्य सन्निकर्षः विद्यमानोऽपि न प्रमाणं तस्याचेतनत्वेन प्रमिति क्रियाम्प्रतिकारण-त्वाभावात्। किञ्च असन्निकृष्टस्यैव चक्षुषो रूपजनकत्वं दृश्यते, अप्राप्यकारित्वात् तस्य। विशेषश्चात्र न्यायदीपकाग्रन्थाद् अग्रिम लेखमालया वा विज्ञेयः।

टीकार्थ : जैसे घट-पटादि पदार्थों में, चक्षु और रस में संयुक्त समवाय नाम का सन्निकर्ष विद्यमान होने पर भी प्रमाण नहीं है, उसके अचेतन होने से प्रमिति क्रिया के प्रति करणपने का अभाव होने से और असन्निकृष्ट के ही चक्षुष के रूप उत्पन्न करते हुए देखा जाता है, अप्राप्यकारि होने से उस चक्षु इन्द्रिय के और इसको विशेष रूप से न्यायदीपिका ग्रन्थ से अथवा आगे लेखमाला में से जानना चाहिए।

विशेष : इन्द्रिय और पदार्थ के संयोग को सन्निकर्ष कहते हैं। नैयायिक सन्निकर्ष के छः भेद मानते हैं - संयोग, संयुक्तसमवाय, संयुक्तसंवेत समवाय, समवाय, समवेतसमवाय और विशेषणविशेष्य भाव।

आँख से घड़े को जानना संयोग सन्निकर्ष है। घड़े के रूप को जानना संयुक्त समवाय है, क्योंकि आँख के साथ घड़े का संयोग सम्बन्ध है और घड़े के साथ रूप का समवाय सम्बन्ध है। प्रकृत में इसी से प्रयोजन है। आचार्य भगवन् कहते हैं कि - जैसे घड़े और रूप का समवाय सम्बन्ध है, उसी प्रकार रस का भी समवाय सम्बन्ध है। इसलिए जैसे-आँख से घड़े को रूप का ज्ञान

होता है, उसी प्रकार उसमें समवाय सम्बन्ध से रहने वाले रस का भी आँख से ज्ञान होना चाहिए, परन्तु होता नहीं है। (इसे विस्तृत रूप से प्रमेयरत्नमाला में देखें)

अवैशद्ये प्रत्यक्षं तदाभासं, बौद्धस्याकस्माद् धूमदर्शनाद् वह्नि विज्ञानवत्॥ 6॥

सूत्रान्वय : अवैशद्ये = अविशद में, प्रत्यक्षं = प्रत्यक्ष को, तदाभासं = प्रत्यक्षाभास, बौद्धस्य = बौद्ध के, अकस्मात् = अचानक, धूमदर्शनात् = धूम देखने से, वह्निविज्ञानवत् = अग्निज्ञान के समान।

सूत्रार्थ : बौद्ध का अविशदरूप निर्विकल्प ज्ञान को प्रत्यक्ष मानना प्रत्यक्षाभास है। जैसे-अचानक धुआँ देखने से उत्पन्न हुआ अग्नि ज्ञान अनुमानाभास है।

संस्कृतार्थ : अवैशद्ये प्रत्यक्षं प्रत्यक्षाभासमाहुः। यथा बौद्धस्याकस्मात् धूमदर्शनात् वह्निविज्ञानं प्रत्यक्षाभासो विज्ञेयः।

टीकार्थ : अविशद ज्ञान को प्रत्यक्ष मानना प्रत्यक्षाभास है। जैसे कि बौद्ध लोग अकस्मात् धूम देखने से पैदा हुए अग्नि के ज्ञान को प्रत्यक्ष मानते हैं। उनका यह ज्ञान प्रत्यक्षाभास है।

अब परोक्षाभास को कहते हैं -

वैशद्येऽपि परोक्षं तदाभासं मीमांसकस्य करणज्ञानवत्॥ 7॥

सूत्रान्वय : वैशद्ये = विशद होने पर, अपि = भी, परोक्षं = परोक्ष को, तदाभासं = परोक्षाभास, मीमांसकस्य = मीमांसक के, करणज्ञानवत् = करणज्ञान के समान।

सूत्रार्थ : विशदज्ञान को भी परोक्ष मानना परोक्षाभास है। जैसे - मीमांसक करणज्ञान को परोक्ष मानते हैं, उनका ऐसा मानना परोक्षाभास है।

संस्कृतार्थ : वैशद्येऽपि परोक्षज्ञानं परोक्षास्ते व्यावर्ण्यते। यथा मीमांसकस्य करणज्ञानं परोक्षाभासो विज्ञेयः।

टीकार्थ : विशद ज्ञान को भी परोक्ष मानना परोक्षाभास कहा जाता

है। जैसे – मीमांसक के करणज्ञान को परोक्षाभास जानना चाहिए।

अतस्मिंस्तदिति ज्ञानं स्मरणाभासं, जिनदत्ते स देवदत्तो यथा ॥ 8 ॥

सूत्रान्वय : अतस्मिन् = पहले अनुभव नहीं किए गए पदार्थ में, तत् = वह, इति = इस प्रकार के, ज्ञानं = ज्ञान को, स्मरणाभासं = स्मरणाभास, जिनदत्ते = जिनदत्त में, सः = वह, देवदत्तः = देवदत्त, यथा = जैसे।

सूत्रार्थ : पूर्व में अनुभव नहीं किए गए पदार्थ में वह है अर्थात् वैसी है इस प्रकार का ज्ञान स्मरणाभास है। जैसे – जिनदत्त में वह देवदत्त है।

संस्कृतार्थ : अतस्मिन् तदितिज्ञानं स्मरणाभासं। यथा जिनदत्ते स्मृते सः देवदत्तः इति ज्ञानं स्मरणाभासः।

टीकार्थ : जिस पदार्थ का कभी धारणारूप अनुभव नहीं हुआ था, उसके अनुभव को स्मरणाभास कहते हैं। जैसे – जिनदत्त का स्मरण करके वह देवदत्त इस प्रकार का ज्ञान स्मरणाभास है।

283. स्मरणाभास किसे कहते हैं ?

जिस पदार्थ का कभी धारणा रूप अनुभव नहीं हुआ था उसके अनुभव को स्मरणाभास कहते हैं।

अब प्रत्यभिज्ञानाभास का स्वरूप कहते हैं –

सदृशे तदेवेदं तस्मिन्नेव तेन सदृशम्, यमलकवदित्यादि प्रत्यभिज्ञानाभासम् ॥ 9 ॥

सूत्रान्वय : सदृशे = सदृश वस्तु में, तत् एवं इदं = यह वही है, तस्मिन् = उसमें, एव = ही, तेन = उसके, सदृशम् = सदृश है, यमलकवत् = युगपत् जन्मे दो बालकों के समान, इत्यादि = इस प्रकार, प्रत्यभिज्ञानाभासं = प्रत्यभिज्ञानाभास।

सूत्रार्थ : सदृश पदार्थ में यह वही है, ऐसा कहना उसी पदार्थ में यह उसके सदृश है, ऐसा कहना। जैसे – युगल उत्पन्न हुए मनुष्यों में विपरीत ज्ञान हो जाता है, ऐसा ज्ञान प्रत्यभिज्ञानाभास है।

संस्कृतार्थ : सदृशे वस्तुनि तदेवेति तथा तस्मिन्नेव वस्तुनि तत् सदृशमिति ज्ञानम् अथवा सादृश्ये एकत्वस्य, एकत्वे वा सादृश्यज्ञानं प्रत्यभिज्ञानाभासं कथ्यते। एवमेव वैलक्षण्यादिष्वपि प्रत्येतव्यम्।

टीकार्थ : सदृश वस्तु में यह वही है तथा उस ही पदार्थ में यह उसके समान है, ऐसा ज्ञान अथवा सदृश्य में एकत्व का और एकत्व में सादृश्य का ज्ञान प्रत्यभिज्ञानाभास कहते हैं, ऐसा ही वैलक्षण्य आदि में जानना है। सूत्र में दो प्रकार के प्रत्यभिज्ञान को बतलाया गया है। 1. एकत्वनिमित्तक, 2. सादृश्य निमित्तिक-एकत्व में सादृश्य का और सादृश्य में एकत्व का ज्ञानाभास प्रत्यभिज्ञानाभास है।

अब तर्काभास को कहते हैं -

असम्बद्धे तज्ज्ञानं तर्काभासम्॥ 10॥

सूत्रान्वय : असम्बद्धे = अविनाभाव रहित में, तत् = उस अविनाभाव के, ज्ञानं = ज्ञान को, तर्काभासम् = तर्काभास।

सूत्रार्थ : अविनाभाव सम्बन्ध से रहित पदार्थ में अविनाभाव सम्बन्ध का ज्ञान कराना तर्काभास है।

संस्कृतार्थ : अविनाभावरहितेऽविनाभावज्ञानं, मिथोव्याप्ति विहीने व्याप्तिज्ञानम् वा तर्काभासो निगद्यते। यथा कस्यचिदेकम्पुत्रं कृष्णमावलोक्य यावन्तोऽस्य पुत्राः सन्ति भविष्यन्ति वा ते सर्वे कृष्णाः सन्ति भविष्यन्ति वेति ज्ञानं तर्काभासः।

टीकार्थ : अविनाभाव रहित में अविनाभाव ज्ञान का, अन्वय-व्यतिरेक व्याप्ति से रहित होने पर भी व्याप्ति ज्ञान को तर्काभास कहते हैं। जैसे - किसी के एक पुत्र को काला देखकर इसके जितने पुत्र हैं तथा होवेंगे वे सभी श्याम हैं या होंगे, ऐसी व्याप्ति बनाना तर्काभास है।

अब अनुमानाभास का स्वरूप कहते हैं -

इदमनुमानाभासम्॥ 11॥

सूत्रान्वय : इदम् = यह, अनुमानाभासम् = अनुमानाभास है।

सूत्रार्थ : यह अनुमानाभास है (जो आगे कहा जा रहा है)

संस्कृतार्थ : पक्षाभासः हेत्वाभासो, दृष्टान्ताभास चेत्यादयः अनुमानाभासा विज्ञेयाः।

टीकार्थ : पक्षाभास, हेत्वाभास और दृष्टान्ताभास आदि इस प्रकार अनुमानाभास जानना चाहिए।

विशेष : उस अनुमानाभास के अवयवाभासों को बतलाने से ही समुदाय रूप अनुमानाभास का ज्ञान हो जाता है।

अब पक्षाभास का स्वरूप कहते हैं –

तत्रानिष्टादिः पक्षाभासः ॥ 12 ॥

सूत्रान्वय : तत्र = उसमें, अनिष्टादिः = अनिष्ट आदि, बाधितः, पक्षाभासः = पक्षाभास।

सूत्रार्थ : उनमें अनिष्ट आदि (बाधित, सिद्ध) को पक्षाभास कहते हैं।

संस्कृतार्थ : अनिष्टो, बाधितः सिद्धश्च पक्षः पक्षाभासः प्रोच्यते।

टीकार्थ : अनिष्ट, बाधित और सिद्ध को पक्षाभास कहते है।

अब अनिष्टपक्षाभास का उदाहरण कहते हैं –

अनिष्टो मीमांसकस्यानित्यः शब्दः ॥ 13 ॥

सूत्रान्वय : अनिष्टः = अनिष्ट, मीमांसकस्य = मीमांसक के, अनित्यः = अनित्य, शब्दः = शब्द।

सूत्रार्थ : मीमांसक का कहना है कि शब्द अनित्य है, यह अनिष्ट पक्षाभास है।

संस्कृतार्थ : मीमांसकेन शब्दो नित्यो मतः। अतस्तस्य शब्दोऽनित्यः इति कथनम् अनिष्टः पक्षाभासो जायते।

टीकार्थ : मीमांसक के द्वारा शब्द को नित्य माना गया है। इसलिए उसके प्रति शब्द अनित्य ऐसा कहना अनिष्टपक्षाभास होता है।

विशेष : मीमांसक लोग नित्य को मानते हैं, अतः उन्हें नित्य इष्ट है परन्तु उसके लिए अनित्य कहना ये अनिष्ट पक्षाभास हो जायेगा।

अब सिद्धपक्षाभास के उदाहरण को कहते हैं –

सिद्धः श्रावणः शब्दः ॥ 14 ॥

सूत्रान्वय : सिद्धः = सिद्ध, श्रावणः = सुना जाने वाला, शब्दः = शब्द।

सूत्रार्थ : शब्द श्रवणेन्द्रिय का विषय है, यह सिद्धपक्षाभास है।

संस्कृतार्थ : शब्दः श्रावणः इति पक्षः सिद्धपक्षाभासो विज्ञेयः। यतः शब्दः श्रुतः अतः श्रावणः सिद्ध एव विद्यते, पुनः पक्षं मत्वा सिद्ध करणं निरर्थकमेव।

टीकार्थ : शब्द कर्ण इन्द्रिय का विषय है इस प्रकार सिद्ध पक्षाभास जानना चाहिए। जिससे शब्द सुना जाता है, इसलिए श्रावण सिद्ध है ही। पुनः शब्द को पक्ष मानकर सिद्ध करना निरर्थक है।

अब बाधितपक्षाभास के भेदों को कहते हैं –

बाधितः प्रत्यक्षानुमानागमलोकस्ववचनैः ॥ 15 ॥

सूत्रान्वय : बाधितः = बाधित के, प्रत्यक्षानुमानागमलोकस्ववचनैः = प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, लोक, स्ववचनैः = स्ववचनों के द्वारा।

सूत्रार्थ : बाधितपक्षाभास प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, लोक और स्ववचन से बाधित होता है।

विशेष : प्रत्यक्षबाधित, अनुमानबाधित, आगमबाधित, लोकबाधित और स्ववचन बाधित ये बाधितपक्षाभास के पाँच भेद हैं।

अब प्रत्यक्षबाधित का उदाहरण कहते हैं –

तत्र प्रत्यक्षबाधितो यथा, अनुष्णोऽग्नि द्रव्यत्वाज्जलवत् ॥ 16 ॥

सूत्रान्वय : तत्र = उनमें, प्रत्यक्षबाधितो = प्रत्यक्षबाधित, यथा = जैसे,

अनुष्णः = उष्ण नहीं है, अग्निः = आग, द्रव्यत्वात् = द्रव्य होने से, जलवत् = पानी के समान।

सूत्रार्थ : उनमें से प्रत्यक्षबाधित पक्षाभास का उदाहरण। जैसे – अग्नि उष्णता रहित है, क्योंकि यह द्रव्य है। जैसे–जल।

संस्कृतार्थ : अनुष्णोऽग्निः द्रव्यत्वात् जलवत्। अत्र अग्निरनुष्णः प्रतीयते। अतोऽयं पक्षः स्पर्शानेन प्रत्यक्षेण बाधितो विद्यते।

टीकार्थ : अग्नि ठण्डी होती है, क्योंकि वह द्रव्य है। जैसे – जल। इसमें अग्नि उष्ण नहीं है ऐसा कहना, इसलिए यह पक्ष स्पर्शन प्रत्यक्ष से बाधित है।

विशेष : किन्तु स्पर्शन प्रत्यक्ष से अग्नि उष्ण स्पर्श वाली ही अनुभव की जाती है, इसलिए प्रत्यक्षबाधित पक्षाभास का उदाहरण है।

अब अनुमानबाधितपक्षाभास का उदाहरण कहते हैं –

अपरिणामी शब्दः कृतकत्वात्॥ 17॥

सूत्रान्वय : अपरिणामी = अपरिणामी, शब्दः = शब्द, कृतकत्वात् = कृतक (किया जाने वाला) होने से।

सूत्रार्थ : शब्द अपरिणामी है, कृतक होने से।

संस्कृतार्थ : अपरिणामी शब्दः कृतकत्वात्। यो यः कृतको विद्यते सः सः अपरिणामी, यथा घटः। अनुमानबाधितपक्षाभासोदाहरणमिदम्। यतोऽत्र पक्षे शब्दः परिणामी, कृतकत्वात्, यो यः कृतकः स सः परिणामी, यथा घटः इत्यनुमानेन बाधा आयाति।

टीकार्थ : अपरिणामी शब्द है, किया जाने वाला होने से (जो जो किया जाने वाला है, वह वह अपरिणामी होता है। जैसे – घड़ा। यह अनुमान बाधितपक्षाभास का उदाहरण है। इससे इस पक्ष में शब्द परिणामी है, कृतक होने से, जो जो कृतक होता है, वह वह परिणामी होता है। जैसे–घड़ा। इस प्रकार अनुमान से बाधा आती है।

सूत्र में पक्ष (शब्द अपरिणामी) यह पक्ष कृतक इस हेतु से बाधित है

क्योंकि कृतक हेतु से तो परिणामीपने की ही सिद्धि होती है।

अब आगमबाधितपक्षाभास का उदाहरण कहते हैं-

प्रेत्यासुखदो धर्मः पुरुषाश्रितत्वादधर्मवत्॥ 18॥

सूत्रान्वय : प्रेत्य = परलोक में, असुखदः = सुख नहीं हैं (दुःख देने वाला है) धर्मः = पुण्य, पुरुषाश्रितत्वात् = पुरुषाश्रित होने से, अधर्मवत् = अधर्म के समान।

सूत्रार्थ : धर्म परलोक में दुःख देने वाला होता है, क्योंकि वह पुरुष के आश्रित है, जैसे - अधर्म।

संस्कृतार्थ : प्रेत्यासुखदो धर्मः पुरुषाश्रितत्वात्, अधर्मवत्। यो यः पुरुषाश्रितः स सः दुःखदायी, यथा अधर्मः। अत्रायं पक्षः आगमबाधितो वर्तते। यतः आगमे धर्मः सुखदायी प्रोक्तः अधर्मश्च दुःखदायी प्रोक्तः। यद्यपि द्वावपीमौ पुरुषाश्रितो, तथापि भिन्नस्वभावौ विद्येते।

टीकार्थ : धर्म परलोक में दुःख देने वाला है। पुरुषाश्रित होने से, अधर्म के समान। जो - जो पुरुषाश्रित होता है वह-वह दुःखदायी होता है जैसे - अधर्म। इसमें यह पक्ष आगमबाधित है, क्योंकि आगम में धर्म को सुखदायी कहा गया है और अधर्म को दुःखदायी कहा गया है, यद्यपि दोनों पुरुष के आश्रित हैं तथापि ये भिन्न स्वभाव वाले हैं।

विशेष : पुरूष का आश्रितपना समान होने पर भी आगम में धर्म को परलोक में सुख का कारण कहा गया है।

अब लोकबाधितपक्षाभास का उदाहरण कहते हैं -

शुचि नरशिरःकपालं प्राण्यंगत्वाच्छंखशुक्तिवत्॥ 19॥

सूत्रान्वय : शुचिः = पवित्र, नरशिरः = मनुष्य के सिर का, कपालं = कपाल, प्राणी = जीव का, अङ्गत्वात्= अंग होने से, शंखशुक्तिवत् = शंख, सीप के समान।

सूत्रार्थ : मनुष्य के सिर का कपाल पवित्र है, प्राणी का अंग होने से जैसे शंख और सीप।

संस्कृतार्थ : शुचि नरशिरः कपालं प्राण्यंगत्वात्, शंखशुक्तिवत्। यञ्च प्राण्यंगं तत् पवित्रं, यथा शंखः शुक्तिश्चेति। अत्रायं पक्षो लोकबाधितो विद्यते। यतो लोके प्राण्यंगत्वेऽपि किंचिद् वस्तु पवित्रं किञ्चिच्चापवित्रं मतम्।

टीकार्थ : मनुष्य का सिर पवित्र होता है, प्राणी का अंग होने से शंख शुक्ति के समान और जो प्राणी का अंग है वह पवित्र होता है, जैसे-शंख और सीप। इसमें यह पक्ष लोकबाधित है। लोक में प्राणी का अंग होने पर कोई वस्तु पवित्र होती है और कोई अपवित्र होती है, ऐसा माना गया है।

विशेष : लोक में प्राणी का अंग समान होने पर भी किसी वस्तु को पवित्र माना गया है और किसी को अपवित्र। किन्तु नर-कपाल आदि को जो अपवित्र ही माना गया है, अतः यह लोकबाधितपक्षाभास का उदाहरण है।

अब स्ववचनबाधितपक्षाभास का उदाहरण कहते हैं -

माता मे बन्ध्या, पुरुषसंयोगेऽप्यगर्भत्वात्
प्रसिद्धबन्ध्यावत्॥ 20॥

सूत्रान्वय : माता = माँ, मे = मेरी, बंध्या = बाँझ, पुरुषसंयोगे = पुरुष का संयोग होने पर, अपि=भी, अगर्भत्वात्=गर्भ नहीं होने से, प्रसिद्ध बन्ध्यावत् = प्रसिद्ध बंध्या के समान।

सूत्रार्थ : मेरी माता बंध्या है, क्योंकि पुरुष का संयोग होने पर भी उसके गर्भ नहीं रहता। जैसे - प्रसिद्ध बन्ध्या स्त्री।

संस्कृतार्थ : माता मे बन्ध्या, पुरुषसंयोगेऽप्यगर्भत्वात् प्रसिद्धबन्ध्यावत्। स्वस्मिन् पुत्रत्वं जनन्यां मातत्वेवा स्वीकुर्वन्नपि कथयति, यन्माता मे बन्ध्या। अतोऽत्रायं पक्षः स्ववचनबाधितो विद्यते।

टीकार्थ : मेरी माता बन्ध्या है, पुरुष का संयोग होने पर भी गर्भ नहीं रहता, प्रसिद्ध बन्ध्या के समान। अपने में पुत्रपने का, जननी में मातापने को स्वीकार करता हुआ भी कहता है कि जो मेरी माता है वह बन्ध्या है। इसलिए इसमें यह पक्ष स्ववचनबाधित है।

अब हेत्वाभासों के भेदों को कहते हैं –

हेत्वाभासा असिद्धविरुद्धानैकान्तिकाकिञ्चित्कराः ॥ 21 ॥

सूत्रान्वय : हेत्वाभासाः = हेत्वाभास के, असिद्ध विरुद्धानैकान्तिक-किञ्चित्कराः = असिद्ध, विरूद्ध, अनैकान्तिक, अकिञ्चित्कर।

सूत्रार्थ : असिद्व, विरूद्ध, अनैकान्तिक और अकिञ्चित्कर ये चार हेत्वाभास के भेद हैं।

संस्कृतार्थ : असिद्धः, विरुद्धः, अनैकान्तिकः, अकिञ्चित्करश्चेति चत्वारो हेत्वाभासा विद्यन्ते।

टीकार्थ : असिद्ध, विरुद्ध, अनैकान्तिक और अकिञ्चित्कर के भेद से हेत्वाभास चार प्रकार का है।

अब क्रमप्राप्त असिद्ध हेत्वाभास का स्वरूप कहते हैं –

असत्सत्तानिश्चयोऽसिद्धः ॥ 22 ॥

सूत्रान्वय : असत्सत्ता = जिस हेतु की सत्ता का, अभाव हो, अनिश्चयः = निश्चय न हो, असिद्ध = असिद्ध है।

सूत्रार्थ : जिस हेतु की सत्ता का अभाव हो अथवा निश्चय न हो उसे असिद्ध हेत्वाभास कहते हैं।

संस्कृतार्थ : स्वरूपासिद्धः सन्दिग्धासिद्धश्चेति द्वौ असिद्धहेत्वाभासभेदौ स्तः। तत्राविद्यमानसत्ताको हेतुः स्वरूपासिद्धः अविद्यमाननिश्चयो वा हेतुः सन्दिग्धासिद्धो हेत्वाभासो विज्ञेयः।

टीकार्थ : स्वरूपासिद्ध और संदिग्धासिद्ध ये दो भेद असिद्ध हेत्वाभास के हैं। उसमें अविद्यमान सत्ता का (जिस हेतु की सत्ता का अभाव है) उस हेतु को स्वरूपासिद्ध हेत्वाभास कहते हैं और पक्ष में जिस हेतु का निश्चय हो उसे सन्दिग्धासिद्ध हेत्वाभास कहते हैं।

अब असिद्ध हेत्वाभास के प्रथमभेद स्वरूपासिद्ध हेत्वाभास को कहते हैं –

अविद्यमानसत्ताकः परिणामी शब्दः चाक्षुषत्वात् ॥ 23 ॥

सूत्रान्वय : अविद्यमानसत्ताः = अविद्यमान सत्ता वाले का, परिणामी

शब्दः = शब्द परिणामी है, चाक्षुषत्वात् = चाक्षुष होने से।

सूत्रार्थ : शब्द परिणामी है, क्योंकि चाक्षुष है, यह अविद्यमान सत्ता वाले स्वरूपासिद्ध हेत्वाभास का उदाहरण हैं।

संस्कृतार्थ : परिणामी शब्दश्चाक्षुषत्वात्। अत्रायं चाक्षुषत्वं हेतुः स्वरूपासिद्धो विद्यते। यतः शब्दो नेत्रान्नो ज्ञायते, किन्तु कर्णाज्ज्ञायते अतोऽविद्यमानसत्ताकत्वेन स्वरूपासिद्धो जातः।

टीकार्थ : शब्द परिणामी है चाक्षुष होने से। इसमें यह चाक्षुषपना हेतु स्वरूप से ही असिद्ध है। क्योंकि शब्द नेत्र से नहीं जाना जाता किन्तु कर्ण से जाना जाता है इसलिए अविद्यमान सत्तावाला होने से स्वरूपासिद्ध है।

अब इस हेतु के असिद्धपना कैसा है, इसके विषय में कहते हैं –

स्वरूपेणासत्वात्॥ 24॥

सूत्रान्वय : स्वरूपेण = स्वरूप से, असत्वात् = असत् होने से।

सूत्रार्थ : शब्द का चाक्षुष होना स्वरूप से ही असिद्ध है।

संस्कृतार्थ : शब्दः कर्णेन ज्ञायते चक्षुषा नो। अतः शब्दस्य चाक्षुषत्व व्यावर्णनं स्वरूपेणैव नोचितम्।

टीकार्थ : शब्द कर्ण इन्द्रिय से जाना जाता है, चक्षु इन्द्रिय से नहीं। इसलिए शब्द के चाक्षुषपने का कथन स्वरूप से ही ठीक नहीं है।

अब आचार्य असिद्ध हेत्वाभास के दूसरे भेद को कहते हैं –

अविद्यमाननिश्चयो मुग्धबुद्धिं प्रत्यग्निरत्रधूमात्॥ 25॥

सूत्रान्वय : अविद्यमाननिश्चयः = अविद्यमान निश्चयवाले, मुग्धबुद्धिं प्रति = मुग्ध बुद्धि पुरुष के प्रति, अग्निः = अग्नि, यत्र = यहाँ, धूमात् = धूम होने से।

सूत्रार्थ : मुग्ध बुद्धि पुरुष के प्रति कहना यहाँ अग्नि है धूम होने से। यह अविद्यमान निश्चय वाले संदिग्धासिद्ध हेत्वाभास का उदाहरण है।

संस्कृतार्थ : मुग्धम्प्रति अग्निरत्र धूमात् इति कथनम्, संदिग्धा सिद्धोहेत्वाभासोः विज्ञेयः।

टीकार्थ : अज्ञानी पुरुष से कहना कि यहाँ अग्नि है, धूम होने से, इस प्रकार का कथन उनके लिए असिद्धहेत्वाभास है।

अब इस हेतु की भी असिद्धता कैसे है, ऐसी शंका होने पर कहते हैं –

तस्य वाष्पादिभावेन भूतसंघाते सन्देहात्॥ 26॥

सूत्रान्वय : तस्य = उसके, वाष्पादि भावेन = वाष्प (भाप) आदि के रूप से, भूतसंघाते = भूतसंघात में, संदेहात् = संदेह होने से।

सूत्रार्थ : क्योंकि उसे भूतसंघात में भाप आदि के रूप से संदेह हो सकता है।

नोट : भूतसंघात –चूल्हे से उतारी हुई बटलोई, क्योंकि उसमें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु चारों रहते हैं और भाप भी निकलती रहती है।

संस्कृतार्थ : मुग्धबुद्धिं प्रति धूमहेतुरतः स्वरूपासिद्धो हेत्वाभासो विद्यते, यतस्तस्य भूतसंघाते वाष्पादिदर्शनात् संदेह उत्पद्यते। यदत्र बह्निः वर्तते, वर्तेत वा।

टीकार्थ : अज्ञानी मूर्ख के प्रति धूम हेतु इसलिए सन्दिग्धासिद्ध हेत्वाभास है, जिससे उसके भूतसंघात में वाष्पादि देखने से संदेह हो जाता है कि यहाँ भी अग्नि है अथवा होगी।

अब असिद्धहेत्वाभास का और भी दृष्टान्त कहते हैं –

सांख्यम्प्रति परिणामी शब्दः कृतकत्वात्॥ 27॥

सूत्रान्वय : सांख्यम्प्रति = सांख्य के प्रति, शब्दः = शब्द, परिणामी = परिणामी, कृतकत्वात् = कृतक होने से।

सूत्रार्थ : सांख्य के प्रति कहना है कि शब्द परिणामी है क्योंकि वह कृतक है।

संस्कृतार्थ : परिणामी शब्दः कृतकत्वादिति कथनं सांख्यम्प्रत्यसिद्धो हेत्वाभासो विद्यते।

टीकार्थ : शब्द परिणामी है, कृतक होने से। इस प्रकार के कथन को सांख्य के प्रति कहना असिद्ध हेत्वाभास है।

अब आचार्य इस हेतु की असिद्धता में कारण बतलाते हैं –

तेनाज्ञातत्वात् ॥ 28 ॥

सूत्रान्वय : तेन = उसने, अज्ञातत्वात् = जाना ही नहीं है।

सूत्रार्थ : क्योंकि उसने कृतकपना जाना ही नहीं है।

संस्कृतार्थ : सांख्यसिद्धान्ते आविर्भावतिरोभावावेव प्रसिद्धौ नोत्पत्ति विनाशौ। अतः शब्दस्य कृतकत्वं तद्दृष्टौ असिद्धौ हेत्वाभासो जायते।

टीकार्थ : सांख्य के सिद्धान्त में अविर्भाव और तिरोभाव ही प्रसिद्ध हैं उत्पत्ति और विनाश नहीं है। इसलिए शब्द का कृतकपना उसकी दृष्टि में असिद्ध हेत्वाभास है।

विशेष : सांख्यमत में आविर्भाव (प्रकटपना) और तिरोभाव (अच्छादनपना) ही प्रसिद्ध है, उत्पत्ति आदि प्रसिद्ध नहीं है। किसी पदार्थ के कृतक होने का उसके यहाँ निश्चयन होने से असिद्धपना है।

अब आचार्य विरुद्ध हेत्वाभास को कहते हैं –

विपरीतनिश्चिताविनाभावो विरुद्धोऽपरिणामी शब्दः कृतकत्वात् ॥ 29 ॥

सूत्रान्वय : विपरीत = उल्टे पदार्थ के साथ, निश्चित= निश्चित, अविनाभावः = अविनाभाव, विरुद्ध = विरुद्ध, अपरिणामी = अपरिणामी, शब्दः = शब्द, कृतकत्वात् = कृतक होने से।

सूत्रार्थ : साध्य से विपरीत पदार्थ के साथ जिसका अविनाभाव निश्चित हो, उसे विरुद्धहेत्वाभास कहते हैं, जैसे शब्द अपरिणामी है, क्योंकि वह कृतक है।

संस्कृतार्थ : साध्यविरुद्धेन (विपक्षेण) सह निश्चिताविनाभावो हेतुः विरुद्धो हेत्वाभासो निरूप्यते। यथा अपरिणामी शब्दः कृतकत्वात्। अत्रास्य हेतोरपरिणामित्वविरुद्धेन परिणामित्वेन सह व्याप्तिः विद्यते, अतोऽयं हेतुः विरुद्धहेत्वाभासः सुसिद्धः।

टीकार्थ : साध्य से विपरीत पदार्थ के साथ जिन हेतु का अविनाभाव

निश्चित है वह विरुद्ध हेत्वाभास है – अपरिणामी शब्द है, कृतक होनें से। यहाँ पर इस हेतु का अपरिणामी के विरुद्ध परिणामी के साथ व्याप्ति है। इसलिए यह हेतु विरुद्धहेत्वाभास अच्छी तरह से सिद्ध है।

विशेष : इस अनुमान में कृतकत्व हेतु अपरिणामी के विरोधी परिणाम के साथ व्याप्त है, इसलिए यह विरुद्धहेत्वाभास है।

अब आचार्य अनैकान्तिक हेत्वाभास का स्वरूप कहते हैं –

विपक्षेऽप्यविरुद्धवृत्तिरनैकान्तिकः ॥ 30 ॥

सूत्रान्वय : विपक्षे = विपक्ष में, अपि = भी, अविरुद्धवृत्ति = अविरुद्ध रूप से होना, अनैकान्तिकः = अनैकान्तिक है।

सूत्रार्थ : जिसका विपक्ष में भी रहना अविरुद्ध है, अर्थात् जो हेतु पक्ष सम्पदा के समान विपक्ष में भी बिना किसी विरोध के रहता है, उसे अनैकान्तिक हेत्वाभास कहते हैं।

नोट : सूत्र पठित अपि शब्द से न केवल पक्ष–सपक्ष में रहने वाला हेतु लेना किन्तु विपक्ष में भी रहने वाले हेतु का ग्रहण करना चाहिए।

संस्कृतार्थ : पक्षे, सपक्षे वा विद्यमानोऽपि विपक्षवृत्तिः हेतुरनैकान्तिको हेत्वाभासः।

टीकार्थ : पक्ष में अथवा सपक्ष में विद्यमान होकर भी विपक्षवृत्ति वाला हेतु अनैकान्तिक हेत्वाभास है।

विशेष : इस हेतु के दो भेद हैं –1 निश्चितविपक्षवृत्ति, 2 शंकितविपक्ष वृत्ति।

284. पक्ष किसे कहते हैं ?

संदिग्ध साध्य वाले धर्मी को पक्ष कहते हैं।

285. सपक्ष किसे कहते हैं ?

साध्य के समान धर्मी को सपक्ष कहते हैं।

286. विपक्ष किसे कहते हैं ?

साध्य के विरोधी धर्मी को विपक्ष कहते हैं।

287. हेतु का गुण व दोष क्या है ?

हेतु का पक्ष और सपक्ष में रहना तो गुण है, परन्तु विपक्ष में रहना दोष है। अब आचार्य निश्चित विपक्षवृत्ति का उदाहरण कहते हैं –

निश्चितवृत्तिरनित्यः शब्दः प्रमेयत्वात् घटवत्॥ 31॥

सूत्रान्वय : निश्चितवृत्तिः = निश्चितवृत्ति, अनित्यः = अनित्य, शब्दः = शब्द, प्रमेयत्वात् = प्रमेय होने से, घटवत् = घट के समान।

सूत्रार्थ : शब्द अनित्य है, प्रमेय होने से। जैसे–घट। यह निश्चित विपक्षवृत्ति अनैकान्तिक हेत्वाभास का उदाहरण है।

संस्कृतार्थ : अनित्यः शब्दः प्रमेयत्वाद् घटवत्। अयं प्रमेयो हेतुः पक्षे शब्दे सपक्षे घटे वा विद्यमानोऽपि विपक्षे आकाशेऽपि तिष्ठति, अतोऽनैकान्तिकः प्रोच्यते। विपक्षे च तस्य वृत्तिः निश्चित अतो निश्चितविपक्षवृत्तिरुच्यते।

टीकार्थ : शब्द अनित्य है, प्रमेय होने से, घट के समान। यह प्रमेय हेतु पक्ष में (शब्द में) सपक्ष में (घट में) अथवा विद्यमान होने पर भी विपक्ष आकाश में भी उसकी वृत्ति निश्चित हुई। इसलिए, निश्चित विपक्षवृत्ति हेतु कहते हैं।

अब आचार्य प्रमेयत्व हेतु की भी विपक्ष में वृत्ति कैसे निश्चित है, इसी का उत्तर देते हैं –

आकाशे नित्येऽप्यस्य निश्चयात्॥ 32॥

सूत्रान्वय : आकाशे = आकाश में, नित्ये = नित्य में, अपि = भी, अस्य = इसका, निश्चयात् =निश्चिय होने से।

सूत्रार्थ : क्योंकि नित्य आकाश में भी इस प्रमेयत्व हेतु के रहने का निश्चय है।

संस्कृतार्थ : विपक्षे नित्ये आकाशेऽप्यस्य प्रमेयत्व हेतोः निश्चयादयं निश्चितविपक्षवृत्तिरुच्यते।

टीकार्थ : नित्य आकाश विपक्ष में भी इस प्रमेयत्व हेतु के रहने का निश्चय है। इसलिए प्रमेयत्व हेतु निश्चित विपक्षवृत्ति है।

विशेष : प्रमेयत्व हेतु पक्ष शब्द में और सपक्ष घट में रहता हुआ अनित्य के विपक्षी नित्य आकाश में भी रहता है, क्योंकि आकाश भी निश्चत रूप से प्रमाण का विषय है।

अब आचार्य शंकित विपक्षवृत्ति अनैकान्तिक हेत्वाभास को कहते हैं -

शंकितवृत्तिस्तु नास्ति सर्वज्ञो वक्तृत्वात्॥ 33॥

सूत्रान्वय : शंकितवृत्तिः = शंकित विपक्षवृत्ति, नास्ति = नहीं है, सर्वज्ञः = सर्वज्ञ, वक्तृत्वात् =वक्ता होने से।

सूत्रार्थ : सर्वज्ञ नहीं है, क्योंकि वह वक्ता है अर्थात् बोलने वाला होने से, यह शंकित विपक्षवृत्ति अनैकान्तिक हेत्वाभास का उदाहरण है।

संस्कृतार्थ : नास्ति सर्वज्ञो वक्तृत्वात्। सत्यपि वक्तृत्वे सर्वज्ञत्वस्या विरोधः। अर्थादस्य हेतोः विपक्षे वृत्तिः सम्भाव्यते, अत एवायं हेतुः शंकित विपक्षवृत्तिर्विद्यते।

टीकार्थ : सर्वज्ञ नहीं है, वक्ता होने से। वक्तापना रहने पर भी सर्वज्ञपने का अविरोधपना है। अर्थात् इस हेतु का विपक्ष में वृत्ति संभव होने से इसलिए यह हेतु शंकितविपक्षवृत्ति है।

अब इस वक्तत्व हेतु का भी विपक्ष में रहना कैसे शंकित है, ऐसी आशंका होने पर उत्तर सूत्र कहते हैं -

सर्वज्ञत्वेन वक्तृत्वाविरोधात्॥ 34॥

सूत्रान्वय : सर्वज्ञत्वेन = सर्वज्ञ के साथ, वक्तृत्व = वक्तापने का, अविरोधात् =विरोध नहीं है।

सूत्रार्थ : क्योंकि सर्वज्ञपने के साथ वक्तापने का कोई विरोध नहीं है।

संस्कृतार्थ : सर्वज्ञत्वेन वक्तृत्वाविरोधादयं हेतुः सर्वज्ञसद्भावरूपे विपक्षेऽपि सम्भवेत्। अत एवायं शंकित विपक्ष वृत्तिसंज्ञा साधिकैव।

टीकार्थ : सर्वज्ञपने के साथ वक्तापने का कोई विरोध नहीं है, इसलिए सर्वज्ञ के सद्भाव रूप विपक्ष में भी यह हेतु रह सकता है। इसलिए इसे हेतु की शंकित विपक्ष वृत्ति संज्ञा सार्थक ही है।

विशेष : सर्वज्ञता के साथ वक्तापने का अविरोध इसलिए है कि ज्ञान के उत्कर्ष में वचनों का अपकर्ष नहीं देखा जाता है प्रत्युत प्रकर्षता ही देखी जाती है।

अब अकिञ्चित्कर हेत्वाभास के स्वरूप को कहते हैं -

सिद्धे प्रत्यक्षादिबाधिते च साध्ये हेतुरकिञ्चित्करः ॥ 35 ॥

सूत्रान्वय : सिद्धे = सिद्ध होने पर, प्रत्यक्षादिबाधिते = प्रत्यक्षादि प्रमाणों से बाधित होने पर, च = और, साध्ये = साध्य में, हेतुः = हेतु, अकिञ्चित्करः = अकिञ्चित्कर।

सूत्रार्थ : साध्य के सिद्ध होने पर तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणों से बाधित होने पर प्रयुक्त हेतु अकिञ्चित्कर हेत्वाभास कहलाता है।

संस्कृतार्थ : साध्ये सिद्धे प्रत्यक्षादिबाधिते वा सति हेतुः किञ्चिदपि कर्तुं नो शक्नुयात् अतएव सोऽकिञ्चित्करः हेत्वाभासः प्रोच्यते।

टीकार्थ : साध्य के सिद्ध होने पर तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणों से बाधित होने पर हेतु कुछ भी नहीं कर सकता, इसलिए वह अकिञ्चित्कर हेत्वाभास कहा जाता है।

विशेष : जब साध्य सिद्ध हो या प्रत्यक्षादि किसी प्रमाण से बाधित हो तब उसकी सिद्धि के लिए जो भी हेतु दिया जाए वह साध्य की कुछ भी सिद्धि नहीं करता है, इसलिए उसे अकिञ्चित्कर कहते हैं।

अब सिद्धसाध्य अकिञ्चित्कर हेत्वाभास का उदाहरण देते हैं -

सिद्धः श्रावणः शब्दः शब्दत्वात् ॥ 36 ॥

सूत्रान्वय : सिद्धः = सिद्ध, श्रावणः = कर्णइन्द्रिय का, शब्दः = शब्द, शब्दत्वात् = शब्द होने से।

सूत्रार्थ : शब्द कर्ण इन्द्रिय का विषय होता है, इसलिए सिद्ध है, शब्द होने से।

संस्कृतार्थ : श्रावणः शब्दः शब्दत्वात्। अत्रायं हेतुः सिद्धा साध्योऽकिञ्चित्कर हेत्वाभासो विद्यते।

टीकार्थ : शब्द श्रावण है, शब्द होने से। यहाँ पर यह हेतु सिद्ध, साध्य अकिञ्चित्करहेत्वाभास है।

अब इस शब्दत्व हेतु के अकिञ्चित्करता कैसे हैं, उसे कहते हैं –

किञ्चिदकरणात्॥ 37॥

सूत्रान्वय : किञ्चित् = कुछ भी, अकरणात् = नहीं कर सकता है।

सूत्रार्थ : कुछ भी नहीं करने से शब्दत्वहेतु अकिञ्चित्कर हेत्वाभास है।

संस्कृतार्थ : अत्रानेनशब्दत्वेन हेतुना किञ्चिदपि नो साध्यते। यतः शब्दस्य श्रावणज्ञानेन ज्ञानं सिद्धमेव विद्यते।

टीकार्थ : यहाँ पर यह शब्दत्वहेतु कुछ भी नहीं कर सकता है। क्योंकि शब्द का कर्ण इन्द्रिय से जाना जाना सिद्ध ही है।

विशेष : शब्द का कान से सुना जाना तो पहले से सिद्ध ही है, फिर भी उसे सिद्ध करने के लिए जो शब्दत्व हेतु दिया गया है, वह व्यर्थ है क्योंकि उससे साध्य की कुछ भी सिद्धि नहीं होती है। (अतः अकिञ्चित्करहेत्वाभास है।)

अब शब्दत्वहेतु के अकिञ्चित्करत्व की पुष्टि करते हैं –

यथाऽनुष्णोऽग्निर्द्रव्यत्वादित्यादौ किञ्चित्कर्तुमशक्यत्वात्॥ 38॥

सूत्रान्वय : यथा = जैसे, अनुष्णः = गर्म नहीं है, अग्निः = आग, द्रव्यत्वात् = द्रव्य होने से, इत्यादौ = इत्यादिक में, किञ्चित् = कुछ भी, कर्त्तुम् = करने के लिए, अशक्यत्वात् = शक्य न होने से।

सूत्रार्थ : जिस प्रकार अग्नि ठण्डी होती है क्योंकि वह द्रव्य है इत्यादि अनुमानों में कुछ भी नहीं कर सकने से द्रव्यत्वादि हेतु अकिञ्चित्कर कहे जाते हैं।

संस्कृतार्थ : यथाऽनुष्णोऽग्नि र्द्रव्यत्वात् इत्यादिष्वनुमानेषु किञ्चित् कर्तुमशक्यत्वात् द्रव्यत्वादयो हेत्वोऽकिञ्चित्कराः प्रोच्यन्ते तथैवोपर्युक्त दृष्टान्ते शब्दहेतुरप्यकिञ्चित्करो विज्ञेयः।

टीकार्थ : जैसे अग्नि ठण्डी होती है द्रव्य होने से इत्यादिक अनुमानों में कुछ भी न कर सकने से द्रव्यत्वादि हेतु अकिञ्चित्कर कहे जाते हैं, उसी प्रकार ऊपर के दृष्टान्त में भी जानना चाहिए।

विशेष : अग्नि उष्ण नहीं है, यह बात प्रत्यक्षप्रमाण से बाधित है फिर भी उसे सिद्ध करने के लिए जो द्रव्यत्व हेतु दिया गया, वह अग्नि को उष्णता रहित सिद्ध नहीं कर सकता है।

अब अकिञ्चित्कर हेत्वाभास के प्रयोग की उपयोगिता कहते हैं -

लक्षणे एवासौ दोषो व्युत्पन्नप्रयोगस्य पक्षदोषेणैवदुष्टत्वात् ॥ 39 ॥

सूत्रान्वय : लक्षणे = लक्षण में, एव = ही, असौ =वह, दोषः = दोष, व्युत्पन्नप्रयोगस्य = व्युत्पन्न का प्रयोग के, पक्षदोषेण = पक्ष के दोष से, एव =ही, दुष्टत्वात् = दूषित होने से।

सूत्रार्थ : लक्षण की अपेक्षा से ही यह दोष है क्योंकि व्युत्पन्न पुरुषों का प्रयोग पक्ष के दोषों से ही पुष्ट हो जाता है।

संस्कृतार्थ : अकिञ्चित्कर हेत्वाभासविचारः शास्त्रे एव जायते न तु वादे। यतो व्युत्पन्नप्रयोगः पक्षदोषणैव दूष्यते, तत्र हेतु दोषस्य प्राधान्यं नो विद्यते।

टीकार्थ : अकिञ्चित्कर हेत्वाभास का विचार शास्त्रकाल में ही होता है, वाद काल में नहीं, क्योंकि व्युत्पन्न पुरुषों का प्रयोग पक्ष के दोषों से ही दूषित हो जाता है।

विशेष : शिष्यों को शास्त्र के पठन-पाठनकाल में ही अकिञ्चित्कर हेत्वाभास को दोष रूप कहा गया है, शास्त्रार्थ करने के समय नहीं क्योंकि शास्त्रार्थ के समय विद्वान् लोगों का ही अधिकार होता है।

अब अन्वय दृष्टान्ताभासों के भेद कहते हैं -

दृष्टान्ताभासा अन्वयेऽसिद्धसाधनोभयाः ॥ 40 ॥

सूत्रान्वय : दृष्टान्ताभासा = दृष्टान्ताभास के, अन्वये = अन्वय में, असिद्ध = असिद्ध, साधन = साधन, उभयाः = दोनों।

सूत्रार्थ : अन्वय दृष्टान्ताभास के तीन भेद हैं - साध्य विकल, साधन

विकल और उभयविकल।

संस्कृतार्थ : साध्य विकलः साधनविकलः उभयविकलश्चेति त्रयोऽन्वय दृष्टान्ताभासभेदाः विद्यन्ते।

टीकार्थ : साध्यविकल, साधनविकल और उभयविकल इस प्रकार तीन अन्वय दृष्टान्ताभास के भेद हैं।

अब अन्वयदृष्टान्ताभास के भेद कहते हैं –

अपौरुषेयः शब्दोऽमूर्तत्वादिन्द्रियसुखपरमाणुघटवत्॥ 41॥

सूत्रान्वय : अपौरुषेयः = अपौरुषेय, शब्दः = शब्द, अमूर्तत्वात् = अमूर्त होने से, इन्द्रियसुख = इन्द्रियसुख, परमाणु = परमाणु, घटवत् = घड़े के समान।

सूत्रार्थ : शब्द अपौरुषेय है, अमूर्त होने से, इन्द्रिय सुख, परमाणु और घट के समान।

संस्कृतार्थ : असिद्धसाध्यस्यान्वयदृष्टान्ताभासस्योदाहरणम् शब्दोऽ पौरुषेयः अमूर्तत्वात इन्द्रियजन्यसुखवत्। अत्रेन्द्रियसुखस्य पौरुषेयत्वाद् असिद्ध साध्यत्वम्।

अथ च पूर्वोक्तानुमाने परमाणुः असिद्धसाधनान्वयदृष्टान्ताभासो भवति। परमाणोः अमूर्तत्वाभावादसिद्धसाधनत्वम्।

किञ्च–पूर्वोक्तानुमाने घटोऽसिद्धोभयान्वयदृष्टान्ताभासो जायते। घटस्य अपौरुषेयत्वाभावात् अमूर्तिकत्वाभावाच्चासिद्धोभयत्वम्।

टीकार्थ : असिद्धसाध्य अन्वयदृष्टान्ताभास का उदाहरण–शब्द अपौरुषेय है, अमूर्त होने से, जैसे–इन्द्रियजन्य सुख के समान। यहाँ पर इन्द्रिय सुख के पौरुषेय होने से असिद्धसाध्यपना है और अब पूर्व में कहे गए अनुमान में परमाणु असिद्धसाधनान्वय दृष्टान्ताभास होता है, क्योंकि परमाणु के अमूर्तपने का अभाव सिद्ध होने से असिद्धसाधनपना है और क्या पूर्व में कहे गए अनुमान में घड़ा असिद्ध उभयान्वय दृष्टान्ताभास होता है, क्योंकि घड़े में अपौरुषेयपने का अभाव होने से और अमूर्तिकपने का अभाव होने से असिद्धोभय है (असिद्ध

साध्य-साधन) अन्वय दृष्टान्ताभास है। इन्द्रियसुख में साधनत्व है, साध्यत्व नहीं। यह साध्यविकल दृष्टान्त है। परमाणु में साध्यत्व है, साधनत्व नहीं है, अतः यह दृष्टान्त साधन विकल है। घड़े में अपौरुषेय रूप साध्य और अमूर्तरूप साधन ये दोनों ही नहीं है। अतः यह दृष्टान्त उभय विकल है।

अब अन्वय दृष्टान्ताभास का उदाहरणान्तर कहते हैं -

विपरीतान्वयश्च यदपौरुषेयं तदमूर्तम्॥ 42॥

सूत्रान्वय : विपरीतान्वयः = विपरीत अन्वय, च = और, यत् = जो, अपौरुषेयं = अपौरुषेय, तत् = वह, अमूर्तम् = अमूर्त।

सूत्रार्थ : जो अपौरुषेय होता है, वह अमूर्त होता है, वह विपरीतान्वय नाम का दृष्टान्ताभास है।

संस्कृतार्थ : यत्र साध्यसाधनयोः वैपरीत्येन अन्वयव्याप्तिः प्रदर्शते सोऽन्वयदृष्टान्ताभासो निगद्यते। तद्यथा यदपौरुषेयं तदमूर्तम् यथा गगनम्। अत्र गगनस्यान्वयदृष्टान्ताभासत्वम् विद्युदादेः अपौरुषेयत्वेऽपि अमूर्तत्वाभावात्।

टीकार्थ : जहाँ साध्य और साधन में विपरीतता के साथ अन्वय व्याप्ति दिखलाई जाती है, वह अन्वयदृष्टान्ताभास कहलाता है। जैसे-जो अपौरुषेय होता है, वह अमूर्त होता है। जैसे-आकाश। इसमें आकाश के अन्वयदृष्टान्ताभासपना है, विद्युत आदि के अपौरुषेयपना होने पर भी अमूर्तपने का अभाव होने से।

विशेष : साधन के सद्भाव में अन्वय व्याप्ति है, किन्तु यहाँ पर अपौरुषेयरूप साध्य के सद्भाव में अमूर्तरूप हेतु का सद्भाव बतलाया गया है। अतः इसे विपरीतान्वय नाम का दृष्टान्ताभास कहा गया है।

अब अन्वय दृष्टान्ताभास की पुष्टि करते हैं -

विद्युदादिनाऽति प्रसङ्गेत्॥ 43॥

सूत्रान्वय : विद्युदादीना = बिजली आदि से, अतिप्रसङ्गेत् = अति प्रसंग होने से।

सूत्रार्थ : क्योंकि इसमें बिजली आदि से अतिप्रसंग दोष आता है।

संस्कृतार्थ : विपरीतान्वयव्याप्तिप्रदर्शनेन विद्युदादिनातिप्रसङ्गे भवेत्। अर्थात् विद्युत् अपौरुषेया विद्यतेऽतोऽमूर्ता भवियव्या। परन्तु सा आपौरुषेया सत्यपि मूर्तिका वर्तते, अतोऽत्र विपरीतान्वय व्याप्ति प्रदर्शनम् अन्वयदृष्टान्ताभासो विज्ञेयः।

टीकार्थ : उल्टी अन्वय व्याप्ति दिखलाने से बिजली आदि के अतिप्रसङ्ग होता है, अर्थात् बिजली आदि अपौरुषेय है, इसलिए अमूर्त होना चाहिए। परन्तु वह अपौरुषेय होती हुई मूर्तिक है, इसलिए यहाँ पर विपरीत अन्वयव्याप्ति दिखलाने से अन्वयदृष्टान्ताभास जानना चाहिए।

अब व्यतिरेक उदाहरणाभास को कहते हैं -

व्यतिरेकेऽसिद्धतद्व्यतिरेका, परमाण्विन्द्रिय सुखाकाशवत्॥ 44॥

सूत्रान्वय : व्यतिरेके = व्यतिरेक में, असिद्धव्यतिरेक = असिद्धसाध्य, असिद्धसाधन,असिद्धोभय, परमाणु=परमाणु, इन्द्रियसुख = इन्द्रिय सुख, आकाशवत् = आकाश के समान।

सूत्रार्थ : व्यतिरेकदृष्टान्ताभास साध्यविकल, साधनविकल, उभय विकल इनके उदाहरण परमाणु इन्द्रियसुख और आकाश हैं।

संस्कृतार्थ : व्यतिरेकदृष्टान्ताभासोऽपि त्रिविधः। असिद्धसाध्याभावः, असिद्धसाधनाभावः, असिद्धोभयाभावश्चेति। तद्यथा - शब्दः अपौरुषेयः, अमूर्तत्वात् अत्र अनुमाने परमाणुः साध्याभावविकलदृष्टान्ताभासः तस्यामूर्तत्वेऽपि पौरुषेयत्वाभावात्। अथ चात्रैवानुमाने इन्द्रियसुख साधनाभावविकलदृष्टान्तः तस्य पौरुषेयत्वेऽपि मूर्तत्वाभावात्। किञ्चित्रैवानुमाने आकाशम् उभयाभाव विकलद्रष्टान्तः आकाशस्य पौरुषेयत्वाभावान्मूर्तत्वाभावाच्च।

टीकार्थ : व्यतिरेकदृष्टान्ताभास के तीन भेद हैं - असिद्धसाध्य, असिद्धसाधन, असिद्धउभय। जैसे - शब्द अपौरुषेय है, अमूर्त होने से। इस अनुमान में परमाणु साध्य विकल दृष्टान्त है। उसके अमूर्त होने पर भी पौरुषेयपने का अभाव होने से और इस अनुमान में ही इन्द्रिय सुख साधनाभाव विकल दृष्टान्त है, क्योंकि उसके पौरुषेयपना होने पर भी मूर्त का अभाव होने से और क्या इस ही अनुमान में आकाश उभयाभाव विकल दृष्टान्ताभास है, क्योंकि

आकाश के पौरुषेयपने का अभाव है और मूर्तपने का भी अभाव है।

अब व्यतिरेक दृष्टान्ताभास का उदाहरणान्तर कहते हैं –

विपरीतव्यतिरेकश्च यन्नामूर्तं तन्नापौरुषेयम्॥ 45॥

सूत्रान्वय : विपरीतव्यतिरेकः = विपरीत व्यतिरेक, च = और, यत् = जो, अमूर्तं = अमूर्त, न = नहीं, तत् = वह, अपौरुषेयम् =अपौरुषेय।

सूत्रार्थ : जो अमूर्त नहीं है, वह अपौरुषेय नहीं है, यह विपरीत व्यतिरेक दृष्टान्ताभास का उदाहरण है।

संस्कृतार्थ : यत्र साधनाभावमुखेन साध्याभावः प्रदर्शते सोऽपि व्यतिरेकदृष्टान्ताभासो भवति। तद्यथा यन्नामूर्तं तन्नापौरुषेयं तथा घटः, इत्यत्र घटः व्यतिरेकदृष्टान्ताभासः विद्युदादेः मूर्तत्वेऽपि पौरुषेयत्वाभावात्।

टीकार्थ : जहाँ पर साधन के अभाव मुख से, साध्य का अभाव दिखाया जाता है, वह व्यतिरेकदृष्टान्ताभास होता है। जैसे – जो अमूर्त है, वह पौरुषेय नहीं है। जैसे-घट, इस प्रकार इसमें घट व्यतिरेक दृष्टान्ताभास है क्योंकि विद्युतादि के मूर्तपना होने पर भी पौरुषेयपने का अभाव होने से।

विशेष : व्यतिरेक व्याप्ति में सर्वत्र साध्य के अभाव में साधन का अभाव दिखाया जाता है, यहाँ पर वह विपरीत दिखायी गयी है अर्थात् साधन के अभाव में साध्य का अभाव बतलाया गया है, अतः इसे व्यतिरेक-दृष्टान्ताभास कहा गया है, क्योंकि इस प्रकार की व्याप्ति में भी विद्युत आदि से अतिप्रसंगदोष आता है।

अब बाल व्युत्पत्ति के लिए उदाहरण, उपनय, निगमन पहले स्वीकार किए गए हैं, यह बात पहले ही कही जा चुकी है। अब बालजनों के प्रति कुछ अवयवों के कम प्रयोग करने पर वे प्रयोगाभास हैं, यह कहते हैं –

बालप्रयोगाभासः पञ्चावयवेषु कियद्धीनता॥ 46॥

सूत्रान्वय : बालप्रयोगाभासः = बाल प्रयोगाभास, पञ्च = पाँच, अवयवेषु = अवयवों में, कियद्धीनता = कितने ही कम।

सूत्रार्थ : पाँच अवयवों में से कितने ही कम अवयवों का प्रयोग बाल

प्रयोगाभास है। (प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन)

संस्कृतार्थ : पञ्चभ्यो हीनैरनुमानावयवैः बालकानां यथार्थज्ञानं नो जायते, अतएव तान्प्रति पञ्चैवावयवाः प्रयोक्तव्या भवेयुः। अतो हीनावयवप्रयोगो बालप्रयोगाभासो भवेत्।

टीकार्थ : पंच अनुमान अंगों में से कितने ही कम अवयवों के द्वारा बालकों को वास्तविक ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिए ही उनके प्रति पाँच ही अवयव कहना चाहिए। इसलिए कम अवयव प्रयोग बालप्रयोगाभास है।

विशेषार्थ : अल्पज्ञानी पुरुषों को उक्त पाँचों अवयवों में से तीन या चार अवयवों के प्रयोग करने पर प्रकृत वस्तु का यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता। अतः बालप्रयोगाभास है।

अब आचार्य बालप्रयोगाभास का उदाहरण कहते हैं –

अग्निमानयं प्रदेशो धूमवत्वाद्यदित्थं तदित्थं यथा महानसः ॥ 47 ॥

सूत्रान्वय : अग्निमान् = अग्निवाला, अयं = यह, प्रदेशः = प्रदेश, धूमवत्वात् = धूम वाला होने से, यत् = जो, इत्थं = इस प्रकार, तत्= वह, यथा = जैसे, महानसः = रसोई घर।

सूत्रार्थ : यह प्रदेश अग्नि वाला है, धूम वाला होने से। जो धूम वाला होता है, वह अग्नि वाला होता है, जैसे रसोईघर।

विशेषार्थ : यहाँ पर अनुमान के प्रतिज्ञा, हेतु और उदाहरण इन तीन ही अवयवों का प्रयोग किया गया है, अतः इससे यह बालप्रयोगाभास है।

अब चार अवयवों के प्रयोग करने पर तदाभासता कहते हैं –

धूमवाँश्चायम् ॥ 48 ॥

सूत्रान्वय : धूमवान् = धूम वाला, च = और, अयम् = यह।

सूत्रार्थ : और यह भी धूम वाला है। (उपनय)

संस्कृतार्थ : अग्निमानयं प्रदेशो, धूमवत्वात्, यदित्थं यथा महानसः धूमवाँश्चायम्। अत्रानुमानप्रयोगे प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनायानां चतुर्णामवयवानामेव प्रयोगो विहितो, निगमनं तु परित्यक्तम्। अतोऽयम्प्रयोगो बालप्रयोगाभासो विज्ञेयः।

टीकार्थ : घर, यह यह प्रदेश अग्नि वाला है, धूम वाला होने से, जो धूम वाला होता है, वह अग्नि वाला होता है, जैसे-रसोई धूम वाला है। इस अनुमान प्रयोग में प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, इन चार अवयवों का ही प्रयोग किया गया है। निगमन को छोड़ दिया गया है। इसलिए यह प्रयोग बालप्रयोगाभास जानना चाहिए।

अब अवयवों के विपरीत प्रयोग करने पर भी प्रयोगाभास है, यह कहते हैं -

तस्मादग्निमान् धूमवान् चायम्॥ 49॥

सूत्रान्वय : तस्मात् = इसलिए, अग्निमान् = अग्नि वाला, धूमवान् = धूमवाला, च = और, अयम् = यह।

सूत्रार्थ : इसलिए यह अग्नि वाला है और यह भी धूम वाला है।

संस्कृतार्थ : दृष्टान्तानन्तरम् उपनय, प्रयोक्तव्यः,यत्तथा चायं धूमवान्। ततश्च निगमनं प्रयोक्तव्यम्, यत्तस्मादग्निमान्। किन्त्वत्र सूत्रे उपनयनिगमने वैपरीत्येन प्रयुक्ते, अतोऽयम्प्रयोगो बाल प्रयोगाभासो विज्ञेयः।

टीकार्थ : दृष्टान्त के बाद उपनय का प्रयोग करना चाहिए कि उसी तरह यह धूम वाला है और फिर निगमन को बोलना चाहिए, इसी से अग्नि वाला है परन्तु इस सूत्र में उपनय और निगमन विपरीतता से कहे गए हैं। इसलिए यह प्रयोग बालप्रयोगाभास जानना चाहिए।

अब अवयवों के विपरीत प्रयोग करने पर प्रयोगाभास कैसे कहा ? ऐसी शंका होने पर समाधान देते हैं -

स्पष्टतया प्रकृतप्रतिपत्तेरयोगात्॥ 50॥

सूत्रान्वय : स्पष्टतया = स्पष्ट रूप से, प्रकृतप्रतिपत्ते = प्रकृत ज्ञान के, अयोगात् = योग्य नहीं होने से।

सूत्रार्थ : कम अवयव प्रयोग करने पर पदार्थ का स्पष्टता से ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता।

संस्कृतार्थ : अनुमानावयवानां क्रमहीन प्रयोगे प्रकृतार्थस्य स्पष्टतया ज्ञानं नो जायते। अतः सः बालप्रयोगाभासः प्रोच्यते।

टीकार्थ : अनुमान अवयवों का क्रमहीन प्रयोग करने पर प्रकृत अर्थ का स्पष्ट से ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता। इसलिए वह बाल प्रयोगाभास है।

विशेषार्थ : पाँच अवयवों में से हीन प्रयोग या विपरीत प्रयोग करने पर शिष्यादिक को प्रकृत वस्तु का यथार्थ बोध नहीं हो पाता, इसलिए उन्हें बालप्रयोगाभास कहते हैं।

अब आचार्य भगवन् आगमाभास का स्वरूप कहते हैं –

रागद्वेषमोहाक्रान्तपुरुषवचनाज्जातमागमाभासम् ॥ 51 ॥

सूत्रान्वय : रागद्वेषमोहाक्रान्त = रागद्वेष मोह से आक्रान्त, पुरुषवचनात् = पुरुष के वचन से, जातम् = उत्पन्न हुआ, आगमाभासम् = आगमाभास है।

सूत्रार्थ : रागद्वेषमोह से आक्रान्त (व्याप्त) पुरुष के वचनों से उत्पन्न हुए पदार्थ के ज्ञान को आगमाभास कहते हैं।

संस्कृतार्थ : रागिणो, द्वेषिणोऽज्ञानिनो वा मानवस्य वचनेभ्यः समुत्पन्नः आगमः आगमाभासो विज्ञेयः।

टीकार्थ : रागियों के, द्वेषियों के और अज्ञानियों के वचनों के द्वारा उत्पन्न आगम को आगमाभास जानना चाहिए।

अब आगमाभास का उदाहरण कहते हैं –

यथा नद्यास्तीरे मोदकराशयः सन्ति, धावध्वं माणवकाः ॥ 52 ॥

सूत्रान्वय : यथा = जैसे, नद्याः = नदी के, तीरे = किनारे पर, मोदकराशयः=लड्डूओं के ढेर, सन्ति = हैं, धावध्वं = दौड़ो, माणवकः=बालको।

सूत्रार्थ : जैसे कि – हे बालको दौड़ो, नदी के किनारे लड्डूओं के ढेर लगे हैं।

संस्कृतार्थ : नद्यास्तीरे मोदकराशयः सन्ति, धावध्वं माणवकाः इति वचनमागमाभासो विद्यते रागेणोक्तत्वात्।

टीकार्थ : नदी के किनारे लड्डूओं के ढेर लगे हैं, बालको दौड़ो। इस प्रकार का वचन आगमाभास है, क्योंकि यह वचन रागोक्त है। (राग से कहा गया है)

विशेषार्थ : कोई व्यक्ति बालकों से परेशान (व्याकुलाचित्त) था उसने उन बालकों का साथ छुड़ाने की इच्छा से छल पूर्वक वाक्य कहकर उन्हें नदी के तट प्रदेश पर भेजा। वस्तुतः नदी के किनारे पर मोदक नहीं थे, इसलिए यह वचन आगमाभास है।

जो केवल एक ऐसा प्रथम उदाहरण से संतुष्ट नहीं होते आचार्य आगमाभास का दूसरा उदाहरण देते हैं –

अंगुल्यग्रे हस्तियूथशतमास्ते इति च॥ 53॥

सूत्रान्वय : अंगुल्यग्रे = अंगुली के अग्र पर, हस्तियूथ = हाथियों का समूह, शतम् = सौ, आस्ते = रहते हैं, इति = इस प्रकार, च = और।

सूत्रार्थ : अंगुली के अग्र भाग पर हाथियों के सौ समुदाय रहते हैं।

संस्कृतार्थ : अंगुल्यग्रे हस्तियूथशतमास्ते इति वचनमागमाभासो विद्यते प्रत्यक्षेण बाधितत्वाद् असम्भवत्वाद्वा।

टीकार्थ : अंगुली के अग्र भाग पर हाथियों के सैकड़ों समूह रहते हैं, इस प्रकार का वचन आगमाभास होता है, क्योंकि प्रत्यक्ष के बाधित होने से और असंभव होने से।

विशेषार्थ : इस उदाहरण में सांख्य अपने मिथ्यागम जनित वासना से आक्रान्त चित्त होकर प्रत्यक्ष और अनुमान से विरुद्ध सभी वस्तुएँ सर्वथा विद्यमान हैं, ऐसा प्रमाण मानते हुए उक्त प्रकार से उपदेश देते हैं, किन्तु उनका वह भी कथन अनाप्त पुरुष के वचन रूप होने से आगमाभास ही है।

अब इन ऊपर कहे गए दोनों वाक्यों आगमाभासपना कैसे है, ऐसी आशंका होने पर आचार्य उत्तर देते हैं –

विसंवादात्॥ 54॥

सूत्रान्वय : विसंवादात् = विसंवाद होने से।

सूत्रार्थ : विसंवाद होने से।

संस्कृतार्थ : आगमः प्रमाणाङ्गं विद्यते। प्रमाणेन चाविसम्वादिना भाव्यम्। अतो विसम्वादग्रस्तत्वात्पूर्वोक्तवचनमागमाभासो विद्यते।

टीकार्थ : आगम प्रमाण का अंग है और प्रमाण को अविसंवादि होना चाहिए, इसलिए विवादग्रस्त होने से पूर्वोक्त वचन आगमाभास है।

288. आगमरूप से प्रमाण किसे नहीं माना जा सकता है।

जिन पुरुषों के वचनों में विसंवाद, विवाद, पूर्वापर विरोध या विपरीत अर्थप्रतिपादकपन पाया जाता है, वे आगम स्वरूप नहीं हैं।

अब प्रमाण के संख्याभास का स्वरूप कहते हैं –

प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणमित्यादि संख्याभासम्॥ 55॥

सूत्रान्वय : प्रत्यक्षम् = प्रत्यक्ष को, एव = ही, एक = एक को, प्रमाणम् = प्रमाण, इत्यादि = इस रूप से, संख्याभासम् = संख्याभास है।

सूत्रार्थ : प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण है, इत्यादि रूप से सर्व संख्याभास है।

विशेषार्थ : प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद से प्रमाण दो प्रकार का है, यह पहले कहा गया है, उससे विपरीत प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण है अथवा प्रत्यक्ष और अनुमान ये ही दो प्रमाण हैं, अन्य नहीं है, ऐसी अवधारणा करना भी संख्याभास है।

नोट : सूत्र का संस्कृतार्थ सूत्रार्थ ही है।

अब प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण है, यह कहना कैसे संख्याभास है, कहते हैं –

लौकायतिकस्य प्रत्यक्षतः परलोकादिनिषेधस्य परबुद्ध्या-देश्चासिद्धेरतद्विषयत्वात्॥ 56॥

सूत्रान्वय : लौकायतिकस्य = चार्वाक के, प्रत्यक्षतः = प्रत्यक्ष से, परलोकादि = परलोक आदि का, निषेधस्य = निषेध के, परबुद्ध्यादे = परबुद्धि आदि की, असिद्धेः = सिद्धि न होने से, च = और, अतद्विषयत्वात् = उसके विषय न होने से।

सूत्रार्थ : चार्वाक का प्रत्यक्ष को प्रमाण मानना इसलिए संख्याभास है कि प्रत्यक्ष से परलोक आदि का निषेध और पर की बुद्धि आदि की सिद्धि नहीं होती है, क्योंकि वे उसके विषय नहीं है।

संस्कृतार्थ : चार्वाकस्य प्रत्यक्षमात्रप्रमाणस्य स्वीकरणमतः संख्याभासो

विद्यते, यदनुमानादिप्रमाणं बिना प्रत्यक्षमात्रेण परलोकादिनिषेधस्य परबुद्धयादे च सिद्धिर्नोभवेत्, यतस्तौ प्रत्यक्षविषयौ न स्तः। अथश्चायं नियमो यत् यद्यत् न विषयीकरोति तत्तस्य विधिं, निषेधम्वा कर्तुं नो शक्नुयात्।

टीकार्थ : चार्वाक का प्रत्यक्ष मात्र प्रमाण को स्वीकार करना संख्याभास है जो अनुमानादि प्रमाण बिना प्रत्यक्ष मात्र से परलोकादि का निषेध और पर की बुद्धि आदि की सिद्धि नहीं हो सकती, क्योंकि वे दोनों प्रत्यक्ष के विषय नहीं हैं और ऐसा नियम है कि जो जिसको विषय नहीं करता, वह उसका निषेध और विधान में समर्थ नहीं है।

अब चार्वाक के दृष्टान्त द्वारा बौद्धादि के मत में भी संख्याभासपना है यह दिखलाते हैं –

सौगतसांख्ययौगप्राभाकरजैमिनीयानां प्रत्यक्षानुमानागमोप मानार्थापत्याभावैरेकैकाधिकैः व्याप्तिवत्॥ 57॥

सूत्रान्वय : सौगत = बुद्ध, सांख्य = सांख्य, यौग = यौग, प्रभाकर = प्रभाकर, जैमिनीयानाम् = जैमिनीय के, प्रत्यक्षानुमानागमोपमानार्थापत्ति अभावैः = प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान, अर्थापत्ति, अभाव द्वारा, एक = एक, अधिकैः = अधिक के द्वारा, व्याप्तिवत् = व्याप्ति के समान।

सूत्रार्थ : जिस प्रकार बौद्ध, सांख्य, यौग, प्रभाकर और जैमिनीयों के प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान, अर्थापत्ति और अभाव इन एक-एक अधिक प्रमाणों के द्वारा व्याप्ति विषय नहीं की जाती है।

संस्कृतार्थ : यथा सौगतसांख्ययौगप्रभाकर जैमिनीयाङ्गीकृतैरेकैकाधिकैः प्रत्यक्षानुमानागमोपमानार्थापत्त्याभावैः व्याप्तेरनिर्णयोऽतस्तानि संख्याभासस्तथा चार्वाकोऽपि प्रत्यक्षमात्रेण परलोकादिनिषेधस्य परबुद्धयादेश्च सिद्धिं कर्तुं नो शक्नुयात्। अतस्तत्स्वीकृतम् प्रत्यक्षमेवैकम्प्रमाणं संख्याभासः।

टीकार्थ : जैसे – बौद्ध, सांख्य, यौग, प्रभाकर, जैमिनीय इनके द्वारा स्वीकृत एक-एक अधिक प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान, अर्थापत्ति और अभाव के द्वारा व्याप्ति का निर्णय नहीं होता। इसलिए उनकी संख्या संख्याभास है इसी प्रकार चार्वाक भी प्रत्यक्ष मात्र से ही परलोकादि का निषेध तथा पर की

बुद्धि आदिक की सिद्धि नहीं कर सकता। इसलिए चार्वाक के द्वारा स्वीकृत प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण है – ऐसा मानना संख्याभास है।

विशेषार्थ :

मत	प्रमाण संख्या
1. चार्वाक	प्रत्यक्ष (एक)
2. सौगत	प्रत्यक्ष, अनुमान (दो)
3. सांख्य	प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, (तीन)
4. यौग	प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान (चार)
5. प्रभाकर	प्रत्यक्ष, अनुमान आगम, उपमान, अर्थापत्ति (पाँच)
6. जैमिनीय	प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान, अर्थापत्ति, अभाव (छः)

इन सबके द्वारा माने गए प्रमाणों से व्याप्ति अर्थात् अविनाभाव का ग्रहण नहीं होता है।

अब यहाँ पर चार्वाक का कहना है कि पराई बुद्धि आदिक का ज्ञान यदि प्रत्यक्ष से नहीं होता न होवे, अन्य अनुमानादिक से हो जायेगा, ऐसी शंका का समाधान देते हैं –

अनुमानादेरतद्विषयत्वे प्रमाणान्तरत्वम्॥ 58॥

सूत्रान्वय : अनुमानादेः = अनुमान आदि के, अतत् = उस परबुद्धि का, विषयत्वेः =विषयपना, प्रमाणान्तरत्वम्= प्रमाणन्तरपना।

सूत्रार्थ : अनुमानादि के परबुद्धि आदिक का विषयपना मानने पर अन्य प्रमाणों के मानने का प्रसंग आता है।

संस्कृतार्थ : अनुमानेन परलोकादिनिषेधस्य परबुद्धयादिसिद्धेर्वा स्वीकारेऽनुमानं द्वितीय प्रमाणं माननीयं भवेत्। तदा प्रत्यक्षमात्रस्य प्रमाणस्याङ्गी-करणं संख्याभासः सुस्पष्टो भवेत्।

टीकार्थ : अनुमान के द्वारा परलोकादि का निषेध और परबुद्धि आदि के सिद्ध होने पर आपके द्वारा स्वीकार करने पर अनुमान को द्वितीय प्रमाण मानना होगा। तब तो प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण मानना संख्याभास बिल्कुल स्पष्ट

हो जायेगा।

विशेषार्थ : तत शब्द से परबुद्धि आदि कहे गए हैं। अनुमानादि को पर बुद्धि आदि का विषय करने वाला मानने पर एक प्रत्यक्ष ही प्रमाण है, यह वचन घटित नहीं होगा, यह सूत्र का समुच्चयार्थ है।

अब आचार्य इसी विषय में उदाहरण देते हैं –

तर्कस्येव व्याप्तिगोचरत्वे प्रमाणान्तरत्वमप्रमाणस्या व्यवस्थापकत्वात् ॥ 59 ॥

सूत्रान्वय : तर्कस्य = तर्क को, एव = ही, व्याप्तिगोचरत्वे = व्याप्ति को विषय करने वाला, प्रमाणान्तरत्वम् = एक भिन्नप्रमाणापना, अप्रमाणस्य = अप्रमाणज्ञान की, अव्यवस्थापकत्वात् = व्यवस्था नहीं करने से।

सूत्रार्थ : तर्क को व्याप्ति का विषय करने वाला मानने पर बौद्धादि को उसे एक भिन्न प्रमाण मानना पड़ता है, क्योंकि अप्रमाणज्ञान पदार्थ की व्यवस्था नहीं कर सकता है।

संस्कृतार्थ : किञ्चानुमानादेः परबुद्धयादिनिश्चायकत्वाभ्युपगमेऽपि चार्वाकाणाम् प्रत्यक्षैकप्रमाणवादो हीयते। यथा सौगतादीनां तर्क प्रमाणेन व्याप्तिनिश्चयाभ्युपगमे स्वाभिमत द्वित्रिचतुरादिसंख्याव्याघातो भवति। किञ्च तर्कस्याप्रमाणत्वाभ्युपमगे व्याप्तिप्रतिपत्तिः खपुष्पवत् भवेत्। अप्रमाणस्य समारोपाव्यवच्छेदेन स्वविषय निश्चायकत्वाभावात्।

टीकार्थ : कोई और कहता है कि अनुमानादि के पर बुद्धयादि का निश्चायकपना स्वीकार करने पर भी चार्वाकादि को प्रत्यक्ष एक प्रमाणवाद को त्याग करने का प्रसंग आता है। जैसे – सौगतादि को तर्क प्रमाण के द्वारा व्याप्ति का निश्चय स्वीकार करने पर उनके द्वारा स्वीकृत दो, तीन, चार आदि संख्या का व्याघात होता है। यदि कोई कहे कि – तर्क को मानकर भी हम उसे प्रमाण नहीं मानेंगे, अप्रमाण मान लेवेंगे, व्याप्ति का ज्ञान आकाश पुष्प के समान हो जावेगा। अप्रमाण के समारोप आदि का निराकरण न करने से अपने विषय के निश्चायकपने का अभाव होने से।

अब पूर्वोक्त कथन की पुष्टि करते हुए आचार्य कहते हैं -

प्रतिभासस्य च भेदकत्वात्॥ 60॥

सूत्रान्वय : प्रतिभासस्य = प्रतिभास का, च = और, भेदकत्वात् = भेदक होने से।

सूत्रार्थ : प्रतिभास का भेद ही प्रमाणों का भेदक होता है।

संस्कृतार्थ : किञ्च वस्तुस्वरूपप्रतिभासभेदः एव प्रमाणभेदान् व्यवस्थापयति। यथा स्पष्टप्रतिभासः प्रत्यक्षम् अस्पष्टप्रतिभासश्च परोक्षं कथ्यते, तथा व्याप्तिरूपः प्रतिभासः तर्को निगद्यते। एवञ्च तर्क प्रमाणेऽङ्गीकृते चार्वाकादीनामङ्गीकृतप्रमाणसंख्यायाव्याघातोऽनिवार्यो भवेत्। अतस्तत्स्वीकृत प्रमाणसंख्यायाः प्रमाणसंख्याभासत्वमनिवार्यं जायेत।

टीकार्थ : कोई और कहता है वस्तु स्वरूप के प्रतिभास का भेद ही प्रमाण के भेदों की व्यवस्था करता है। जैसे - स्पष्ट प्रतिभास को प्रत्यक्ष कहते हैं। अस्पष्ट प्रतिभास को परोक्ष कहते हैं, उसी प्रकार व्याप्तिरूप प्रतिभास को तर्क कहते हैं और इस प्रकार तर्क प्रमाण को स्वीकार करने पर चार्वाक आदि के द्वारा स्वीकृत प्रमाणसंख्या का व्याघात होता है, अवश्य ही। इसलिए सौगतादि के द्वारा स्वीकृत प्रमाण संख्या में प्रमाण संख्याभासपना अनिवार्य ही होता है।

अब विषयाभास का स्वरूप कहते हैं -

विषयाभासः सामान्यं विशेषो द्वयं वा स्वतन्त्रम्॥ 61॥

सूत्रान्वय : विषयाभासः = विषयाभास, सामान्यं = केवल सामान्य, विशेषः = केवल विशेष, वा = अथवा, द्वयं = सामान्य विशेष को, स्वतंत्रम् = स्वतंत्र मानना।

सूत्रार्थ : केवलसामान्य को, केवल विशेष को अथवा स्वतंत्र दोनों को प्रमाण का विषय मानना विषयाभास है।

संस्कृतार्थ : सामान्यमात्रस्य, विशेषमात्रस्य, स्वतंत्रस्य स्वतंत्रस्य द्वयस्य वा प्रमाणविषयत्वेनाङ्गीकरणं प्रमाणविषयाभासः प्रोच्यते।

टीकार्थ : सामान्यमात्र को, विशेषमात्र को, अथवा दोनों रूप पदार्थ

को स्वतंत्र रूप से एक-एक को प्रमाण का विषय रूप से स्वीकार करने वाला प्रमाण विषयाभास कहा जाता है।

विशेषार्थ : सांख्य सामान्य मात्र (द्रव्य) को ही प्रमाण मानता है। बौद्ध विशेष रूप केवल (पर्याय) को ही प्रमाण का विषय कहते हैं। नैयायिक और वैशेषिक सामान्य विशेषात्मक हैं, यह पहले ही सिद्ध किया जा चुका है। अब उन सांख्यादिको की मान्यताएँ विषयाभास कैसे हैं, आचार्य इस आशंका के निराकरण करने के लिए उत्तरसूत्र कहते हैं -

तथाऽप्रतिभासनात् कार्याकरणाच्च ॥ 62 ॥

सूत्रान्वय : तथा = उसी प्रकार, अप्रतिभासनात् = अप्रतिभास होने से, कार्य = कार्य को, अकरणात् = न करने वाला होने से, च = और।

सूत्रार्थ : उस प्रकार का प्रतिभास न होने से और कार्य को नहीं करने से।

संस्कृतार्थ : सांख्याभिमतं सामान्यतत्वं, सौगताभिमतं विशेषतत्वं, यौगाभिमतं परस्पर निरपेक्षसामान्यविशेषरूपतत्त्वञ्च विषयाभासो भवति तथा प्रतिभासनाभावात् अर्थक्रियाकारित्वाभावाच्च।

टीकार्थ : सांख्यों के द्वारा स्वीकृत सामान्यतत्त्व को, बौद्धों के द्वारा स्वीकृत विशेष तत्त्व को, यौगों के द्वारा स्वीकृत परस्पर निरक्षेप सामान्य और विशेषरूप तत्त्व विषयाभास होता है। उसी प्रकार प्रतिभास का अभाव होने से अर्थक्रियाकारीपने का भी अभाव होता है।

अब कोई कहे कि वे एकान्तरूप पदार्थ अपना कार्य कर सकते हैं तो आचार्य भगवन् उनसे पूछते हैं कि वह एकान्तात्मकृततत्व स्वयं समर्थ होते हुए अपना कार्य करेगा। अथवा असमर्थ रहते हुए। प्रथम पक्ष में दूषण देते हैं -

समर्थस्य करणे सर्वदोत्पत्तिरनपेक्षत्वात् ॥ 63 ॥

सूत्रान्वय : समर्थस्य = समर्थ के, करणे = कार्य करने पर, सर्वदा = हमेशा, उत्पत्तिः = उत्पन्न, अनपेक्षत्वात् = अपेक्षा न होने से।

सूत्रार्थ : समर्थ पदार्थ के कार्य करने पर अपेक्षा न होने से हमेशा

कार्य की उत्पत्ति का प्रसंग आता है।

संस्कृतार्थ : किञ्च तदेकान्तात्मकं तत्त्वं स्वयं समर्थमसमर्थं वा कार्यकारी स्यात् ? तत्र समर्थत्वे किं निरपेक्षं कार्यं कुर्यात् सापेक्षम् वा ? न तावत्प्रथमः पक्षः। निरपेक्षस्य समर्थतत्त्वस्य कार्यजनकत्वे सर्वदा कार्योत्पत्ति प्रसङ्गस्य दुर्निवारत्वात्।

टीकार्थ : यदि और कहे कि वह एकान्तात्मकृततत्वं स्वयं समर्थ अथवा असमर्थ होकर कार्यकारी होता है यह है ? उसमें समर्थ होता हुआ क्या कार्य को निरपेक्ष होकर करता है, अथवा सापेक्ष होकर ? प्रथम पक्ष तो आपके यहाँ बनता नहीं है, क्योंकि निरपेक्ष समर्थतत्व के कार्य को उत्पन्न करने वाला मानते हो तो हमेशा कार्योत्पत्ति का प्रसंग आता है, जिसका निराकरण करना कठिन है।

अब यदि कहा जाए कि वह पदार्थ सहकारी कारणों के सान्निध्य में उस कार्य को करता है, अतः कार्य की सदा उत्पत्ति नहीं होती है तो आचार्य भगवन् कहते हैं –

परापेक्षणे परिणामित्वमन्यथा तदभावात्॥ 64॥

सूत्रान्वय : परापेक्षणे = दूसरे सहकारी की अपेक्षा से, परिणामित्वम् = परिणामीपना है, अन्यथा = अन्यथा, तत् = उस (कार्य का), अभावात् = अभाव होने से।

सूत्रार्थ : दूसरे सहकारी कारणों की अपेक्षा रखने पर परिणामीपना प्राप्त होता है, अन्यथा कार्य नहीं हो सकता है।

संस्कृतार्थ : नापि द्वितीयः पक्षः। सापेक्षसमर्थतत्त्वस्य कार्य जनकत्वाभ्युपगमे परिणामित्वप्रसंगात्, सामान्यविशेषात्मकत्वसिद्धेः, एकतत्त्वस्य परिणामित्वाभावे कार्यजनकत्वायोगात्।

टीकार्थ : द्वितीय पक्ष भी ठीक नहीं है, सापेक्ष समर्थ पदार्थ के कार्य करने वाला स्वीकार करने पर परिणामीपने का प्रसंग होता है, सामान्य-विशेषात्मकपने की सिद्धि होती है, एक पदार्थ के परिणामीपने का अभाव होने पर कार्य को करने वाले का अयोग होने से।

विशेषार्थ : सहकारी कारणों की वियुक्त अवस्था में कार्य नहीं करने वाले और सहकारी कारणों के सन्निधान के समय कार्य करने वाले पदार्थ के पूर्व आकार का परित्याग उत्तर आकार का उपादान और स्थिति लक्षण परिणाम के संभव होने से परिणामीपना सिद्ध होता है। यदि ऐसा न माना जाए तो कार्य करने का अभाव रहेगा। जैसे – प्राग्भावदशा में कार्य का अभाव था।

अब आचार्य असमर्थ रूप दूसरे पक्ष में दोष कहते हैं –

स्वयमसमर्थस्याकारकत्वात् पूर्ववत्॥ 65॥

सूत्रान्वय : स्वयम् = आप ही, असमर्थस्य = असमर्थ के, आकारत्वात् = कार्य करने वाला न होने से, पूर्ववत् = प्रथम पक्ष के समान।

सूत्रार्थ : आप ही असमर्थ के पूर्व के समान (प्रथम पक्ष के समान) कार्य करने वाला न होने से।

संस्कृतार्थ : स्वयमसमर्थेन तत्त्वेन कार्योत्पत्तिस्तु बन्ध्यासुतवत् असंभवैव। तस्मात् सामान्यविशेषात्मक पदार्थ एव प्रमाण गोचरो भवति, शेष च विषयाभास इति।

टीकार्थ : स्वयं असमर्थ पदार्थ के कार्य की उत्पत्ति मानी जाए तो वह बन्ध्या के पुत्र के समान असंभव ही है। इसलिए सामान्य विशेषात्मक पदार्थ ही प्रमाण का विषय होता है। और शेष विषयाभास है।

अब फलाभास का वर्णन करते हैं –

फलाभासः प्रमाणादभिन्नं भिन्नमेव वा॥ 66॥

सूत्रान्वय : फलाभासः = फलाभास, प्रमाणात् = प्रमाण से, अभिन्नं = अभिन्न, भिन्नं = भिन्न, एव = ही, वा = अथवा।

सूत्रार्थ : प्रमाण से उसके फल को सर्वथा अभिन्न तथा भिन्न मानना फलाभास है।

संस्कृतार्थ : प्रमाणात् सर्वथा अभिन्नमथवा सर्वथा भिन्नं फलम् फलाभासः कथ्यते।

टीकार्थ : प्रमाण से सर्वथा अभिन्न अथवा सर्वथा भिन्न प्रमाण के फल को मानना फलाभास कहा जाता है।

अब दोनों पक्षों में फलाभास कैसे है तो प्रथम सर्वथा अभिन्न पक्ष में फलाभास बतलाते हैं –

अभेदे तद्व्यवहारानुपपत्तेः ॥ 67 ॥

सूत्रान्वय : अभेदे = अभेद में, तत् = वह, (प्रमाण और प्रमाणफल) व्यवहार = कथन, अनुपपत्तेः = नहीं बन सकेगा।

सूत्रार्थ : प्रमाण से फल सर्वथा अभिन्न माना जाए तो प्रमाण और प्रमाण के फल में व्यवहार ही नहीं हो सकता है।

संस्कृतार्थ : ननु प्रमाणात्सर्वथा अभिन्नस्य फलस्य कथं फलाभासता इति न शंकनीयं, फलस्य सर्वथा अभिन्नत्वाभ्युपमगे इदम् प्रमाणम् इदञ्चास्य प्रमाणस्य फलम् इति व्यवहारस्यानुत्पत्तेः।

टीकार्थ : कोई कहता है कि प्रमाण से फल सर्वथा अभिन्न है तो फलाभास कैसे हुआ, इस प्रकार की शंका नहीं करना चाहिए, फल के सर्वथा अभिन्नपना स्वीकार करने पर यह प्रमाण है और यह इसका फल है, इसी प्रकार के व्यवहार की उत्पत्ति नहीं बन सकेगी।

विशेषार्थ : कहने का भाव यह है कि या तो फल ही रहेगा, अथवा प्रमाण ही रहेगा ? दोनों नहीं रह सकेंगे।

अब कल्पना से प्रमाण और फल का व्यवहार करने में आपत्ति–

व्यावृत्त्यापि न तत्कल्पना फलान्तराद् व्यावृत्याऽफलत्व प्रसंगात् ॥ 68 ॥

सूत्रान्वय : व्यावृत्त्यापि = भिन्न होने पर भी, न = नहीं तत् = फल की, कल्पना = कल्पित करना, फलान्तरात् = अन्य फल की, व्यावृत्या = निराकरण होने से, अफलत्वं = अफलपने का, प्रसंगात् = प्रसंग होने से।

सूत्रार्थ : अफल की व्यावृत्ति से भी फल की कल्पना नहीं की जा सकती अन्यथा फलान्तर का व्यावृत्ति से अफलपने की कल्पना का प्रसंग आ जायेगा।

संस्कृतार्थ : फलाभावस्य व्यावृत्यापि फलस्य कल्पना नो संभवेत् फलाभावव्यावृत्या फलकल्पनेव सजातीयफलव्यावृत्याऽफल कल्पनायाः

प्रसङ्गात्।

टीकार्थ : फलाभाव की व्यावृत्ति होने पर भी फल की कल्पना संभव नहीं है दूसरे जाति वाले फल की व्यावृत्ति से अफल की कल्पना क्यों न हो जायेगी ? इसलिए कल्पना मात्र से फल का व्यवहार नहीं हो सकता।

विशेषार्थ : सूत्र का अभिप्राय यह है कि जैसे फल का विजातीय जो अफल उसकी व्यावृत्ति से आप बौद्ध लोग फल का व्यवहार करते हैं, उसी प्रकार फलान्तर अर्थात् जो सजातीय फल है, उसकी व्यावृत्ति से अफलपने का प्रसंग आता है।

अब आचार्य दूसरे अभेद पक्ष में दृष्टान्त देते हैं –

प्रमाणान्तरात् व्यावृत्यावाप्रमाणत्वस्य ॥ 69 ॥

सूत्रान्वय : प्रमाणान्तरात् = प्रमाणान्तर से, व्यावृत्त्या = निराकरण करने से, एव = ही, अप्रमाणत्वस्य = अप्रमाणपने का।

सूत्रार्थ : अन्य प्रमाण की (प्रमाणान्तर) व्यावृत्ति (निराकरण) से अप्रमाणपने का प्रसंग आता है।

संस्कृतार्थ : यथा प्रमाणान्तरव्यावृत्त्या अप्रमाणत्वस्य प्रसंगबौद्धैरङ्गी कृतस्तथैव फलान्तरव्यावृत्त्या अफलत्वस्य प्रसङ्गः आगच्छेत्।

टीकार्थ : जैसे प्रमाणान्तर की व्यावृत्ति से अप्रमाणपने का प्रसंग बौद्धों ने स्वीकृत किया है, उसी प्रकार ही फलान्तर की व्यावृत्ति से अफलत्व का प्रसंग आ जावेगा।

विशेषार्थ : अन्य प्रमाण की व्यावृत्ति से जैसे प्रमाण के अप्रमाणपने का प्रसंग आता है, उसी प्रकार यहाँ भी पहले वाली प्रक्रिया लगानी चाहिए (विशेष प्रमेयरत्नमाला में देखें)

अब अभेदपक्ष का निराकरण कर आचार्य उपसंहार कहते हैं –

तस्माद्वास्तवो भेदः ॥ 70 ॥

सूत्रान्वय : तस्मात् = इसलिए, वास्तवः = वास्तविक, भेदः = भेद है।

सूत्रार्थ : इसलिए प्रमाण और फल में परमार्थ से भेद है।

संस्कृतार्थ : अतः प्रमाणे तत्फले वा भेदो वास्तवो विद्यते,

एकान्तरूपेणाभेदो नो वर्तते।

टीकार्थ : इसलिए प्रमाण और प्रमाण के फल में वास्तविक भेद है एकान्त रूप से अभेद ही नहीं है।

विशेषार्थ : कल्पना से प्रमाण और फल का भेद नहीं मानना चाहिए, किन्तु वास्तविक भेद ही मानना चाहिए, अन्यथा प्रमाण और फल का व्यवहार नहीं बन सकता है।

अब आचार्य भगवन् नैयायिकों के द्वारा माने गए सर्वथा भेदपक्ष में दूषण देते हुए उत्तरसूत्र कहते हैं –

भेदेत्वात्मान्तरवत्तदनुपपत्तेः ॥ 71।

सूत्रान्वय : भेदे = भेद में, तु = तो, आत्मान्तरवत् = अन्य आत्मा के समान, तत् = वह (प्रमाण और प्रमाणफल) अनुपपत्तेः = हो नहीं सकता।

सूत्रार्थ : भेद मानने पर अन्य आत्मा के समान यह इस प्रमाण का फल है ऐसा व्यवहार हो नहीं सकता है।

संस्कृतार्थ : प्रमाणात् फलस्य सर्वथा भिन्नत्वाङ्गीकारेऽयं दोषः समायाति यद्यथा अन्यात्मप्रमाणफलं तथैव निजात्मप्रमाणफलम् उभे एव सदृशे भवेताम्। पुनश्च तत्फलं मदीय प्रमाणस्य विद्यते नान्यदीयप्रमाणस्येति कथं निश्चीयेत। निष्कर्षश्चायं यद्यथान्यात्म प्रमाणफलमस्मदीयात्मप्रमाणफलं नो भवेत् तथा सर्वथा भेदे मदीयात्मप्रमाणफलमपि मदीयं नो व्यावर्ण्येत्।

टीकार्थ : प्रमाण को फल से सर्वथा भिन्न मानने में यह दोष आता है कि जिस तरह आत्मा के प्रमाण का फल उस ही प्रकार हमारे आत्मा के प्रमाण का फल दोनों सदृश हो जावेंगे। फिर वह फल हमारे प्रमाण का और दूसरे के आत्मा के प्रमाण का नहीं यह कैसे व्यवस्थित होगा ? इसका निष्कर्ष यह है कि जैसे–दूसरे आत्मा के प्रमाण का फल हमारा नहीं कहलाता उसी प्रकार हमारे आत्मा के प्रमाण का फल भी हमारा नहीं कहलायेगा।

अब नैयायिक लोग प्रमाण और प्रमाण के फल को समवाय सम्बन्ध से मानते हैं, इस प्रकार समवाय से मानने पर आचार्य दोष देते हैं –

समवायेऽति प्रसंगः ॥ 72॥

सूत्रान्वय : समवाये = समवाय में, अतिप्रसंग = अतिप्रसंग का दोष।

सूत्रार्थ : समवाय के मानने पर अतिप्रसंग का दोष आता है।

संस्कृतार्थ : नैयायिकानां कथनं विद्यते यद् यत्रात्मनि प्रमाणं समवाय सम्बन्धेनावतिष्ठेत् तत्रैव फलमपि समवायसंबंधेनावतिष्ठेत्। तदास्य प्रमाणस्येदं फलमिति व्यवस्था समवाय सम्बन्धेन भवेत्। अत्र सूत्रे तेषामस्या एवाशंकाया निषेधो विहितः यद् युष्माभिः बौद्धैः समवायो नित्यो व्यापकश्च मतः। तेनायं निर्णयः कथं भवेत् यदत्रैवात्मनि एतत्फलं समवाय सम्बन्धेनावतिष्ठते नान्यत्र।

टीकार्थ : नैयायिकों का ऐसा कथन है, जो जिस आत्मा में प्रमाण समवाय सम्बन्ध से स्थित है, उसमें ही फल भी समवाय सम्बन्ध से स्थित है। इस प्रमाण का यह फल है, इस प्रकार की व्यवस्था समवाय सम्बन्ध से होती है। इस सूत्र में उन नैयायिकों की इस प्रकार की ही शंका का निषेध किया गया है, जो तुम बौद्धों के द्वारा समवाय नित्य और व्यापक पदार्थ माना गया है, इससे यह निर्णय कैसे होगा, इसी आत्मा में यह प्रमाण अथवा फल समवाय सम्बन्ध से रहता है, दूसरे आत्मा में नहीं।

विशेषार्थ : समवाय के नित्य तथा व्यापक होने से वह सभी आत्माओं में समान धर्मरूप से रहेगा। अतः यह फल इसी प्रमाण का है, अन्य का नहीं है। इस प्रकार के प्रतिनियत नियम का अभाव होगा।

अब अपने पक्ष के साधन और परपक्ष के दूषण व्यवस्था को दर्शाते हैं-

प्रमाणतदाभासौ दुष्टतयोद्भावितौ परिहृतापरिहृतदोषौ वादिनः साधनतदाभासौ प्रतिवादिनो दूषणभूषणे च॥ 73॥

सूत्रान्वय : प्रमाण = प्रमाण्, तदाभासौ = तदाभास, दुष्टतयोद्भावितौ = दोष रूप में प्रकट किये जाने पर, परिहृतदौष = परिहार दोष वाले, अपरिहृतदोष = अपरिहार दोष वाले, वादिनः = वादी के द्वारा, साधन तदाभासौ = साधन और साधनाभास, प्रतिवादिनः = प्रतिवादी के लिए, दूषण भूषणे च = दूषण और भूषण है।

सूत्रार्थ : वादी के द्वारा प्रयोग में लाए गए प्रमाण और प्रमाणाभास प्रतिवादी के द्वारा दोष रूप में प्रकट किये जाने पर वादी से परिहार दोष लिए

रहते हैं तो वे वादी के लिए साधन और साधनाभास हैं और प्रतिवादी के लिए दूषण और भूषण हैं।

इस सूत्र का अभिप्राय यह है कि वाद के समय वादी ने पहले प्रमाण को उपस्थित किया, प्रतिवादी के दोष बतलाकर उसका उद्भावन कर दिया। पुनः वादी ने उस दोष का परिहार कर दिया तो वादी के लिए वह साधन हो जायेगा और प्रतिवादी के लिए दूषण हो जायेगा। इसी प्रकार जब वादी ने प्रमाणाभास कहा प्रतिवादी ने दोष बतलाकर उसका उद्भावन कर दिया। तब यदि वादी उसका परिहार नहीं कर पाया, तो वह वादी के लिए साधनाभास हो जायेगा और प्रतिवादी के लिए भूषण हो जायेगा।

288. वादी किसे कहते हैं ?

शास्त्रार्थ के समय जो अपना पक्ष रखता है, वह वादी है।

289. प्रतिवादी किसे कहते हैं ?

जो वादी का प्रतिवाद करता है, वह प्रतिवादी कहलाता है।

290. शास्त्रार्थ में जीत एवं हार किसकी होती है ?

जो अपने पक्ष पर आए हुए दूषणों का परिहार करके अपने पक्ष को सिद्ध कर देता है, शास्त्रार्थ में उसकी जीत होती है और जो वैसा नहीं कर पाता उसकी हार होती है।

291. प्रमाण और प्रमाणाभास को जानने का फल क्या है ?

अपने पक्ष को सिद्ध कर लेना और पर पक्ष में दूषण दे लेना यही प्रमाण और प्रमाणाभास का फल है।

अब उक्त प्रकार से समस्त विप्रतिपत्तियों के निराकरण द्वारा स्वप्रतिज्ञात प्रमाण तत्त्व की परीक्षा कर अन्य ग्रन्थों में नयादि तत्त्व कहे गए हैं, इस बात को दिखलाते हुए अंतिम सूत्र कहते हैं –

संभवदन्यद्विचारणीयम्॥ 74॥

सूत्रान्वय : संभवत् = संभव, अन्यत् = अन्य (नय निक्षेपादि) विचारणीयम् = विचारणीय हैं।

सूत्रार्थ : संभव अन्य (नय-निक्षेपादि) भी विचारणीय है।

संस्कृतार्थ : अत्र शास्त्रे केवलं प्रमाण विवेचनं विहितम्। एतद् भिन्नं नयादि तत्त्वविवेचनम् ग्रन्थान्तराद्विलोकनीयम्।

टीकार्थ : इस ग्रन्थ में केवल प्रमाण विवेचन को कहा गया है, इससे भिन्न नयादि तत्त्वों का विवेचन अन्य ग्रन्थों से जानना चाहिए या देखना चाहिए।

292. न्याय का क्या अर्थ है ?

विभिन्न प्रमाणों द्वारा वस्तुतत्त्व की परीक्षा करना।

293. न्याय दर्शन का उद्देश्य क्या है ?

प्रमाणों के द्वारा प्रमेय (जानने योग्य) वस्तु का विचार करना और प्रमाणों का विस्तृत विवेचन करना न्याय दर्शन का प्रधान उद्देश्य है।

294. न्याय दर्शन में किन सत् पदार्थों के तत्त्वज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है ?

प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थान इन सोलह सत् पदार्थों के तत्त्वज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है, अतः इनका परिज्ञान करना आवश्यक है।

परीक्षामुखमादर्शं, हेयोपादेयतत्त्वयोः।
संविदे मादृशो बालः, परीक्षादक्षवद् व्यधाम॥

अर्थ : परीक्षामुखम् = परीक्षामुख को, आदर्शम् = दर्पण, हेयोपादेय = हेय और उपादेय, तत्त्वयोः = दोनों तत्त्वों के, संविदे = ज्ञान के लिए, मादृशः = मुझ सदृश, बालः = बालक ने (अज्ञानी ने) परीक्षादक्षवत् = परीक्षा में कुशल के समान, व्यधाम् = रचा।

श्लोकार्थ : छोड़ने योग्य और ग्रहण करने योग्य तत्त्व के ज्ञान के लिए दर्पण के समान इस परीक्षा मुख ग्रन्थ को मुझ सदृश बालक ने परीक्षा में निपुण पुरुष के समान रचा।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः

परिशिष्ट - 1

परीक्षामुख सूत्रावली

अथ प्रथमः परिच्छेदः

1. स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम्।
2. हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत्।
3. तन्निश्चयात्मकं समारोपविरुद्धत्वादनुमानवत्।
4. अनिश्चितोऽपूर्वार्थः।
5. दृष्टोऽपि समारोपात्तादृक्।
6. स्वोन्मुखतया प्रतिभासनं स्वस्य व्यवसायः।
7. अर्थस्येव तदुन्मुखतया
8. घटमहमात्मना वेद्मि।
9. कर्मवत्कर्तृकरणक्रियाप्रतीतेः।
10. शब्दानुच्चारणेऽपि स्वस्यानुभवनमर्थवत्।
11. को वा तत्प्रतिभासिनमर्थमध्यक्षमिच्छँस्तदेव तथा नेच्छेत्।
12. प्रदीपवत्।
13. तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च।

अथ द्वितीयः परिच्छेदः

1. तद्द्वेधा।
2. प्रत्यक्षेतर भेदात्।
3. विशदं प्रत्यक्षम्।
4. प्रतीत्यन्तराव्यवधानेन विशेषवत्तया वा प्रतिभासनं वैशद्यम्।
5. इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं देशतः सांव्यवहारिकम्।
6. नार्थालोकौ कारणं परिच्छेद्यत्वात्तमोवत्।
7. तदन्वयव्यतिरेकानुविधानाभावात् केशोण्डुकज्ञानवन्नक्तंचरज्ञानवच्च।
8. अतज्जन्यमपि तत्प्रकाशकं प्रदीपवत्।
9. स्वावरणक्षयोपशमलक्षणयोग्यतया हि प्रतिनियतमर्थं व्यवस्थापयति।

प्रत्यक्षमिति शेषः।

10. कारणस्य च परिच्छेद्यत्वे करणादिना व्यभिचारः।

11. सामग्री विशेष विश्लेषिताखिलावरणमतीन्द्रियमशेषतो मुख्यम्।

12. सावरणत्वे करणजन्यत्वे च प्रतिबंधसम्भवात्।

अथ तृतीयः परिच्छेदः

1. परोक्षमितरत्।

2. प्रत्यक्षादिनिमित्तं स्मृतिप्रत्यभिज्ञानतर्कानुमानागम भेदम्।

3. संस्कारोद्बोधनिबन्धना तदित्याकारा स्मृतिः।

4. स देवदत्तो यथा।

5. दर्शनस्मरणकारणकं सङ्कलनं प्रत्यभिज्ञानं तदेवेदं, तत्सदृशं, तद्विलक्षणं तत्प्रतियोगीत्यादि।

6. यथा स एवायं देवदत्तः, गोसदृशो गवयः, गोविलक्षणो महिषः, इदमस्माद्दूरम् वृक्षोऽयमित्यादि।

7. उपलम्भानुपलम्भनिमित्तं व्याप्तिज्ञानमूहः।

8. इदमस्मिन्सत्येव भवत्यसति तु न भवत्येवेति।

9. यथाऽग्नावेव धूमस्तदभावे न भवत्येवेति च।

10. साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानम्।

11. साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतुः।

12. सहक्रमभवनियमोऽविनाभावः।

13. सहचारिणो र्व्याप्यव्यापकयोश्च सहभावः।

14. पूर्वोत्तरचारिणोः कार्यकारणयोश्च क्रमभावः।

15. तर्कात्तन्निर्णयः।

16. इष्टमबाधितमसिद्धं साध्यम्।

17. संदिग्धविपर्यस्ताव्युत्पन्नानां साध्यत्वं यथा स्यादित्यसिद्धपदम्।

18. अनिष्टाध्यक्षादिबाधितयोः साध्यत्वं मा भूदितीष्टाबाधितवचनम्।

19. न चासिद्धवदिष्टं प्रतिवादिनः।

20. प्रत्यायनाय हीच्छा वक्तुरेव।

21. साध्यं धर्मः क्वचित्तद्विशिष्टो वा धर्मी।

22. पक्ष इति यावत्।

23. प्रसिद्धो धर्मी ।

24. विकल्पसिद्धे तस्मिन् सत्तेतरे साध्ये।

25. अस्ति सर्वज्ञो, नास्ति खरविषाणम्।

26. प्रमाणोभयसिद्धे तु साध्यधर्म विशिष्टता साध्या।

27. अग्निमानयं देशः, परिणामी शब्द इति यथा।

28. व्याप्तौ तु साध्यं धर्म एव।

29. अन्यथा तदघटनात्।

30. साध्यधर्माधारसंदेहापनोदाय गम्यमानस्यापि पक्षस्य वचनम्।

31 साध्यधर्मिणि साधनधर्मावबोधनाय पक्षधर्मोपसंहारवत्।

32. को वा त्रिधा हेतुमुक्त्वा समर्थयमानो न पक्षयति।

33. एतद्द्वयमेवानुमानाङ्ग, नोदाहरणम्।

34. न हि तत्साध्यप्रतिपत्त्यङ्गं तत्र यथोक्तहेतोरेव व्यापारात्।

35. तदविनाभाव निश्चयार्थं वा विपक्षे बाधकादेव तत्सिद्धेः।

36. व्यक्तिरूपं च निदर्शनं सामान्येन तु व्याप्तिस्तत्रापि तद्विप्रतिपत्ता-वनवस्थानं स्याद् दृष्टान्तान्तरापेक्षाणात्।

37. नापि व्याप्तिस्मरणार्थं तथाविधहेतुप्रयोगादेव तत्स्मृतेः।

38. तत्परमभिधीयानं साध्यधर्मिणि साध्यसाधने संदेहयति।

39. कुतोऽन्यथोपनयनिगमने।

40. न च ते तदङ्गे, साध्यधर्मिणि हेतुसाध्ययोर्वचनादेवासंशयात्।

41. समर्थनं वा वरं हेतुरूपमनुमानावयवो वास्तु साध्ये तदुपयोगात्।

42. बालव्युत्पत्यर्थं तत्त्रयोपगमे शास्त्रे एवासौ न वादेऽनुपयोगात्।

43. दृष्टान्तो द्वेधा, अन्वयव्यतिरेकभेदात्।

44. साध्यव्याप्तं साधनं यत्र प्रदर्श्यते सोऽन्वयदृष्टान्तः।

45. साध्याभावे साधनाभावो यत्रं कथ्यते स व्यतिरेकदृष्टान्तः।

46. हेतोरुपसंहार उपनयः।

47. प्रतिज्ञायास्तु निगमनम्।

48. तदनुमानं द्वेधा।

49. स्वार्थपरार्थभेदात्।

50. स्वार्थमुक्तलक्षणम्।

51. परार्थं तु तदर्थ परामर्शिवचनाज्जातम्।

52. तद्वचनमपि तद्धेतुत्वात्।

53. स हेतुर्द्वेधोपलब्ध्यनुपलब्धिभेदात्।

54. उपलब्धि र्विधिप्रतिषेधयोरनुपलब्धिश्च।

55. अविरुद्धोपलब्धिर्विधौ षोढा व्याप्यकार्यकारणपूर्वोत्तरसहचर भेदात्।

56. रसादेकसामग्र्यानुमानेन रूपानुमानमिच्छद्भिरिष्टमेव किञ्चित्कारणं हेतुर्यत्र सामर्थ्याप्रतिबंधकारणान्तरावैकल्ये।

57. न च पूर्वोत्तरचारिणोस्तादात्म्यं तदुत्पत्ति र्वा कालव्यवधाने तदनुपलब्धेः।

58. भाव्यतीतयोर्मरणजागृद्बोधयोरपि नारिष्टोद्बोधौ प्रतिहेतुत्वम्।

59. तद्व्यापाराश्रितं हि तद्भावभावित्वम्।

60. सहचारिणोरपि परस्परपरिहारेणावस्थानात् सहोत्पादाच्च।

61. परिणामी शब्दः कृतकत्वात् , य एवं, स एवं दृष्टो यथा घटः कृतकश्चायं तस्मात्परिणामीति यस्तु न परिणामी स न कृतको दृष्टोः यथा बन्ध्यास्तनंधयः, कृतकश्चायं, तस्मात् परिणामी।

62. अस्त्यत्र देहिनि बुद्धि र्व्याहारादेः।

63. अस्त्यत्रच्छाया छत्रात्।

64. उदेष्यति शकटं कृत्तिकोदयात्।

65. उद्गाद्भरणिः प्राक्तत एव।

66. अस्त्यत्र मातुलिंगे रूपं रसात्।

67. विरुद्धतदुपलब्धिः प्रतिषेधे तथा।

68. नास्त्यत्र शीतस्पर्शः औष्ण्यात्।

69. नास्त्यत्र शीतस्पर्शः धूमात्।

70. नास्मिन् शरीरिणि सुखमस्ति हृदयशल्यात्।

71. नोदेष्यति मुहूर्तान्ते शकटं रेवत्युदयात्।

72. नोद्गाद् भरणिः मुहूर्तात्पूर्वं पुष्योदयात्।

73. नास्त्यत्र भित्तौ परभागाभावोऽर्वाग्भागदर्शनात्।

74. अविरुद्धानुपलब्धिः प्रतिषेधे सप्तधा स्वभावव्यापककार्यकारणपूर्वोत्तर सहचरानुपलम्भभेदात्।

75. नास्त्यत्र भूतले घटोऽनुपलब्धेः।

76. नास्त्यत्र शिंशपा वृक्षानुपलब्धेः।

77. नास्त्यत्राप्रतिबद्धसामर्थ्योऽग्नि र्धूमानुपलब्धेः।

78. नास्त्यत्र धूमोऽनग्ने।

79. न भविष्यति मुहूर्तान्ते शकटं कृत्तिकोदयानुपलब्धेः।

80 नोदगाद्भरणिः मुहूर्तात् प्राक्तत एव।

81. नास्त्यत्र समतुलायामुन्नामो नामानुपलब्धेः।

82. विरुद्धानुपलब्धि र्विधौ त्रेधा विरुद्धकार्यकारणस्वभावानुपलब्धिभेदात्।

83. यथास्मिन् प्राणिनि व्याधिविशेषोऽस्ति निरामयचेष्टानुपलब्धेः।

84. अस्त्यत्र देहिनि दुःखमिष्टसंयोगाभावात्।

85. अनेकान्तात्मकं वस्त्वेकान्तस्वरूपानुपलब्धेः।

86. परम्परया सम्भवत्साधनमत्रैवान्तर्भावनीयम्।

87. अभूदत्र चक्रे शिवकः स्थासात्।

88. कार्यकार्यमविरुद्धकार्योपलब्धौ।

89. नास्त्यत्र गुहायां मृगक्रीडनं, मृगारिसंशब्दनात् कारणविरुद्धकार्यं विरुद्धकार्योपलब्धौ यथा।

90. व्युत्पन्नप्रयोगस्तु तथोपपत्त्याऽन्यथानुपपत्त्यैव वा।

91. अग्निमानयं देशस्तथैव धूमवत्त्वोपपत्ते धूमवत्वान्यथानुपपत्ते र्वा।

92. हेतुप्रयोगो हि यथा व्याप्तिग्रहणं विधीयते सा च तावन्मात्रेण व्युत्पन्नैरव-धार्यते।

93. तावता च साध्यसिद्धिः।

94. तेन पक्षस्तदाधार सूचनायोक्तः।

95. आप्तवचनादिनिबन्धनमर्थज्ञानमागमः।

96. सहजयोग्यता संकेतवशाद्धिशब्दादयो वस्तुप्रतिपत्तिहेतवः।

97. यथा मेर्वादयः सन्ति।

अथ चतुर्थः परिच्छेदः

1. सामान्यविशेषात्मा तदर्थो विषयः।

2. अनुवृत्तव्यावृत्तप्रत्ययगोचरत्वात् पूर्वोत्तराकार परिहारावाप्ति स्थितिलक्षण परिणामेनार्थ क्रियोपपत्तेश्च।

3. सामान्यं द्वेधा तिर्यगूर्धताभेदात्।

4. सदृशपरिणामस्तिर्यक् खण्डमुण्डादिषु गोत्ववत्।

5. परापरविर्वतव्यापि द्रव्यमूर्द्धता सामान्य, मृदिव स्थासादिषु।

6. विशेषश्च।

7. पर्यायव्यतिरेकभेदात्।

8. एकस्मिन्द्रव्ये क्रमभाविनः परिणामाः पर्याया आत्मनि हर्षविषादादिवत्।

9. अर्थान्तरगतो विसदृशपरिणामो व्यतिरेको गोमहिषादिवत्।

अथ पञ्चमः परिच्छेदः

1. अज्ञाननिवृत्तिर्हानोपादानोपेक्षाश्च फलम्।

2. प्रमाणादभिन्नं भिन्नं च।

3. यः प्रमिमीते स एव निवृत्ताज्ञानो जहात्यादत्ते उपेक्षते चेति प्रतीतेः।

अथ षष्ठः परिच्छेदः

1. ततोऽन्यत्तदाभासम्।

2. अस्वसंविदित–गृहीतार्थदर्शनसंशयादयः प्रमाणाभासाः।

3. स्वविषयोपदर्शकत्वाभावात्।

4. पुरुषान्तरपूर्वार्थ गच्छत्तृणस्पर्शस्थाणुपुरुषादि ज्ञानवत्।

5. चक्षूरसयोर्द्रव्ये संयुक्तसमवायवच्च।

6. अवैशद्ये प्रत्यक्षं तदाभासम्, बौद्धस्याकस्माद् धूमदर्शनाद् वह्निविज्ञानवत्।

7. वैशद्येऽपि परोक्षं तदाभासं, मीमांसकस्य करणज्ञानवत्।

8. अतस्मिंस्तदिति ज्ञानं स्मरणाभासं, स जिनदत्ते देवदत्तो यथा।

9. सदृशे तदेवेदं तस्मिन्नेव तेन सदृशं, यमलकवदित्यादि प्रत्यभिज्ञानाभासम्।

10. असंबद्धे तज्ज्ञानं तर्काभासम्।

11. इदमनुमानाभासम्।

12. तत्रानिष्टादिः पक्षाभासः।

13. अनिष्टो मीमांसकस्यानित्यः शब्दः।

14. सिद्धः श्रावणः शब्दः।

15. बाधितः प्रत्यक्षानुमानागमलोकस्ववचनैः।

16. तत्र प्रत्यक्षबाधितो यथा, अनुष्णोऽग्नि र्द्रव्यत्वाज्जलवत्।

17. अपरिणामी शब्दः कृतकत्वात् घटवत्।

18. प्रेत्याऽसुखप्रदो धर्मः पुरुषाश्रितत्वादधर्मवत्।

19. शुचि नरशिरः कपालं प्राण्यङ्गत्वाच्छंखशुक्तिवत्।

20. माता मे बन्ध्या, पुरुषसंयोगेऽप्यगर्भत्वात् प्रसिद्धबन्ध्यावत्।

21. हेत्वाभासा असिद्धविरुद्धानैकान्तिकाकिंचित्कराः।

22. असत्सत्तानिश्चयोऽसिद्धः।

23. अविद्यमानसत्ताकः परिणामी शब्दः चाक्षुषत्वात्।

24. स्वरूपेणासत्वात्।

25. अविद्यमाननिश्चयो मुग्धबुद्धिं प्रत्यग्निरत्रधूमात्।

26. तस्य वाष्पादिभावेन भूतसंघाते सन्देहात्।

27. सांख्यं प्रति परिणामी शब्दः कृतकत्वात्।

28. तेनाज्ञातत्वात्।

29. विपरीतनिश्चिताविनाभावो विरुद्धोऽपरिणामी शब्दः कृतकत्वात्।

30. विपक्षेऽप्यविरुद्धवृत्तिरनैकान्तिकः।

31. निश्चितवृत्तिरनित्यः शब्दः प्रमेयत्वात् घटवत्।

32. आकाशे नित्येऽप्यस्य निश्चयात्।

33. शंकितवृत्तिस्तु नास्ति सर्वज्ञो वक्तृत्वात्।

34. सर्वज्ञत्वेन वक्तृत्वाविरोधात्।

35. सिद्धे प्रत्यक्षादिबाधिते च साध्ये हेतुरकिंचित्करः।

36. सिद्धः श्रावणः शब्दः शब्दत्वात्।

37. किञ्चिदकरणात्।

38. यथाऽनुष्णोऽग्नि र्द्रव्यत्वादित्यादौ किञ्चित्कर्तुमशक्यत्वात्।

39. लक्षणे एवासौ दोषो व्युत्पन्नप्रयोगस्य पक्षदोषेणैव दुष्टत्वात्।

40. दृष्टान्ताभासा अन्वयेऽसिद्धसाधनोभयाः।

41. अपौरुषेयः शब्दोऽमूर्तत्वादिन्द्रियसुखपरमाणुघटवत्।

42. विपरीतान्वयश्च यदपौरुषेयं तदमूर्तम्।

43. विद्युदादिनाति प्रसंगात्।

44. व्यतिरेकेऽसिद्धतद्व्यतिरेकाः परमाण्विन्द्रिय सुखाकाशवत्।

45. विपरीतव्यतिरेकश्च यन्नामूर्तं तन्नापौरुषेयम्।

46. बालप्रयोगाभासः पञ्चावयवेषु कियद्धीनता।

47. अग्निमानयं प्रदेशो धूमवत्वाद्यदित्थं तदित्थं यथा महानसः।

48. धूमवाॅंश्चायम्।

49. तस्मादग्निमान् धूमवाँश्चायम्।

50. स्पष्टतया प्रकृतप्रतिपत्तेरयोगात्।

51. रागद्वेषमोहाक्रान्तपुरुषवचनाज्जातमागमाभासम्।

52. यथा नद्यास्तीरे मोदकराशयः सन्ति, धावध्वं माणवकाः।

53. अंगुल्यग्रे हस्तियूथशतमास्ते इति च।

54. विसंवादात्।

55. प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणमित्यादि संख्याभासम्।

56. लोकायतिकस्य प्रत्यक्षतः परलोकादिनिषेधस्य परबुद्ध्यादेश्चासिद्धेरत-द्विषयत्वात्।

57. सौगतसांख्ययौगप्राभाकरजैमिनीयानां प्रत्यक्षानुमानागमोप मानार्थापत्या-भावैरेकैकाधिकैः व्याप्तिवत्।

58. अनुमानादेरतद्विषयत्वे प्रमाणान्तरत्वम्।

59. तर्कस्येव व्याप्तिगोचरत्वे प्रमाणस्याव्यवस्थापकत्वात्।

60. प्रतिभासभेदस्य च भेदकत्वात्।

61. विषयाभासः सामान्यं विशेषो द्वयं वा स्वतन्त्रम्।

62. तथा प्रतिभासत्वात् कार्याकरणाञ्च।

63. समर्थस्य करणे सर्वदोत्पत्तिरनपेक्षत्वात्।

64. परापेक्षणे परिणामित्वमन्यथा तदभावात्।

65. स्वयमसमर्थस्याकारकत्वात् पूर्ववत्।

66. फलाभासः प्रमाणादभिन्नं भिन्नमेव वा।

67. अभेदे तद्व्यवहारानुपपत्तेः।

68. व्यावृत्यापि न तत्कल्पना फलान्तराद् व्यावृत्याऽफलत्वप्रसंगात्।

69. प्रमाणान्तरात् व्यावृत्येवाप्रमाणत्वस्य।

70. तस्माद्वास्तवो भेदः।

71. भेदेत्वात्मान्तरवत्तदनुपपत्तेः।

72. समवायेऽति प्रसंगः।

73. प्रमाणतदाभासौ दुष्टतयोद्भावितौ परिहृतापरिहृतदोषौ वादिनः साधनतदाभासौ प्रतिवादिनो दूषणभूषणे च।

74. संभवदन्यद्विचारणीयम्।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः

परिशिष्ट - 2

परीक्षामुख में आगत पारिभाषिक शब्द

1. **प्रमाण** - अपने और अपूर्व अर्थ के निश्चय करने वाले ज्ञान को प्रमाण कहते हैं।

2. **प्रमाणाभास** - जो ज्ञान प्रमाण के लक्षण से रहित है वह प्रमाणाभास कहलाता है। जैसे अस्वसंवेदी, गृहीतग्राही, अनिश्चयात्मक, संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय ये सब ज्ञान प्रमाणाभास हैं।

3. **प्रमाणसंख्या** - प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद से प्रमाण की संख्या दो है।

4. **संख्याभास** - प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण है। अथवा प्रत्यक्ष और अनुमान - ये दो प्रमाण हैं, इत्यादि प्रकार से कथन करना संख्याभास है।

5. **प्रमाणविषय** - सामान्यविशेषात्मक अर्थ प्रमाण का विषय होता है।

6. **विषयाभास** - केवल सामान्य को या केवल विशेष को अथवा स्वतन्त्र रूप से दोंनो को प्रमाण का विषय मानना विषयाभास है।

7. **प्रमाणफल** - अज्ञाननिवृत्ति, हान, उपादान और उपेक्षा ये प्रमाण के फल हैं।

8. **फलाभास** - प्रमाण के फल को प्रमाण से सर्वथा भिन्न मानना फलाभास है, क्योंकि प्रमाण का फल प्रमाण से कथंचित् अभिन्न और कथंचित् भिन्न होता है।

9. **समारोप** - संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय को समारोप कहते हैं।

10. **अपूर्वार्थ** - जिस पदार्थ का पहले किसी ज्ञान से निश्चय नहीं हुआ है उसे अपूर्वार्थ कहते हैं। किसी ज्ञान से ज्ञात पदार्थ भी उसमें समारोप हो जाने के कारण अपूर्वार्थ हो जाता है।

11. **प्रत्यक्ष** - विशद अर्थात् निर्मल और स्पष्ट ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते हैं।

12. **सांव्यवहारिकप्रत्यक्ष** - इन्द्रिय और मन के निमित्त से होने वाले एकदेश विशद ज्ञान को सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं।

13. **मुख्यप्रत्यक्ष** - सम्यग्दर्शनादि अन्तरङ्ग और देशकालिक बहिरङ्ग सामग्री

की विशेषता (समग्रता) से दूर हो गये हैं, समस्त आवरण जिसके ऐसे अतीन्द्रिय और पूर्णरूप से विशदज्ञान को मुख्यप्रत्यक्ष कहते हैं।

14. **प्रत्यक्षाभास** - अविशद ज्ञान को प्रत्यक्ष मानना प्रत्यक्षाभास है। जैसे बौद्धाभिमत निर्विकल्पक प्रत्यक्ष प्रत्यक्षाभास है।

15. **वैशद्य** - अन्य ज्ञान के व्यवधान से रहित प्रतिभास को अथवा वर्ण, संस्थान (आकार) आदि की विशेषता को लिए हुए प्रतिभास को वैशद्य कहते हैं।

16. **योग्यता** - अपने आवरण (ज्ञानावरण) के क्षयोपशम को योग्यता कहते हैं। इसी योग्यता के द्वारा ज्ञान प्रतिनियत अर्थ की व्यवस्था करता है। अर्थात् घटादि पदार्थों को जानता है।

17. **केशोण्डुक** - केशोण्डुक रूप अर्थ के अभाव में होने वाले केशोण्डुक रूप अर्थ के ज्ञान को केशोण्डुकज्ञान कहते हैं।

18. **परोक्ष** - अविशद ज्ञान को परोक्ष कहते हैं। यह ज्ञान प्रत्यक्ष से भिन्न अर्थात् अविशद होता है।

19. **परोक्षाभास** - विशद ज्ञान को परोक्ष मानना परोक्षाभास है। मीमांसक करणज्ञान (प्रमिति का साधकतम ज्ञान) को परोक्ष मानते हैं। उनका वैसा मानना परोक्षाभास है, क्योंकि करणज्ञान विशद होता है।

20. **स्मृति** - धारणा रूप संस्कार के उद्बोध (प्रकट होना) से होने वाले तथा तत् (वह) इस प्रकार के आकार वाले ज्ञान को स्मृति कहते हैं। जैसे वह देवदत्त है।

21. **स्मरणाभास** - जिसका कभी अनुभव (प्रत्यक्ष) नहीं हुआ है, उसमें वह इस प्रकार के ज्ञान के होने को स्मरणाभास कहते हैं। जैसे जिनदत्त में वह देवदत्त ऐसा स्मरण करना स्मरणाभास है।

22. **प्रत्यभिज्ञान** - वर्तमान पर्याय का प्रत्यक्ष और पूर्व पर्याय का स्मरण होने से दोनों पर्यायों (अवस्थाओं) का संकलन रूप (एकत्व, सादृश्य आदि के ग्रहण रूप) जो ज्ञान होता है, उसे प्रत्यभिज्ञान कहते है। जैसे - यह वही देवदत्त है, जिसे एक वर्ष पहले देखा था।

23. **प्रत्यभिज्ञानाभास** - सदृश पदार्थ में वह यह वही है, ऐसा कहना तथा उसी पदार्थ में यह उसके सदृश है ऐसा कहना प्रत्यभिज्ञानाभास है।

24. **ऊह** - (अन्वय) और अनुपलम्भ (व्यतिरेक) के निमित्त से जो व्याप्ति का ज्ञान होता है, उसे ऊह (तर्क) कहते हैं। जैसे - अग्नि के होने पर धूम होता है और अग्नि के अभाव में धूम नहीं होता है, इस प्रकार के ज्ञान का नाम ऊह है।

25. **तर्क** - ऊपर नं 24 में ऊह की जो परिभाषा बतलायी गई है, वही तर्क की परिभाषा है। तर्क और ऊह दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। धूम और अग्नि में अविनाभाव सम्बन्ध है और तर्क के द्वारा इसी अविनाभाव सम्बन्ध का ज्ञान किया जाता है।

26. **तर्काभास** - अविनाभाव सम्बन्ध से रहित पदार्थों में अविनाभाव सम्बन्ध का ज्ञान करना तर्काभास है।

27. **अनुमान** - साधन से होने वाले साध्य के ज्ञान को अनुमान कहते हैं। जैसे धूम से जो अग्नि का ज्ञान होता है, वह अनुमान कहलाता है।

28. **स्वार्थानुमान** - दूसरे के उपदेश के बिना स्वतः ही साधन से साध्य का जो ज्ञान होता है, उसे स्वार्थानुमान कहते हैं। स्वार्थानुमान अपने लिए होता है।

29. **परार्थानुमान** - स्वार्थानुमान के विषयभूत अर्थ का परामर्श करने वाले वचनों से जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उसे परार्थानुमान कहते हैं। परार्थानुमान पर के लिए होता है।

30. **अनुमानाभास** - व्याप्ति के ग्रहण, स्मरण आदि के बिना अकस्मात् धूम के दर्शन से होने वाला अग्नि का ज्ञान अनुमानाभास है।

31. **आगम** - आप्त के वचनों से होने वाले अर्थ ज्ञान को आगम कहते हैं।

32. **आगमाभास** - रागद्वेष और मोह से आक्रान्त (परिव्याप्त) पुरुषों के वचनों से होने वाले अर्थ ज्ञान को आगमाभास कहते हैं।

33. **हेतु** - साध्य के साथ जिसका अविनाभाव निश्चित होता है, उसे हेतु कहते हैं।

34. **हेत्वाभास** – जो हेतु के लक्षण से रहित है, किन्तु हेतु जैसा मालूम पड़ता है, उसे हेत्वाभास कहते हैं।

35. **असिद्धहेत्वाभास** – जिस हेतु की सत्ता न हो अथवा जिसका निश्चय न हो, उसे असिद्धहेत्वाभास कहते हैं।

36. **विरुद्धहेत्वाभास** – जिस हेतु का साध्य के विरुद्ध के साथ अविनाभाव निश्चित होता है, उसे विरुद्धहेत्वाभास कहते हैं। जैसे यह कहना कि शब्द नित्य है, कृतक होने से। यहाँ कृतकत्व हेतु विरुद्ध हेत्वाभास है।

37. **अनैकान्तिकहेत्वाभास** – जो हेतु पक्ष, सपक्ष और विपक्ष इन तीनों में रहता है, उसे अनैकान्तिक हेत्वाभास कहते हैं। जैसे यह कहना कि शब्द अनित्य है, प्रमेय होने से। यहाँ प्रमेयत्व हेतु अनैकान्तिक हेत्वाभास है।

38. **अकिञ्चित्करहेत्वाभास** – साध्य के सिद्ध होने पर और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से बाधित होने पर भी उस साध्य की सिद्धि के लिए प्रयुक्त हेतु अकिञ्चित्कर हेत्वाभास कहलाता है।

39. **प्रतिज्ञा** – किसी वस्तु का अनुमान करते समय पहले प्रतिज्ञा की जाती है। जैसे यह पर्वत अग्निमान है, ऐसा कहना प्रतिज्ञा है।

40. **धर्मी** – जो किसी प्रमाण से प्रसिद्ध होता है, उसे धर्मी कहते हैं। धर्मी का दूसरा नाम पक्ष भी है। पर्वत में अग्नि को सिद्ध करते समय पर्वत धर्मी होता है। वह साध्यधर्मविशिष्ट होने के कारण धर्मी कहलाता है।

41. **पक्ष** – जहाँ साध्य की सिद्धि की जाती है, उसे पक्ष कहते हैं। पर्वत में अग्नि को सिद्ध करते समय पक्ष होता है। दूसरों शब्दों में धर्म और धर्मी के समुदाय का नाम पक्ष है।

42. **सपक्ष** – जो पक्ष के समान होता है अर्थात् जहाँ साध्य (अग्नि) और साधन (धूम) दोनों पाये जाते हैं, उसे सपक्ष कहते हैं। जैसे महानस सपक्ष है।

43. **विपक्ष** – जहाँ साध्य और साधन दोनों का अभाव पाया जाता है, उसे विपक्ष कहते हैं। जैसे नदी विपक्ष है।

44. **पक्षाभास** – अनिष्ट, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से बाधित और सिद्ध को पक्ष

अर्थात् साध्य बतलाना पक्षाभास कहलाता है।

45. **उदाहरण** - जहाँ-जहाँ धूम होता है, वहाँ-वहाँ अग्नि होती है। जैसे महानस। इस प्रकार के कथन को उदाहरण कहते हैं। यहाँ महानस दृष्टान्त है और उसका वचन उदाहरण कहलाता है।

46. **उपनय** - पक्ष में हेतु के उपसंहार करने को उपनय कहते हैं। जैसे यह पर्वत धूमवान् है, ऐसा कहना उपनय कहलाता है।

47. **निगमन** - प्रतिज्ञा के उपसंहार को निगमन कहते हैं। जैसे धूमवान होने से पर्वत अग्निमान है, ऐसा कहना निगमन कहलाता है।

48. **अन्वयदृष्टान्त** - जहाँ साध्य के साथ साधन की व्याप्ति बतलायी जाती है, उसे अन्वय दृष्टान्त कहते हैं। जैसे अग्नि के साथ धूम की व्याप्ति बतलाने में महानस अन्वयदृष्टान्त कहलाता है।

49. **अन्वयदृष्टान्ताभास** - अन्वयदृष्टान्ताभास के तीन भेद हैं- असिद्धसाध्य, असिद्धसाधन और असिद्धोभय। इनको साध्यविकल, साधनविकल, उभयविकल भी कहते हैं। शब्द पौरुषेय है, क्योंकि वह अमूर्त है। जैसे इन्द्रिय सुख, परमाणु और घट। ये दोनों दृष्टान्त क्रमशः साध्यविकल, साधनविकल, उभयविकल अन्वयदृष्टान्ताभास हैं।

50. **व्यतिरेक दृष्टान्त** - यहाँ साध्य के अभाव में साधन का अभाव बतलाया गया है, उसे व्यतिरेक दृष्टान्त कहते हैं। जैसे जहाँ अग्नि नहीं होती है वहाँ धूम भी नहीं होता है। जैसे - जलाशय। यहाँ जलाशय व्यतिरेक दृष्टान्त है।

51. **व्यतिरेकदृष्टान्ताभास** - व्यतिरेकदृष्टान्ताभास के भी तीन भेद हैं - असिद्धसाध्यव्यतिरेक, असिद्धसाधनव्यतिरेक और असिद्धोभयव्यतिरेक। शब्द अपौरुषेय है, अमूर्त होने से। जैसे - परमाणु, इन्द्रियसुख और आकाश। ये तीनों दृष्टान्त क्रमशः असिद्धसाध्यव्यतिरेक, असिद्ध-साधन व्यतिरेक और असिद्धोभयव्यतिरेक दृष्टान्ताभास हैं।

52. **साध्य** - इष्ट, अबाधित और असिद्धपदार्थ को साध्य कहते हैं।

53. **अविनाभाव** - सहभावनियम और क्रमभावनियम को अविनाभाव कहते

हैं। अविनाभाव का ही दूसरा नाम व्याप्ति है।

54. **सहभावनियम** - सहचारी और व्याप्य-व्यापक पदार्थों में सहभावनियम होता है। जैसे रूप और रस में तथा शिंशपा और वृक्ष में सहभावनियम पाया जाता है।

55. **क्रमभावनियम** - पूर्वचर और उत्तरचर में तथा कार्य और कारण में क्रमभावनियम होता है। जैसे कृत्तिकोदय और शकटोदय में तथा धूम और अग्नि में क्रमभावनियम है।

56. **तिर्यक्सामान्य** - सदृश (सामान्य) परिणाम को तिर्यक् सामान्य कहते हैं। जैसे-खण्डी, मुण्डी आदि गौ में रहने वाला गोत्व तिर्यक् सामान्य है।

57. **ऊर्ध्वता सामान्य** - पूर्व और उत्तर पर्यायों में रहने वाले द्रव्य को ऊर्ध्वता सामान्य कहते हैं। जैसे स्थास, कोश, कुशूल आदि घट की पर्यायों में रहने वाली मिट्टी ऊर्ध्वता सामान्य कहलाती है।

58. **पर्यायविशेष** - एक द्रव्य में क्रम से होने वाले परिणामों को पर्याय-विशेष कहते हैं। जैसे आत्मा में क्रम से होने वाले हर्ष, विषाद आदि परिणाम पर्यायविशेष कहलाते हैं।

59. **व्यतिरेकविशेष** - एक पदार्थ से विजातीय अन्य पदार्थ में रहने वाले विसदृश परिणाम को व्यतिरेकविशेष कहते हैं। जैसे गाय से भैंस में व्यतिरेकविशेष पाया जाता है।

60. **बालप्रयोगाभास** - अनुमान के प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन इन पाँच अवयवों का प्रयोग न करके कुछ कम अवयवों का प्रयोग करना बालप्रयोगाभास है, क्योंकि बालकों को समझाने के लिए पाँचों अवयवों का प्रयोग आवश्यक है।

61. **करणज्ञान** - प्रमिति की उत्पत्ति में जो साधकतम (विशिष्ट) कारण होता है, उसे करण कहते हैं। घटादि की प्रमिति ज्ञान के द्वारा होती है। अतः ज्ञान करण कहलाता है। यह करणज्ञान विशद (प्रत्यक्ष) होता है, किन्तु मीमांसक इसे अविशद मानते हैं।

62. **उपलब्धिलक्षणप्राप्त** - जिस वस्तु में चक्षु इन्द्रिय के द्वारा उपलब्ध

होने की योग्यता होती है, उसे उपलब्धि लक्षण प्राप्त(दृश्य) कहते हैं। जैसे घट उपलब्धि लक्षण प्राप्त है और पिशाच अनुपलब्धि लक्षण प्राप्त है।

63. **लौकायतिक** – चार्वाक का दूसरा नाम लौकायतिक है। जो चारू (सुन्दर) वचन बोलते हैं अथवा आत्मा, परलोक आदि का चर्वण (भक्षण) करते हैं, उन्हें चार्वाक कहते हैं। ये साधारण लोगों की तरह आचरण करते हैं। इसलिए इनको लौकायतिक भी कहते हैं। इनके जीवन का लक्ष्य है, खाओ, पिओ और मस्त रहो। वर्तमान में भौतिकवादियों को चार्वाक कहा जा सकता है।

64. **जैमिनीय** – महर्षि जैमिनी मीमांसादर्शन के सूत्रकार तथा प्रवर्तक हैं। इसलिए जैमिनी के अनुयायियों को जैमिनीय (मीमांसक) कहते हैं।

65. **यौग** – नैयायिक और वैशेषिकों का सम्मिलित नाम यौग है। अनेक बातों में न्याय और वैशेषिक दर्शनों में समानता पाई जाती है। इसलिए इन दोनों के योग (जोड़ी) को यौग नाम दे दिया गया है।

66. **सौगत** – महात्मा बुद्ध का एक नाम सुगत भी है। अतः सुगत के अनुयायियों को सौगत कहते हैं। बौद्ध और सौगत दोनों पर्यायवाची शब्द हैं।

(साभार – प्रमेयकमलमार्तण्ड परिशीलन से)

परिशिष्ट-3

कुछ विशेष निबन्ध

1. असाधारण धर्मवचन के लक्षणत्व का निर्णय

असाधारण धर्म के कथन करने को लक्षण कहते हैं, ऐसा किन्हीं नैयायिक और हेमचन्द्राचार्य का कहना है, पर वह ठीक नहीं है, क्योंकि लक्ष्य रूप धर्मी वचन का लक्षण रूप धर्म वचन के साथ सामानाधिकरण्य(शब्द सामानाधिकरण्य)के अभाव का प्रसंग आता है। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है –

यदि असाधारण धर्म को लक्षण का स्वरूप माना जाता तो लक्ष्यवचन और लक्षणवचन में सामानाधिकरण्य नहीं बन सकता। यह नियम है कि लक्ष्य-लक्षणभावस्थल में लक्ष्यवचन में एकार्थ प्रतिपादकत्वरूप सामानाधिकरण्य अवश्य होता है।

जैसे ज्ञानी जीवः अथवा सम्यग्ज्ञानं प्रमाणम् इनमें शब्द सामानाधिकरण्य है। यहाँ जीवः लक्ष्य वचन है, क्योंकि जीव का लक्षण किया जा रहा है। और ज्ञानी लक्षण वचन है, क्योंकि वह जीव को अन्य अजीवादि पदार्थों से व्यावृत्त करता है। ज्ञानवान् जीव है, इसमें किसी को विवाद नहीं है।

अब यहाँ देखेंगे कि जीव शब्द का जो अर्थ है, वही ज्ञानी शब्द का अर्थ है और जो ज्ञानी शब्द का अर्थ है वही जीव शब्द का है। अतः दोनों का वाच्यार्थ एक है। जिन दो शब्दों-पदों का वाच्यार्थ एक होता है, उसमें शब्द सामानाधिकरण्य होता है। जैसे नीलं कमलम् यहाँ स्पष्ट है। इस तरह ज्ञानी लक्षण वचन में और जीव लक्ष्यवचन में एकार्थप्रतिपादकत्व रूप शब्द सामानाधिकरण्य सिद्ध है। इसी प्रकार **सम्यग्ज्ञानं प्रमाणम्** यहाँ भी जानना चाहिए।

इस प्रकार जहाँ कहीं भी निर्दोष लक्ष्यलक्षणभाव किया जावेगा वहाँ सब जगह शब्दसामानाधिकरण्य पाया जायेगा। इस नियम के अनुसार असाधारण धर्मवचनं लक्षणम् यहाँ असाधारण धर्म जब लक्षण होगा तो लक्ष्य धर्मी होगा और लक्षण वचन धर्मवचन तथा लक्ष्यवचन धर्मीवचन माना जायेगा, किन्तु

लक्ष्य रूप धर्मी वचन का प्रतिपाद्य अर्थ एक नहीं है। धर्मवचन का प्रतिपाद्य अर्थ तो धर्म है और धर्मीवचन का प्रतिपाद्य अर्थ धर्मी है। ऐसी हालत में दोनों का प्रतिपाद्य अर्थ तो धर्म है और धर्मीवचन का प्रतिपाद्य अर्थ धर्मी है। ऐसी हालत में दोनों का प्रतिपाद्य अर्थ भिन्न-भिन्न होने से धर्मीरूप लक्ष्यवचन और धर्मरूपलक्षण वचन में एकार्थप्रतिपादकत्व रूप सामानाधिकरण्य सम्भव नहीं है और इसलिए उक्तप्रकार का लक्षण करने में शब्दसामानाधिकरण्याभाव प्रयुक्त असम्भव दोष आता है।

अव्याप्ति दोष भी इस लक्षण में आता है। दण्डादि असाधारण धर्म नहीं है, फिर भी वे पुरुष के लक्षण होते हैं। अग्नि की उष्णता, जीव का ज्ञान आदि जैसे अपने लक्ष्य में मिले हुए होते हैं, इसलिए वे उनके असाधारण धर्म कहे जाते हैं। वैसे दण्डादि पुरुष में मिले हुए नहीं हैं – उससे पृथक् हैं और इसलिए पुरुष के असाधारण धर्म नहीं हैं। इस प्रकार लक्षण रूप लक्ष्य के एकदेश अनात्मभूत दण्डादि लक्षण में असाधारण धर्म के न रहने से लक्षण (असाधारणधर्म) अव्याप्त है।

इतना ही नहीं, इस लक्षण में अतिव्याप्ति दोष भी आता है। शावलेयत्वादि रूप असाधारण धर्म अव्याप्त नाम का लक्षणाभास भी है। इसका खुलासा निम्नप्रकार है –

मिथ्या अर्थात् सदोष लक्षण को लक्षणाभास कहते हैं। उसके तीन भेद हैं–1. अव्याप्त, 2. अतिव्याप्त, 3. असम्भव। लक्ष्य के एकदेश में लक्षण के रहने को अव्याप्त लक्षणाभास कहते हैं। जैसे गाय का शावलेयत्व। शावलेयत्व सब गायों में नहीं पाया जाता, वह कुछ ही गायों का धर्म है, इसलिए अव्याप्त है।

लक्ष्य और अलक्ष्य में लक्षण के रहने को अतिव्याप्त लक्षणाभास कहते हैं। जैसे गाय का ही पशुत्व (पशुपना) लक्षण करना। यह पशुत्व गायों के सिवाय अश्वादि पशुओं में भी पाया जाता है इसलिए पशुत्व अतिव्याप्त है।

जिसकी लक्ष्य में वृत्ति बाधित हो अर्थात् जो लक्ष्य में बिल्कुल ही नहीं रहता है वह असम्भवलक्षणाभास है। जैसे मनुष्य का लक्षण सींग। सींग किसी

भी मनुष्य में नहीं पाया जाता, अतः वह असम्भवलक्षणाभास है।

यहाँ लक्ष्य के एकदेश में रहने के कारण शावलेयत्व अव्याप्त है, फिर भी उसमें असाधारण धर्मत्व रहता है शावलेयत्व गाय के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं रहता–गाय में ही पाया जाता है। परन्तु वह लक्ष्यभूत समस्त गायों का व्यावर्त्तक अश्वादि से जुदा करने वाला नहीं है, कुछ ही गायों को व्यावृत्त कराता है। इसलिए अलक्ष्यभूत अव्याप्त लक्षणाभास में असाधारणधर्म के रहने के कारण अतिव्याप्त भी है। इस तरह असाधारण धर्म को लक्षण कहने में असम्भव, अव्याप्ति और अतिव्याप्ति ये तीनों ही दोष आते हैं। अतः मिली हुई अनेक वस्तुओं में से किसी एक वस्तु के अलग कराने वाले हेतु को लक्षण कहते हैं। यही लक्षण ठीक है।

2. प्रमाण के प्रामाण्य का निर्णय

प्रामाण्य का निश्चय – अभ्यस्त विषय में तो स्वतः होता है और अनभ्यस्त विषय में पर से होता है। तात्पर्य यह है कि प्रामाण्य की उत्पत्ति तो सर्वत्र पर से ही होती है, किन्तु प्रामाण्य का निश्चय परिचित विषय में स्वतः और अपरिचित विषय में परतः होता है। परिचित कई बार जाने हुए अपने गाँव के तालाब का जल वगैरह अभ्यस्त विषय हैं और अपरिचित–नहीं जाने हुए दूसरे गाँव के तालाब का जल वगैरह अनभ्यस्त विषय है। ज्ञान का निश्चय कराने वाले कारणों के द्वारा ही प्रामाण्य का निश्चय होना स्वतः है और उससे भिन्न कारणों से होना परतः है।

उनमें से अभ्यस्त विषय में 'जल है' इस प्रकार ज्ञान होने पर ज्ञानस्वरूप के निश्चय के समय में ही ज्ञानगत प्रमाणता का भी निश्चय अवश्य हो जाता है। नहीं तो दूसरे ही क्षण में जल में सन्देहरहित प्रवृत्ति नहीं होती, किन्तु जल ज्ञान होने के बाद ही सन्देह रहित प्रवृत्ति अवश्य होती है। अतः अभ्यास दशा में तो प्रामाण्य का निश्चय स्वतः ही होता है। पर अनभ्यास दशा में जलज्ञान होने पर 'जलज्ञान मुझे हुआ' इस प्रकार से ज्ञान के स्वरूप का निश्चय हो जाने पर भी उसके प्रामाण्य का निश्चय अन्य (अर्थक्रियाज्ञान अथवा संवादज्ञान) से ही होता है। यदि प्रामाण्य का निश्चय अन्य से न हो, स्वतः हो तो जलज्ञान के बाद

सन्देह नहीं होना चाहिए। पर सन्देह अवश्य होता है कि मुझको जो जल का ज्ञान हुआ है वह जल है या बालू का ढेर? इस सन्देह के बाद ही कमलों की गन्ध, ठण्डी हवा के आने आदि से जिज्ञासु पुरुष निश्चय करता है कि मुझे जो पहले जल का ज्ञान हुआ है वह प्रमाण है, सच्चा है, क्योंकि जल के बिना कमल की गन्ध आदि नहीं आ सकती है। अतः निश्चय हुआ कि अपरिचित दशा में प्रामाण्य का निर्णय पर से ही होता है।

3. यौगाभिमत सन्निकर्ष के प्रत्यक्षता का निराकरण

नैयायिक और वैशेषिक सन्निकर्ष (इन्द्रिय और पदार्थ का सम्बन्ध) को प्रत्यक्ष मानते हैं। पर वह ठीक नहीं है क्योंकि सन्निकर्ष अचेतन है, वह प्रमिति के प्रति करण कैसे हो सकता है? प्रमिति के प्रति जब करण नहीं, तब प्रमाण कैसे? और जब प्रमाण ही नहीं तो प्रत्यक्ष कैसे?

दूसरी बात यह है कि चक्षु इन्द्रिय 'रूप का' ज्ञान सन्निकर्ष के बिना ही करता है, क्योंकि वह अप्राप्यकारी है। इसलिए सन्निकर्ष के अभाव में भी प्रत्यक्ष ज्ञान होने से प्रत्यक्ष में सन्निकर्ष रूपता ही नहीं है। चक्षु इन्द्रिय को जो यहाँ अप्राप्यकारी कहा गया है, वह असिद्ध नहीं है। कारण, प्रत्यक्ष से चक्षु इन्द्रिय में अप्राप्यकारिता ही प्रतीत होती है।

शंका – यद्यपि चक्षु इन्द्रिय की प्राप्यकारिता (पदार्थ को प्राप्य करके प्रकाशित करना) प्रत्यक्ष से मालूम नहीं होती तथापि उसे परमाणु की तरह अनुमान से सिद्ध करेंगे। जिस परमाणु प्रत्यक्ष से सिद्ध न होने पर भी 'परमाणु' है क्योंकि स्कन्धादि कार्य अन्यथा नहीं हो सकते इस अनुमान से उसकी सिद्धि होती है, उसी प्रकार चक्षु इन्द्रिय पदार्थ को प्राप्त करके प्रकाश करने वाली है, क्योंकि वह बहिरिन्द्रिय है। (बाहर से देखी जाने वाली इन्द्रिय है) जो बहिरिन्द्रिय है, वह पदार्थ को प्राप्त करके ही प्रकाश करती है, जैसे स्पर्शन इन्द्रिय इस अनुमान से चक्षु में प्राप्यकारिता की सिद्धि होती है और प्राप्यकारिता ही सन्निकर्ष है। अतः चक्षु इन्द्रिय में सन्निकर्ष की अव्याप्ति नहीं है। अर्थात् चक्षु इन्द्रिय भी सन्निकर्ष के होने पर ही रूप ज्ञान कराती है। इसलिए सन्निकर्ष को प्रत्यक्ष मानने में कोई दोष नहीं है।

समाधान - नहीं यह अनुमान सम्यक् अनुमान नहीं हैं - अनुमानाभास है। वह इस प्रकार से है -

इस अनुमान में 'चक्षु' पद से कौन-सी चक्षु को पक्ष बनाया है? लौकिक (गोलक रूप) चक्षु को अथवा अलौकिक (किरण रूप) को? पहले विकल्प में, हेतु कालात्यापदिष्ट (बाधितविषय नाम का हेत्वाभास) है, क्योंकि गोलक रूप चक्षु विषय के पास जाती हुई किसी को भी प्रतीत नहीं होने से उसकी विषय प्राप्ति प्रत्यक्ष से बाधित है।

दूसरे विकल्प में, हेतु आश्रयासिद्ध है क्योंकि किरण रूप अलौकिक चक्षु अभी तक सिद्ध नहीं है। दूसरी बात यह है कि वृक्ष की शाखा और चन्द्रमा का एक ही काल में ग्रहण होने से चक्षु अप्राप्यकारी ही प्रसिद्ध होती है। अतः उपर्युक्त अनुमानगत हेतु कालात्यापदिष्ट और आश्रयासिद्ध होने के साथ ही प्रकरण सम (सत्प्रतिपक्ष) भी है। इस प्रकार सन्निकर्ष के बिना भी चक्षु के द्वारा रूप ज्ञान होता है इसलिए सन्निकर्ष अव्याप्त होने से प्रत्यक्ष का स्वरूप नहीं है यह बात सिद्ध हो गई।

4. शंका समाधान पूर्वक सर्वज्ञ की सिद्धि

शंका - सर्वज्ञता ही जब अप्रसिद्ध है तब आप यह कैसे कहते हैं कि अरिहन्त भगवान् सर्वज्ञ हैं? क्योंकि जो सामान्यतया कहीं भी प्रसिद्ध नहीं है उसका किसी खास जगह में व्यवस्थापन नहीं हो सकता है?

समाधान - नहीं सर्वज्ञता अनुमान से सिद्ध है। वह अनुमान इस प्रकार है, सूक्ष्म, अन्तरित और दूरवर्ती पदार्थ किसी के प्रत्यक्ष हैं, क्योंकि वे अनुमान से जाने जाते हैं। जैसे अग्नि आदि पदार्थ। स्वामी समन्तभद्र ने भी महाभाष्य के प्रारम्भ में आप्तमीमांसा प्रकरण में कहा है - "सूक्ष्म, अन्तरित और दूरवर्ती पदार्थ किसी के प्रत्यक्ष हैं, क्योंकि वे अनुमान से जाने जाते हैं? जैसे अग्नि आदि। इस अनुमान से सर्वज्ञ भले प्रकार सिद्ध होता है।"

सूक्ष्म पदार्थ वे हैं जो स्वभाव से विप्रकृष्ट हैं, दूर हैं, जैसे परमाणु आदि। अन्तरित वे हैं जो काल से विप्रकृष्ट हैं, जैसे राम आदि। दूर वे हैं जो देश से विप्रकृष्ट हैं, जैसे मेरू आदि।

ये स्वभाव, काल और देश से विप्रकृष्ट पदार्थ यहाँ धर्मी (पक्ष) है। किसी के प्रत्यक्ष हैं, यह साध्य है। यहाँ प्रत्यक्ष शब्द का अर्थ प्रत्यक्षज्ञान के विषय यह विवक्षित है, क्योंकि विषयी (ज्ञान) के धर्म (जानना) का विषय में भी उपचार होता है। अनुमान से जाने जाते है, यह हेतु है। अग्नि आदि दृष्टान्त हैं। अग्नि आदि दृष्टान्त में अनुमान से जाने जाते हैं। यह हेतु किसी के प्रत्यक्ष है, इस साध्य के साथ पाया जाता है। अतः वह परमाणु वगैरह सूक्ष्मादि पदार्थों में भी किसी की प्रत्यक्षता को अवश्य सिद्ध करता है।

तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार अग्नि आदि अनुमान से जाने जाते हैं। अतएव वे किसी के प्रत्यक्ष भी होते हैं। उसी प्रकार सूक्ष्मादि अतीन्द्रिय पदार्थ चूँकि हम लोगों के द्वारा अनुमान से जाने जाते हैं। अतएव वे किसी के प्रत्यक्ष भी हैं और जिसके प्रत्यक्ष हैं, वही सर्वज्ञ है। परमाणु आदि में अनुमान से जाने जाते हैं। यह हेतु असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि उनको अनुमान से जानने में किसी को विवाद नहीं है। अर्थात् सभी मत वाले इन पदार्थों को अनुमेय मानते हैं।

शंका – सूक्ष्मादि पदार्थों को प्रत्यक्ष सिद्ध करने के द्वारा किसी के सम्पूर्ण पदार्थों का प्रत्यक्ष ज्ञान हो, यह हम मान सकते हैं। परन्तु वह अतीन्द्रिय है। इन्द्रियों की अपेक्षा नहीं रखता है, यह कैसे?

समाधान – इस प्रकार यदि ज्ञान इन्द्रियजन्य हो तो सम्पूर्ण पदार्थों को जानने वाला नहीं हो सकता है, क्योंकि इन्द्रियाँ अपने योग्य विषय (सन्निहित और वर्तमान अर्थ) में ही ज्ञान को उत्पन्न कर सकती हैं और सूक्ष्मादि पदार्थ इन्द्रियों के योग्य विषय नहीं हैं। अतः वह सम्पूर्ण पदार्थ विषयक ज्ञान अतीन्द्रिय ही है। इन्द्रियों की अपेक्षा से रहित अतीन्द्रिय है, यह बात सिद्ध हो जाती है। इस प्रकार से सर्वज्ञ को मानने में किसी भी सर्वज्ञवादी को विवाद नहीं है। जैसा कि दूसरे भी कहते हैं – पुण्य–पापादिक किसी के प्रत्यक्ष हैं क्योंकि वे प्रमेय हैं।

5. सामान्य से सर्वज्ञ को सिद्ध करके अरिहन्त के सर्वज्ञता की सिद्धि

शंका – सम्पूर्ण पदार्थ को साक्षात् करने वाला अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान

सामान्यतया सिद्ध हो परन्तु वह अरिहन्त के है यह कैसे? क्योंकि 'किसी के' यह सर्वनाम शब्द है और सर्वनाम शब्द सामान्य का ज्ञापक होता है?

समाधान - सत्य है। इस अनुमान से सामान्य सर्वज्ञ की सिद्धि है। 'अरिहन्त सर्वज्ञ हैं' यह हम अन्य अनुमान से सिद्ध करते हैं। वह अनुमान इस प्रकार है। अरिहन्त सर्वज्ञ होने के योग्य हैं, क्योंकि वे निर्दोष हैं, जो सर्वज्ञ नहीं हैं वह निर्दोष नहीं है, जैसे रथ्यापुरुष (पागल)। यह केवल-व्यतिरेकीहेतुजन्य अनुमान है।

आवरण और रागादि ये दोष हैं और इनसे रहितता का नाम निर्दोषता है। वह निर्दोषता सर्वज्ञता के बिना नहीं हो सकती है, क्योंकि जो किञ्चित् है, अल्पज्ञानी है उसके आवरणादि दोषों का अभाव नहीं है। अतः अरिहन्त में रहने वाली यह निर्दोषता उनमें सर्वज्ञता को अवश्य सिद्ध करती है और यह निर्दोषता अरिहन्त परमेष्ठी में उनके युक्ति और शास्त्र से अविरोधी वचन भी उनके द्वारा माने गये मुक्ति, संसार और मुक्ति तथा संसार के कारण तत्त्व और अनेक धर्म युक्त चेतन तथा अचेतन तत्त्व प्रत्यक्षादि प्रमाण से बाधित न होने से अच्छी तरह सिद्ध होते हैं। तात्पर्य यह है कि अरिहन्त के द्वारा उपदिष्ट तत्त्वों में प्रत्यक्षादि प्रमाणों से कोई बाधा नहीं आती है। अतः वे यथार्थ वक्ता हैं और यथार्थ वक्ता होने से निर्दोष हैं तथा निर्दोष होने से सर्वज्ञ हैं।

शंका - इस प्रकार अरिहन्त के सर्वज्ञता सिद्ध हो जाने पर भी वह अरिहन्त के ही है, यह कैसे? क्योंकि कपिल आदि के भी वह सम्भव है।

समाधान - कपिल आदि सर्वज्ञ नहीं हैं, क्योंकि वे सदोष हैं और सदोष इसलिए हैं कि वे युक्ति और शास्त्र से विरोधी कथन करने वाले हैं। युक्ति और शास्त्र से विरोधी कथन करने वाले भी इस कारण से है कि उनके द्वारा माने गये मुक्ति आदिक तत्त्व और सर्वथा एकान्त तत्त्व प्रमाण से बाधित हैं। अतः वे सर्वज्ञ नहीं हैं। अरिहन्त ही सर्वज्ञ हैं। स्वामी समन्तभद्र ने भी कहा है - हे अर्हन् वह सर्वज्ञ आप ही हैं, क्योंकि आप अविरुद्ध हैं - युक्ति और आगम से उनमें कोई विरोध नहीं आता और वचनों में विरोध इस कारण नहीं है कि आपका इष्ट (मुक्ति आदि तत्त्व) प्रमाण से बाधित नहीं है, किन्तु तुम्हारे

अनेकान्त कथन करने वाले और अपने को आप्त समझने के अभिमान से दग्ध हुए एकान्तवादियों का इष्ट (अभिमत तत्त्व) प्रत्यक्ष से बाधित है। इसलिए अरिहन्त ही सर्वज्ञ हैं।

6. आगम प्रमाण का लक्षण

आप्त के वचनों से होने वाले अर्थज्ञान को आगम कहते हैं। यहाँ 'आगम' यह लक्ष्य है और शेष उसका लक्षण है। अर्थज्ञान को आगम कहते हैं इतना ही यदि आगम का लक्षण कहा जाए तो प्रत्यक्षादिक में अतिव्याप्ति है, क्योंकि प्रत्यक्षादिक भी अर्थज्ञान हैं। इसलिए वचनों से होने वाले अर्थज्ञान को आगम का लक्षण कहने में भी स्वेच्छापूर्वक (जिस किसी के) कहे हुए भ्रमजनक वचनों से होने वाले अथवा सोये हुए पुरुष के और पागल आदि के वाक्यों से होने वाले नदी के किनारे फल हैं इत्यादि ज्ञानों में अतिव्याप्ति है, इसलिए आप्त यह विशेषण दिया है। आप्त के वचनों से होने वाले ज्ञान को आगम का लक्षण कहने में भी आप्त के वचनों को सुनकर जो श्रावण प्रत्यक्ष होता है, उसमें लक्षण अतिव्याप्ति है, अतः अर्थ यह पद दिया है। अर्थपद तात्पर्य में रूढ़ है। अर्थात् प्रयोजनार्थक है, क्योंकि "अर्थ ही, तात्पर्य ही वचनों में है"। ऐसा आचार्य वचन है। मतलब यह है कि यहाँ पद का अर्थ तात्पर्य विवक्षित है, क्योंकि वचनों में तात्पर्य ही होता है। इस प्रकार आप्त के वचनों से होने वाले अर्थ (तात्पर्य) ज्ञान को जो आगम का लक्षण कहा गया है वह पूर्ण निर्दोष है। जैसे – 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः'(त. सूत्र 1-1)! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों की एकता (सहभाव) मोक्ष का मार्ग है। इत्यादि वाक्यार्थज्ञान। सम्यग्दर्शनादिक सम्पूर्ण कर्मों के क्षय रूप मोक्ष का मार्ग अर्थात् उपाय है न कि मार्ग है। अतएव भिन्न-भिन्न लक्षण वाले सम्यग्दर्शनादि तीनों मिलकर ही मोक्ष का मार्ग हैं, एक एक नहीं, ऐसा अर्थ 'मार्गः' इस एकवचन के प्रयोग के तात्पर्य से सिद्ध होता है। यही उक्त वाक्य का अर्थ है और इसी अर्थ में प्रमाण से संशयादिक की निवृत्तिरूप प्रमिति होती है।

7. प्रमाणवचन के सप्तभंग

वस्तु के सत्त्व और असत्त्व इन दो धर्मों में से सत्त्वमुखेन वस्तु का प्रतिपादन करना प्रमाण वचन का पहला रूप है। असत्त्वमुखेन वस्तु का प्रतिपादन करना प्रमाण वचन का दूसरा रूप है। सत्त्व व असत्त्व उभयधर्ममुखेन क्रमशः वस्तु का प्रतिपादन करना प्रमाण वचन का तीसरा रूप है। सत्त्व और असत्त्व उभयधर्ममुखेन युगपत् (एकसाथ) वस्तु का प्रतिपादन करना असम्भव है, इसलिए अवक्तव्य नाम का चौथा रूप प्रमाण का वचन निष्पन्न होता है। उभयधर्ममुखेन युगपत् वस्तु के प्रतिपादन की असम्भवता के साथ-साथ सत्त्वमुखेन वस्तु का प्रतिपादन हो सकता है, इस तरह से प्रमाण वचन का पाँचवां रूप निष्पन्न होता है। इसी प्रकार उभयधर्ममुखेनयुगपत् वस्तु के प्रतिपादन की असम्भवता के साथ-साथ असत्त्वमुखेन भी वस्तु का प्रतिपादन हो सकता है। इस तरह से प्रमाणवचन का छठा रूप बन जाता है और उभयधर्ममुखेनयुगपत् वस्तु के प्रतिपादन की असम्भवता के साथ-साथ उभयधर्ममुखेन क्रमशः वस्तु का प्रतिपादन हो सकता है इस तरह से प्रमाणवचन का सातवाँ रूप बन जाता है। जैनदर्शन में इसको प्रमाणसप्तभंगी नाम दिया गया है।

8. नयवचन के सप्तभंग

वस्तु के सत्त्व और असत्त्व इन दो धर्मों में से सत्त्वधर्म का प्रतिपादन करना नयवचन का पहला रूप है।* उभयधर्मों का क्रमशः प्रतिपादन करना नयवचन का तीसरा रूप है और चूँकि उभयधर्मों का युगपत् प्रतिपादन करना असम्भव है अतः इस तरह से अवक्तव्य नाम का चौथा रूप नय वचन का निष्पन्न होता है। नयवचन के पाँचवें, छठे और सातवें रूपों से समान समझ लेना चाहिए। जैनदर्शन में नय वचन के इन सात रूपों को, नयसप्तभंगी नाम दिया गया है।

इन दोनों प्रकार की सप्तभंगियों में इतना ध्यान रखने की जरूरत है कि जब सत्त्व-धर्ममुखेन वस्तु के सत्त्वधर्म का प्रतिपादन किया जाता है तो उस समय वस्तु की असत्त्वधर्मविशिष्टता को अथवा वस्तु के असत्त्वधर्म को

---

* असत्त्वधर्म का प्रतिपादन करना नयवचन का दूसरा रूप है।

अविवक्षित मान लिया जाता है और यही बात असत्त्वधर्ममुखेन वस्तु का अथवा वस्तुके असत्त्वधर्म का प्रतिपादन करते समय वस्तु की सत्त्वधर्म विशिष्टता अथवा वस्तु के सत्त्वधर्म के बारे में समझना चाहिए। इस प्रकार उभयधर्मों की विवक्षा और अविवक्षा के स्पष्टीकरण के लिए स्याद्वाद अर्थात् स्यात् की मान्यता को भी जैनदर्शन में स्थान दिया है।

स्याद्वाद का अर्थ है किसी भी धर्म के द्वारा वस्तु का अथवा वस्तु के किसी भी धर्म का प्रतिपादन करते वक्त उसके अनुकूल किसी भी निमित्त, किसी भी दृष्टिकोण या किसी भी उद्देश्य को लक्ष्य में रखना और इस तरह से ही वस्तु की विरुद्धधर्मविशिष्टता अथवा वस्तु में विरुद्ध धर्म का अस्तित्त्व अक्षुण्ण रखा जा सकता है। यदि उक्त प्रकार के स्याद्वाद नहीं अपनाया जायेगा तो वस्तु की विरुद्धधर्म विशिष्टता का अथवा वस्तु में विरोधी धर्म का अभाव मानना अनिवार्य हो जायेगा और इस तरह से अनेकान्तवाद का भी जीवन समाप्त हो जायेगा और इस तरह से अनेकान्तवाद का भी जीवन समाप्त हो जायेगा।

इस प्रकार अनेकान्तवाद, प्रमाणवाद, नयवाद, सप्तभंगी और स्याद्वाद ये जैनदर्शन के अनूठे सिद्धान्त है। इनमें से एक प्रमाणवाद को छोड़कर बाकी के चार सिद्धान्तों को तो जैनदर्शन की अपनी ही निधि समझना चाहिए।

समाप्त

अनेकान्त ग्रन्थमाला बीना से प्रकाशित साहित्य
एक परिचय

अनेकान्त ज्ञान मंदिर शोध संस्थान बीना (म.प्र.) द्वारा संचालित अनेकान्त ग्रन्थमाला के अन्तर्गत अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों, पुस्तकों का प्रकाशन कर जन सामान्य के लिए सुलभ कराया जा रहा है। अभी तक प्रकाशित ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय है-

1. **अनेकान्त भवन ग्रन्थावली** 1, 2- सम्पादक - ब्र. संदीप 'सरल' प्रकाशन वर्ष 2000 पृष्ठ 5 + 186 संस्करण - प्रथम
अनेकान्त ज्ञान मंदिर बीना द्वारा संचालित 'शास्त्रोद्वार शास्त्र सुरक्षा अभियान' के अन्तर्गत संकलित संस्कृत, प्राकृत एवं हिन्दी विषयक हस्तलिखित ग्रन्थों की विवरणिका तैयार कर शोधार्थियों, विद्वानों के लिए शोधाध्यन हेतु, महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध कराई है। प्रथम भाग में श्री सिद्धकूट चैत्यालय से प्राप्त 1221 ग्रन्थों का एवं द्वितीय भाग में विभिन्न शास्त्र भण्डारों से प्राप्त 1470 ग्रन्थों का सूचीकरण विज्ञान के अनुसार 14 बिंदुओं के अन्तर्गत वर्गीकरण कर ग्रन्थों का परिचय दिया है।
2. **अनेकान्त भवन ग्रन्थावली भाग - 3** सम्पादक - ब्र. संदीप 'सरल' प्रकाशन वर्ष 2001, पृष्ठ 5 +210+25 संस्करण - प्रथम भाग -3 के अन्तर्गत विभिन्न शास्त्र भंडारों से संकलित किए गए 3401 हस्तलिखित ग्रन्थों का सूचीकरण विज्ञान के अनुसार विवरण दिया गया है।
3. **प्रमाण निर्णय** - लेखक - आचार्य वादिराज जी, अनुवादक - सम्पादक - डॉ. सूरजमुखी, प्रकाशन वर्ष 2001, संस्करण प्रथम। पृष्ठ 21 + 110 + V
जैन न्याय के तलस्पर्शी ज्ञाता आचार्य वादिराज जी ने प्रमाणनिर्णय ग्रन्थ के अन्तर्गत प्रमाण विषयक सुव्यवस्थित प्ररूपणा की है।
4. **आप्तमीमांसावृत्ति** - लेखक - आचार्य वसुनंदी, अनुवादिका - डॉ. सूरज मुखी जैन, सम्पादक - ब्र. संदीप 'सरल' प्रकाशन वर्ष - 2003 पृष्ठ 256
प्रस्तुत कृति आचार्य वसुनंदी सैद्धान्तिक देव द्वारा रचित जैन दर्शन के तार्किक शिरोमणि आचार्य समन्तभद्र स्वामी की अमररचना देवागम आप्तमीमांसा पर लिखी गई लघुपरिणाम की सरल व्याख्या है। प्रस्तुत कृति के प्रकाशन में निम्न असाधारण मौलिकताएं दृष्टव्य हैं। (1) आप्तमीमांसावृत्ति

हिन्दी विवेचना एवं महत्वपूर्ण विवेचना के साथ प्रथम बार प्रकाशित हुई है। (2) परिशिष्ट 1 के अन्तर्गत पं. जयचन्द्र जी छाबड़ा कृत भाषा वचनिका का सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद भी दिया हुआ है। (3) परिशिष्ट 2 के अन्तर्गत आप्तमीमांसा की 114 कारिकाओं का अन्वयार्थ एवं कारिकार्थ भी दिया है।

5. **परीक्षामुख** - लेखक - आ. माणिक्यनंदी जी, अनुवादक - क्षु 104 विवेकानंद सागर जी सम्पादक - ब्र. संदीप 'सरल', संस्करण तृतीय, प्रकाशन वर्ष 2011, पृष्ठ 208
परीक्षामुख जैन न्याय के अभ्यासिओं के लिए अत्यन्त उपयोगी सरल रचना है। परीक्षामुख के सूत्रों का अन्वयार्थ टीकार्थ एवं प्रत्येक सूत्र पर रची गई प्रश्नोत्तरी ने प्रतिपाद्य विषय का अत्यन्त सरलीकरण कर दिया है।

6. **सरल प्राकृत प्रवेश** - संकलन - संपादन - ब्र. संदीप 'सरल' प्रकाशन वर्ष 2010 संस्करण - चतुर्थ, पृष्ठ - 54। प्राकृत भाषा के प्रारम्भिक ज्ञान हेतु यह लघु पुस्तिका उपयोगी है। प्राकृत व्याकरण की प्रारंभिक जानकारी के साथ-साथ जीवनोपयोगी 51 गाथाएं अनेक ग्रन्थों से संकलित की गई हैं।

7. **प्रारंभिक नय प्रवेशिका** - संकलन - संपादक ब्र. संदीप 'सरल' प्रकाशन वर्ष 2010, संस्करण पंचम, पृष्ठ 45। जैन दर्शन के आधारभूत द्रव्य, गुण, पर्याय की विस्तृत जानकारी के साथ-साथ प्रमाण और नय विषयक प्रस्तुत करना इस पुस्तक का मुख्य ध्येय है। इस लघु पुस्तिक को आगमनय, अध्यात्मनय, नयाभास और विशेषप्रकरण के रूप में चार अध्यायों में विभक्त किया गया है।

8. **आध्यात्मिक सोपान** - लेखक - ब्र. शीतलप्रसाद जी, सम्पादक - ब्र. संदीप 'सरल' प्रकाशन वर्ष 2005, संस्करण द्वितीय पृष्ठ 8 + 250। आध्यात्मिक सोपान पुस्तक के लेखक आध्यात्मिक वक्ता श्रद्धेय ब्र. शीतल प्रसाद जी ने अनेक आध्यात्मिक ग्रन्थों के सार स्वरूप प्रमेय प्रस्तुत कर जैनागम का सरल एवं सरस शैली में वर्णन किया है।

9-11. **समयसार खण्ड 1-2-3 लेखक** - आ. कुन्दकुन्द देव आंत्मख्याति टीकाकार - अ़ा अमृतचंद, तात्पर्यवृत्तिकार - आ. जिनसेन जी तत्वप्रबोधिनी टीकाकार एवं हिन्दी विवेचना - पं. मोतीलाल कोठारी फलटण, सम्पादक - ब्र. संदीप 'सरल' संस्करण - द्वितीय, प्रकाशन वर्ष 2004 पृष्ठ XIV+713

+XIII, IVX+ 1157+XIII समयसार ग्रन्थराज पर अनेकों टीकायें, उपटीकायें, प्रवचन, कलश, पद्यानुवाद, वचनिका, अनुशीलन आदि लिखे जा चुके हैं। आत्मख्याति टीका के ऊपर संस्कृत टीका – तत्वप्रबोधिनी लिखने का अतिदुष्कर कार्य न्याय, व्याकरण एवं सिद्धान्तवेत्ता पं. मोतीलाल कोठारी ने किया है।

12. **आलाप पद्धति** – लेखक – आ. देवसेन जी हिन्दी टीकाकार – पं. रतनचंद जी मुख्तार प्रकाशन वर्ष – 2005, संस्करण III पृष्ठ XIX+218
आलाप पद्धति अपरनाम द्रव्यानुयोग प्रवेशिका द्रव्य, गुण, पर्याय, प्रमाण, नय और निक्षेप का कथन करने वाला संस्कृत भाषा में निबद्ध बेजोड़ ग्रन्थ है।

13. **अमृतवाणी** – संकलन कर्त्ता – मुनि श्री 108 अनंतानन्द सागर जी सम्पादक – ब्र. संदीप 'सरल' प्रकाशन वर्ष – 2005 संस्करण प्रथम, पृष्ठ VI+127
अनेक आध्यात्मिक ग्रन्थों के सार स्वरूप वाक्यों का संकलन किया गया है। सात अध्याय में शीर्षकानुसार 108–108 अमृततुल्य वाक्य दिये हैं। पुस्तक पठनीय है।

14. **पंचकल्याणक समीक्षा** – पंचकल्याणों के महत्वहीनता एवं पंचकल्याणक के नाम पर आडम्बर प्रदर्शन का पर्दाफाश करने आदि विषयों पर लेखक ने निर्भीकता का परिचय देते हुए कृति का सृजन किया है।

15. **समाधि समीक्षा** – मुनि श्री ने साधक के लिए समाधिक के बाधक एवं साधक कारणों पर प्रकाश डालते हुए पुस्तक को तीन अध्यायों में विभक्त किया गया है।

16. **त्यौहार समीक्षा** – मुनि श्री ने राष्ट्रीय पर्व स्वतंत्रता दिवस समीक्षा, गणतंत्र दिवस समीक्षा, सामाजिक पर्वो में दीपावली त्यौहार समीक्षा, रक्षाबंधन त्यौहार समीक्षा एवं होली त्यौहार समीक्षा के अन्तर्गत प्रकाश डाला है।

17. **चातुर्मास समीक्षा** – लेखक मुनि श्री 108 सरल सागर जी महाराज प्रकाशन वर्ष 2001, संस्करण – प्रथम, पृष्ठ 196
श्रमण संस्कृति के हितकारी लेखक ने प्रस्तुत समीक्षा में चातुर्मास के अथ से इति तक के उन समस्त विकल्पों की चर्चा की है जो चार्तुमास के अंग न होकर भी अब अभिन्न अंग बन चुके हैं। आदि का विशद वर्णन है।

18. **जिनागम प्रवेश** हिन्दी – संकलन – सम्पादक –: ब्र. संदीप 'सरल' संस्करण – पंचम प्रकाशन वर्ष 2011 जैनधर्म दर्शन के लगभग 50 महत्वपूर्ण विषयों

पर 15 पाठों में विभक्त 304 प्रश्नोत्तरों में सरल, सहज भाषा में इस पुस्तक का सृजन किया गया है। यह पुस्तक अनेक पाठशालों में शिक्षण शिविरों में पढ़ाई जा रही है।

19. **जैन दर्शन में गुणस्थान चिंतन** - लेखिका - डॉ. सूरजमुखी जैन सम्पादक - ब्र. संदीप 'सरल' प्रकाशन वर्ष - 2006 संस्करण - प्रथम, इस पुस्तक में गुणस्थान विषयक सामग्री बहुत ही सुन्दर तरीके से प्रस्तुत की गयी है। पुस्तक संग्रहणीय हैं।
20. **जिनागम प्रवेश गुजराती भाषा अनुवाद**
21. **जिनागम प्रवेश मराठी भाषा अनुवाद**
22. **जिनागम प्रवेश कन्नड़ भाषा अनुवाद**
23. **जिनागम प्रवेश तमिल भाषा अनुवाद**
24. **जिनागम प्रवेश अंग्रेजी भाषा अनुवाद**
25. **घर-घर चर्चा रहे ज्ञान की प्रथम खण्ड संपादन - ब्र. संदीप 'सरल'**
26. **घर-घर चर्चा रहे ज्ञान की द्वितीय खण्ड संपादन - ब्र. संदीप 'सरल'**
27. **जैन न्याय दर्शन प्रवेशिका - संकलन, संपादन - ब्र. संदीप 'सरल'**
28. **आत्मा की 47 शक्तियाँ**
29. **नियमसार - ग्रन्थकार आ. कुन्द कुन्द, संस्कृत टीका - पद्मप्रभमलधारीदेव, हिन्दी टीका - साहित्याचार्य पं. पन्नालाल जैन, संस्करण प्रथम, वर्ष 2010, पृष्ठ - 28+282।**

इस ग्रन्थमाला से प्रकाशित साहित्य माँ जिनवाणी के प्रचार-प्रसार हेतु साधु संघों में, शास्त्र भण्डारों में एवं त्यागी वृन्दों विद्वानों के लिए भेंट स्वरूप प्रदान किया जाता है। ग्रन्थमाला का कुशल संचालन उदार दान दातारों के सहयोग से किया जाता है। श्रुत प्रचार-प्रसार के इस पुनीत कार्य में आपका योगदान भी प्राप्त हो ऐसी अपेक्षा रखते हैं। ग्रन्थमाला के जो भी सदस्य बनते हैं उनके लिए प्रकाशित साहित्य की एक-एक प्रति हमेशा भेजी जाती रहेगी। सदस्यता निम्न प्रकार है-

परम संरक्षक सदस्य - 15,000 संरक्षक सदस्य - 11,000

जिनवाणी सदस्य - 5,000

अपनी राशि नगद, बैंक ड्रॉफ्ट, चैक द्वारा अनेकान्त ज्ञान मंदिर, शोध संस्थान बीना के नाम भेजकर सदस्यता ग्रहण करें।

7. **संस्कार एवं शिक्षण शिविर :** जैन साहित्य सम्पदा, संस्कृति एवं सभ्यता के प्रति लोगों की अभिरूचि पैदा करने के लिए संस्थान समय-समय पर संस्कार एवं शिक्षण शिविरों का आयोजन किया जाता है। अभी तक 75 शिविरों का आयोजन किया जा चुका है।

8. **अनेकान्त वाचनालयों की स्थापना :** संस्थान द्वारा 20 स्थानों पर अनेकान्त वाचनालयों की स्थापना इस उद्देश्य से की गई है कि स्वाध्याय का प्रचार-प्रसार हो सके।

9. **जन कल्याण निधि :** इसके अन्तर्गत शिक्षा चिकित्सा एवं अन्य जनोपयोगी कार्यों के लिए सहयोग किया जाता है।

10. **अनेकान्त प्रज्ञाश्रम :** त्यागीव्रती एवं सदाचारी श्रावक श्राविकाओं के लिए आवास, आहार, स्वाध्याय आदि संसाधन श्रुतधाम में सुलभ कराए गए हैं ताकि आत्मार्थीजन आत्म कल्याण कर सकें।

संस्थान के विकास में आपकी सहभागिता इस प्रकार प्राप्त हो सकती है-

1.	**परम शिरोमणि संरक्षक सदस्यता**	-	**51001/-**
2.	**शिरोमणि संरक्षक सदस्यता**	-	**31001/-**
3.	**परम संरक्षक सदस्यता**	-	**15001/-**
4.	**संरक्षक सदस्यता**	-	**11001/-**
5.	**जिनवाणी सदस्यता**	-	**5101/-**
6.	**अक्षय निधि सदस्यता**	-	**500 प्रतिमाह**

1. दान में दी गई राशि 80G के अन्तर्गत आयकर मुक्त हैं।

2. अनेकान्त ज्ञानमंदिर एवं शोध संस्थान के नाम से SBI बैंक में एकाउन्ट नं. 10778899326 में जमा कर सूचित करें।

निवेदक

अनेकान्त ज्ञानमंदिर एवं शोध संस्थान

बीना (म.प्र.) 470113

फोन (07580) 206025, 222279

अनेकान्त ग्रन्थमाला से प्रकाशित कतिपय विशेष ग्रन्थ